भारतीय साहित्य

(आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ का मुख पत्र)

अक्तूबर १९५६

चतुर्थ अंक

सम्पादक

डा० विश्वनाथ प्रसाद

अध्यक्ष

आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ

मुद्रक
एच० के० कपूर, आगरा यूनीवर्सिटी प्रेस, आगरा
प्रकाशक
डा० विश्वनाथ प्रसाद,
अध्यक्ष, आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ, आगरा

विषय-सूची

निजी

राज्यपाल शिविर
उत्तर प्रदेश
अक्टूबर २२, १९५६

श्री भाई सत्येन्द्र,

आपका पत्र और भारतीय साहित्य मिले

भारतीय साहित्य का यह अंक बड़ा सुन्दर है इसके लिये मैं हिन्दी इन्स्टीट्यूट को और विशेषकर आपको अभिनन्दन देता हूँ

आपने गोगा के ऊपर जो लिखा है उससे आपने इस सर्वव्यापी व्यक्ति के ऊपर बड़ा प्रकाश डाला है ऐसा करने के लिये आपने जो परिश्रम किया है वह स्तुत्य है जो ऐतिहासिक उपन्यास प्रकट हुये हैं उनकी सविस्तार समालोचना बड़ी अच्छी है इससे हमारे प्रान्तीय साहित्य का तुलनात्मक अभ्यास बढ़ेगा इस लेखावली के ऊपर भी एक लेख तैयार करना चाहिये जिसमें यह बताया जाय कि हमारे यहां ऐतिहासिक उपन्यासों का विकास किस तरह हुआ और उनके प्रवाह में क्या क्या विशेषता है मुझे आशा है कि जो स्तर इस अंक ने रक्खा है वह बना रहेगा

भवदीय

प्रो० सत्येन्द्र,
एक्टिंग डाइरेक्टर
आगरा युनिवर्सिटी इन्स्टीट्यूट आफ हिन्दी स्टडीज
आगरा विश्वविद्यालय
आगरा

भारतीय साहित्य

(आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ का मुख पत्र)

वर्ष १] अक्तूबर १९५६ [अंक ४

डा० सत्येन्द्र

लोकवार्ता के तत्व तथा लोक-मानस

लोकवार्ता[1] के अन्तर्गत वह समस्त अभिव्यक्ति आती है जिसमें आदिम मानस के अवशेष आज भी दिखायी पड़ते हैं।[2] आज की वैज्ञानिक दृष्टि यह मानती है कि विश्व की प्रत्येक मानव जाति ने अपनी यात्रा का आरम्भ आदिम बर्बर अवस्था से किया है। मनुष्य की दैवी उद्भावना और दिव्य महत्ता-युक्त आरम्भ में विश्वास करता आज मूलतः

---

१ मरैट ने गोम्मे के एक उद्धरण के द्वारा फाक्लोर के क्षेत्र का स्वरूप बहुत ही स्पष्टतः प्रस्तुत किया है, वह उद्धरण यह है —"Folklore may be said to include all the culture of the people, which has not been worked into the official religion and history, but which is and has always been of self growth"—Psychology and Folklore by R R Marett P 76

२ (1) Modern researches into the early history of man, conducted on different lines have convoerged with almost irresisible force on the conclusion, that all civilized races have at some period or other emerged from a state of savagery resembling more or less closely the state in which many backward races have continued to the present time, and that long after the majority of man in a community have ceased to think and act like savages, not a few traces of the old ruder modes of life and thought survive in the habits and institution of the people Such survivals are included under the head of folklore which, in the broadest sense of the word, may be said to embrace the whole body of a peoples traditionary beliefs and customs, so far as these appear to be due to the collective action of 'the multitude' and can not be traced to the individual of great men—Frazer Man, God and Immortality (1927) p p 42 तथा

(2) "Myth arose in the savage condition prevalent in remote ages among the whole human race it remains comparatively unchanged among the modern rude tribes who

समझी जाती है।[१] बर्बरावस्था से विकसित होकर मनुष्य ने आज की सभ्यता उपार्जित की है। जैसे विकसित होने पर भी मनुष्य आदिम मनुष्य का ही रूपान्तर है उसी प्रकार मनुष्य की अभिव्यक्तियों में भी आदिम अभिव्यक्ति के अवशेष रह ही जाते हैं। वे अवशेष लोकवार्ता हैं और लोकवार्ता-शास्त्र के अध्ययन की वस्तु है। किन्तु लोकवार्ता जिन अवशेषों का अध्ययन करती है, वे अवशेष केवल मूल आदिम मनुष्य के हैं इस बात को निश्चय पूर्वक आज किसी भी शास्त्र अथवा विज्ञान को कहने का अधिकार नहीं है। क्योंकि आरंभिक आदिम मनुष्य इतना प्रागैतिहासिक है और मनुष्य के अनुमान के भी इतने परे है कि उसके संबंध में निश्चय रूप से कुछ भी कहना अवैज्ञानिक माना जायगा। वस्तुत लोकवार्ता के अवशेषों के अध्ययन का अर्थ है कि उस आदिम लोक-प्रवृत्ति को समझा जाय जिसके परिणामस्वरूप लोकवार्ता प्रस्तुत होती है—यह लोक-प्रवृत्ति जब जब जहाँ-जहाँ जिस मात्रा मे विद्यमान मिलेगी, वहाँ तब उसी परिमाण में लोकवार्ता भी मिलेगी। विश्वामित्र और वशिष्ठ, राम और कृष्ण, विक्रमादित्य तथा गोरखनाथ के संबंध में हमें एकानेक लोकवार्ताएँ मिलती हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से ये व्यक्ति और इनके विषय की ये लोकवार्ताएं आदिम मनुष्य के द्वारा उद्भावित नहीं। विश्वामित्र तथा वशिष्ठ की लोकवार्ताएं वैदिक काल की देन है, राम कृष्ण के पौराणिक काल की। विक्रम की कहानियाँ डेढ़ दो हजार वर्ष पूर्व आरम्भ हुई होंगी और गोरख की सात सौ आठ सौ वर्ष पूर्व। ये सभी लोकवार्ताएं हैं, आज इनका इसी रूप में लोकवार्ता के अध्येता उपयोग करते हैं। फलत. लोकवार्ता की वस्तु की नहीं, लोकवार्ता की प्रवृत्ति की विशेषताएं समझने की आवश्यकता है, और इसी प्रवृत्ति में हमें आदिम मानव की प्रवृत्ति के अवशेष देखने को

---

have departed least from these primitive conditions, while even higher and later grades of civilization, partly by retaining its actual principles, partly by carrying on its imperfect results in the form of ancestral tradition, have continued it not merely in toleration but in honour"—Tylor, Primitive Culture Vol 1 p. 283 quoted in Poetry & Myth : Prescott at p 13.

(3) Folklore means the study of survivals of early custom, belief, narrative and art—An Introduction to Mythology by Lewis Spence, p. 11

१. Indeed the notion that man began with pure moral and religious ideas and a sensible language but gradually became possessed by a licentious imagination and so formed untrue and unlovely conceptions, has been quite given up; and we see instead that he began with the crudest dreams and fancies, which were by a long, natural and (in general) healthy growth gradually elevated and refined—Poetry and Myth by Prescott p 101.

मिलेंगे। प्रत्येक वार्ता में दो बातें स्पष्टतः मिलती है [1] एक कोई न कोई आधार तथ्य दूसरा इसका स्वरूप। तथ्य तो तथ्य है सूय तो सूय है पर उसका स्वरूप क्या है? प्राकृतिक विज्ञान वेत्ता के लिए वह एक अग्निपिंड है और उसका मात्र भौतिक स्वरूप ही उसे मान्य है। पर लोकवार्ताकार के लिए यह सूय एक मनुष्य का भ्राता है उसके मा है, उसके स्त्री है, स्त्री फूहड है आदि। तथ है कि गोरखनाथ एक योगी हुए हैं, और उन्होंने एक प्रवल सम्प्रदाय भारत में चलाया। किन्तु गोरखनाथ के उस ऐतिहासिक तथ्य को लोकवार्ता ने एक अदभुत स्वरूप दिया है। लोकवार्ता का मूल रहस्य इस स्वरूप में ही है यह स्वरूप ही उस प्रवृत्ति का परिणाम है, जिसे लोक प्रवृत्ति कहते हैं। इस लोक प्रवृत्ति में ही हमें आदिम मानव की प्रवृत्ति के अवशेष मिलते है इन्ही अवशेषो के परिणामो का अध्ययन लोकवार्ता के अध्ययन का विषय होता है। आधुनिक लोकवार्ता-वेत्ता इस लोकवार्ता प्रवृत्ति का ही अध्ययन विशेषत करते हैं। लोकवार्ता को जन्म देने वाली लोक प्रवृत्ति को लोक मानस या जन मानस से सबधित माना जा सकता है। यह लोकमानस या जन मानस उस प्रवृत्ति से बिलकुल भिन्न और अद्भुत होता है जो सभ्य तथा सस्कृत मनीषिता का प्रकट करती है, और जिसे मुनि मानस से सबधित माना जा सकता है। इस दृष्टि से समस्त मानव समुदाय के मानसिक स्वरूप को तीन भागों में बाँट सकते हैं। प्रथम लोक मानस, द्वितीय जन मानस तृतीय मुनि मानस। लोक मानस वह मानसिक स्थिति है जो आज आदिम मानव की परपरा में है, उसी का अवशेष है। आज के सभ्य समाज के मानसिक स्वरूप में इसे सबसे नीचे का धरातल माना जा सकता है। मुनि मानस वह मानसिक स्थिति है जो मानव-समाज ने सभ्यता के विकास के साथ साथ उपार्जित की है। यह आज के समाज के मानसिक स्वरूप का सबसे ऊँचा धरातल माना जा सकता है। मध्य की स्थिति जन मानस की है। लोकमानस से लोकवार्ता का जन्म होता है। मुनि मानस से दर्शन, शास्त्र तथा विज्ञान और उच्च कलाओं का। जन मानस साधारण व्यवसायात्मक बुद्धि से सबध रखता है। यह केवल व्यवहार में ही परिणति पाता है और व्यवहार में ही विलीन हो जाता है, कोई अन्य मूर्त अभिव्यक्ति इससे नहीं होती। फलत यदि हम लोक मानस को समझ लें तो हम लोकवार्ता की विशेषताओं को भी समझ लेंगे [2]।

१—"Every tradition myth or story contains two perfectly independent elements—The fact upon which it is founded and the interpretation of the fact which its founders have attempted' (Gomme Folklore as an Historical Science Page 10) यह प्रत्येक कला के सबध में ही कहा जा सकता है Thomas Craven ने अपनी Famous Artists their Models नामक पुस्तक की भूमिका में लिखा है —"It needs to be said again that the art business has two sides to it. First the subject, and second the way in which the subject is treated P X

२—फोक लोर तथा माइथालाजी पर विचार करते हुए R R Marett ने Psychology and Folklore में लिखा था The business of this society (अभिप्राय है Folklore Society) is to seek to know the folk in and

लोक-मानस

लोक-मानस लोक-साहित्य के निर्धारण में सबसे प्रमुख तत्व है। अभी कुछ समय पूर्व तक मनोविज्ञान केवल चेतन मानस को ही स्वीकार कर के चलता था। फ्रायड ने अपने अनुसधान से अवचेतन मानस का अनुसधान अथवा उद्घाटन किया। यद्यपि फ्रायड के मत में अनेको सशोधन हुए हैं फिर भी अवचेतन मानस की सत्ता में अब संदेह नही रह गया। फ्रायड ने अवचेतन मानस के निर्माण के कारण स्वरूप कुण्ठा को स्वीकार किया था। किन्तु "प्राणिशास्त्र" उत्तराधिकरण को असिद्ध नहीं कर सका है। हमारे पूर्वजो का दाय हमें हमारे जन्म के साथ मिला है। हमारी प्रवृत्तियाँ इसी दाय का परिणाम हैं। वे प्रवृत्तियाँ उस दाय का परिणाम हैं जो हमारे निर्माण के मूल-स्वरूप का आधार हैं। इन प्रवृत्तियो का स्थान भी तो मानस में ही होगा। चेतन-मानस में तो ये विद्यमान मिलती नही, ये तो अवचेतन मानस की भाँति मनुष्य के समस्त व्यक्तित्व को ही प्रेरित और निर्माण करने वाली हैं। फलत दाय में प्राप्त मानस का स्थान अवचेतन मानस में ही हो सकता है। इस प्रकार अवचेतन मानस के दो भेद स्वीकार करने होगे। एक सहज अवचेतन, दूसरा उपार्जितावचेतन। यह सहज-अवचेतन ही लोक-मानस है। हम नही कह सकते कि इस मानस के सबध में अवचेतन वादियो ने कितना विचार किया है, किन्तु इस मानस की सत्ता में सन्देह नही किया जा सकता है। आज के मानव को आदिम मानवीय बातो से क्यो रुचि है? क्यो आज का महान् वैज्ञानिक और घोर बुद्धिवादी भी असभव तथा अद्भुत लोक कहानियो मे आकर्षण अनुभव करता है। क्यो आज भी हम किसी न किसी रूप में, किसी न किसी प्रकार के ऐसे विश्वासो को प्रचलित पाते हैं जिन की वैज्ञानिक व्याख्या नही हो सकती, जो बौद्धिकता के लिए सहज ही अमान्य हैं, आज बीसवी सदी के उत्कृष्टतम मनुष्य मे भी हम जब वह रगत देख पाते हैं जो स्पष्ट ही आदिम मानव की वृत्ति का अवशेष ही कहा जा सकता है, तो लोक-मानस की उपस्थिति स्वीकार ही करनी पडती है। श्री हर्बर्ट रीड जैसे साहित्यशास्त्री ने भी ऐसे मानस की सत्ता की ओर सकेत किया है। यद्यपि उन्होने उसे यह नाम नही दिया है। रीड महोदय का कहना है कि :

> Such lights come, of course, from the latent memory of verbal images in what Freud calls the pre-conscious state of mind or from still obscurer state of the uncouscious in which are hidden not only the neural traces of repressed sensations but also those inherited patterns which determine our instict. [Form in Modern Poetry, p. 36-7]

यह इनहैरिटैंड पैटर्न ही हमारा लोक-मानस है।

---

through their lore so that what is outwardly perceived as a body of custom may at the same time be inwardly apprehended as a phase of mind' P. 12

इस लोक मानस की सत्ता का उद्घाटन करने का श्रेय लोकवार्ताविदों को देना पड़ेगा। मरेट महोदय ने लिखा है

"ठीक जिस प्रकार भीड़ (क्राउड) का मनोविज्ञान होता है उसी प्रकार उस समूह का भी मनोविज्ञान हो सकता है जिसे सर जेम्स फ्रेजर 'मानव राशि" (Multitude) अथवा कम प्रिय शब्दों में "लोक' (फोक) कहेंगे।' इन शब्दों से प्रकट होता है कि १९२० के लगभग इस लोक मनोविज्ञान की संभावना की ओर संकेत ही किया जा रहा था। इस लोक मानस की स्थिति के विषय में मरेट ने आगे कहा

'भीड़ तो मनुष्यों के अस्थायी और अनियमित संघ को कहते हैं। ऐसी दशा में यह कुछ विशिष्ट प्रकार के कार्यों और आवेशों को प्रदर्शित करती है इनका व्याख्या और विश्लेषण काफी सफलता से किया जा चुका है। अत इसी प्रकार मनुष्य राशि तो मानो एक स्थायी भीड़ है और एक ऐसी भीड़ है जो अपनी सामूहिक प्रवृत्तियों का परंपरा के रूप में चिरगामी कर सकता है और इस परंपरा में वह विशेष प्रकार के आचरण को प्रकट करती है जो निश्चय ही पृथक रूप से अध्ययन करने योग्य है"　　　आदि।

मरेट ने यही बताया है कि इस दिशा में कुछ प्रयत्न हुए हैं। उसने एम० लैवा ब्रुह्ल का नाम लिया है जिसने "सामूहिक मानस अथवा 'असभ्य जाति' का मनोवृत्ति पर लिखा है। दूसरा नाम मि० ग्रैहम वैलेस का लिया है, उन्होंने उसी दृष्टि से आधुनिक राष्ट्र के जन मानस का वर्णन किया है। किन्तु साथ ही उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि—

हमारे पास बहुत सी विस्तार व्यापी सामग्री के रहते हुए भी लोक के मनोजीवन के विशद चित्रण का ही किंचित उद्योग नहीं हुआ है, फिर उसका उस सामान्य विश्लेषण के लिये क्या कहा जाय जिसके द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि अपनी स्पष्ट अभिव्यक्तियों में वह प्रत्यक्षत इतनी सामाजिक संघटनाशील (gregarious) कैसे और क्यों है। [पृ० १२४।]

अत १९२० के लगभग से इधर विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ। लोकवार्ताविदों ने लोक मानस की सत्ता को स्थापित किया। आज लोक मनोविज्ञान 'फोक साइकोलॉजी' एक महत्वपूर्ण मानस विज्ञान है, जिसकी परिभाषा कोष' में इस प्रकार मिलता है

लोक मनोविज्ञान—जनों का मनोविज्ञान जिसको लोगों (पीपिल्स) के विशेषत आदिमों के विश्वासों, रिवाजों, रूढ़ियों आदि के अध्ययन में काम में लाया जाता है, तुलनात्मक अध्ययन भी इसमें आ जाता है।[१]

---

१ Folk psychology—psychology of peoples applied to the psychological study of the belief, customs, convention etc of peoples especially premitive inclusive of comparative study—[A Dictionary of Psychology by James Drever p 98]

लोक-मानस की सत्ता का यह उद्घाटन वैज्ञानिक अथवा ज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण घटना है, और उसने इस समय तक की विविध घातक सामूहिक मनोविज्ञान विषयक अवैज्ञानिक मान्यताओं और सिद्धान्तों को हटाकर एक शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया है। यह बात फ्राज बोआज (Franz Boas) की पुस्तक "दी माइण्ड आफ प्रिमिटिव मैन" में दिये गये तद्विषयक इतिहास में भली प्रकार समझी जा सकती है। उसे यहा सक्षेप में दिया जाता है।

सामूहिक मनोविज्ञान में जातीय मनोविज्ञान (Racial Psychology) का बहुत जोर रहा है। "लिन्ने ने "जातीय रूढ रूपों" (Racial Types) का वर्णन करते हुए प्रत्येक जाति के विशेष मानसिक लक्षणों का उल्लेख किया। ऐसे मनोवैज्ञानिक उद्योगों के मूल में यही स्थापना काम कर रही थी कि उच्च मानसिक उपलब्धियों के लिए उच्च वश परम्परा होती है। बूलेन विलियर्स (१७२७), जोन्स येर्ट्स, तथा ए० प्लूज ने भी विविध जातियों के मानसिक लक्षणों का निर्धारण किया है।

गोबीन्यू ने इसी सिद्धान्त को पुष्ट करते हुए शरीराकार और मानसिक क्षमता का संबंध स्थापित किया। प्रत्येक जाति (Race) की शारीरिक विशेषता होती है, और उसी के अनुसार मानसिक सस्थान का निर्माण होता है।

गोबीन्यू ने 'जातीय मानस' के सिद्धान्त को सर्व प्रथम ठोस वैज्ञानिक प्रणाली का आधार प्रदान किया। इस सिद्धान्त ने प्रभाव भी बहुत डाला। इसके समस्त वैज्ञानिक अध्ययन के चार निष्कर्ष थे।

१—जगली जातियों की जो स्थिति आज है वही सदा से रही है और ऐसी ही रहेगी, भले ही वे कितनी ही ऊची संस्कृतियों के सपर्क में क्यों न आयी हो।

२—जगली जातियाँ जीवन के किसी सभ्य ढर्रे मे रहते चले जा सकते है, यदि वे जन जिन्होंने जीवन के उस ढर्रे को निर्मित किया उसी जाति की श्रेष्ठतर शाखा के है।

३—ऐसी ही अवस्थाओं की तब आवश्यकता है जब दो सभ्यताए एक दूसरे से आदान-प्रदान करती है, और अपने तत्वो से मिलाकर एक नयी सभ्यता का निर्माण करती है, दो सभ्यताओं का सम्मिश्रण कभी नहीं हो सकता।

४—उन सभ्यताओ के पारस्परिक सपर्क बहुत ऊपरी होते है, वे एक दूसरे में कभी भिद नही सकती, और सदा परस्पर अलग अलग रहेंगी, जो सभ्यताए ऐसी जातियों में उद्भूत हुई हैं जो एक दूसरी के लिए विजातीय है।

क्लैम्म (१८४३) ने मानव-जाति के दो भेद स्वीकार किए है। एक कर्तृत्व शील या 'पुरुष अर्द्ध' और "रम्य" (पसिव) या 'स्त्री अर्द्ध'। यह विभाजन सांस्कृतिक आधार पर किया गया। पारसी, अरब, यूनानी, रोमन, जर्मन जातिया, तुर्क, तारतार, क्षोर कैसस, पेरू के इन्का और पॉलीनीसिया निवासी—'पुरुष' पक्ष वाली जातियाँ है—मगोल, नेग्रो, पापुअन, मलायी, अमेरिकन, इडियन, आदि 'स्त्री' पक्ष वाली जातिया है। पुरुष जातियो का पोषण हिमालय प्रदेश में हुआ, वहीं से विश्व में फैली। इनकी

मानसिक विशेषताएँ है—प्रबल सकल्प शक्ति, शासन की इच्छा, स्वाधीनता स्वच्छन्दता, क्रियाशीलता चचलता, विस्तार का भावना तथा यात्रा प्रियता, हर क्षेत्र में विकास खोज और परीक्षा की ओर स्वाभाविक रुचि धार हठ तथा सदेह । वुर्के ने भी वलम्म ये मत का स्वीकार किया ।

काल गुस्तव केरस (१८४६) ने बताया कि इस पृथिवी की जातिया में अपने ग्रह (planet) के ही लक्षण प्रतिबिम्बित होने चाहिए—अपने ग्रह (पृथ्वी) पर रात होता है, दिन होते हैं, प्रात होता है और साय भी । इसी प्रकार यहाँ चार जातिया हो सकती हैं । दिवस जाति—यूरोपनिवासी तथा पश्चिमी एशिया निवासी रात्रि जाति—नीग्रो लोग । प्रात जातियाँ—मगोल । साय जातियाँ—अमरिकन इंडियन । दिवस जातियो की खोपडी बडा होती हैं । रात्रि जातियों की छोटा । प्रात -साय वाला मध्यम । केरस विविध जातिया का आकृति निदान भी करता है । केरस ने समस्त जातिया में तीन का विशेष महत्त्व दिया है सत्य के निमाता हिन्दू, सौंदय निमाता मिश्री, मानवीय प्रेम के निमाता यहूदी । अमरिकन लेखको में सैम्युल जी० माटन का नाम उल्लेखनीय है । इस लेखक ने विविध जातिया के अध्ययन के बाद यह मत स्थापित किया कि मानव समूह का जन्म एक स्थान पर नहीं अनेक स्थानों से हुआ है और प्रत्येक जाति की जातीय विशेषताएँ उनकी शारीरिक गठन से घनिष्ठ सबध रखती है । इस सिद्धान्त का जे० सी० नोट्ट तथा जाज आर० ग्लिडन ने नीग्रो लोगो की गुलामी को पुष्ट करने के लिए काम में लिया । उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि नाग्रो जाति का उद्भव ही गुलामी के लिए हुआ है ।

हाउस्टन स्टीवार्ट चम्बरलेन ने बताया कि जातिया के मूल उदभव तक जाने का आवश्यकता नही । आज तो जातिया के भेद विद्यमान है । इस यथार्थ की उपेक्षा नही की जा सकती । हमें तो केवल यह जानना है कि यह जातिगत भेद क्या है और कैसे है ? तब वह इगलिश जाति को यूरोप में सबसे बलवान जाति बताता है और उसके कारणो पर भी प्रकाश डालता है, गोबीन्यू और चम्बरलेन का प्रभाव मडिसन ग्राण्ट पर भी पडा । उसने विश्व की महान विभूतियो को नॉर्डिक रक्त का परिणाम बतलाया है, और कहा है कि विश्व में मनुष्य में विकार नीग्रो तथा काली आखो वाली जातिया से होगा ।

लोथ्रोप स्टाडडार्ट ने स्थापित किया कि जब दो जातिया से निश्चित सतति होती है तो उत्तम विशिष्टताओं का ह्रास ही होता है ।

ई० वान ईक्स्टेट (E Von Eickstedt) ने जातीय मनोविज्ञान (Race Phycsology) की नीव डालने की चेष्टा की । वह आधुनिक गेस्टाल्ट-मनोविज्ञान से प्रभावित है और यही मानकर चलता है कि जब जातीय भेद प्रत्यक्ष है तो उनके मनोविज्ञान के तत्व भी स्पष्ट ही दिखायी पडते है । इन तत्वों का शारीरिक गठन से सबध होगा ही, क्योंकि शारीरिक गठन और मानसिक आचार से मिलकर ही जातीय इकाई बनती है ।

आधुनिक काल में मनोवैज्ञानिकों के कई सम्प्रदाय मिलते है

१—वह संप्रदाय जो यह मानता है कि जाति ही मानसिक आचार और संस्कृति का स्वरूप निर्धारित करती है। यह दृष्टिकोण प्रबल भावनामूलक मूल्यों के कारण है। इस युग में राष्ट्रीय भावना के स्थान में जातीय भावना को महत्व मिल रहा है।

२—वह सम्प्रदाय है जिसे शारीरिक मनोविज्ञान में विश्वास है। यह मानता है कि शरीर के विन्यास के अनुरूप ही मानसिक स्वरूप होता है। इसका परिणाम यह है कि आज यह विश्वास किया जाता है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण से मनुष्य की सहज बुद्धिमत्ता, भावना-प्रवणता, संकल्प-शक्ति के रूप को जाना जा सकता है।

३—वह सम्प्रदाय है, जो उत्तराधिकरण (heredity) को मान्यता देता है। इसका सिद्धान्त है संस्कार नहीं, प्रकृति (Nature not nurture)। दूसरे और तीसरे सम्प्रदाय का परिणाम यह हुआ है कि लोग परिस्थितियों के प्रभाव को नगण्य समझते हैं, समस्त मानसिक निर्माण का मूल उत्तराधिकरण मानते हैं।

४—वह सम्प्रदाय है जो परिस्थितियों के प्रभाव को भी स्वीकार करता है, फिर भी यूजेन फिशर की भाँति यह मानता है, कि उत्तराधिकरण से प्राप्त जातीय भेद भी उन परिस्थितियों के विकारों में व्याप्त रहते हैं।[१]

५—वह सम्प्रदाय है जो हर्डर के साथ यह मानता है कि इन समस्त प्राणि शास्त्रीय (biological) सांस्कृतिक अन्तरों का मूल कारण प्राकृतिक परिस्थितियाँ ही हैं। कार्ल रिट्टर ने भौगोलिक प्रभाव को और भी अधिक पुष्ट किया।

६—वह सम्प्रदाय जो न जातिवाद को मानता है, न परिस्थितियों को वरन् जो विश्व भर में मानव की समान स्थिति को स्वीकार करता है और केवल 'ऐतिहासिक सांस्कृतिक' भेद स्वीकार करता है। यह दृष्टिकोण हर्बर्ट स्पेंसर, ई० बी० टेलर, एडाल्फ बास्टिअन, लीविस मोर्गन, सर जेम्स जार्ज फ्रेजर के उद्योगों का परिणाम है, जिन्हें आधुनिक काल में डरखीम तथा लेवी ब्रुहल ने और परिपुष्ट किया है। वुंट ने फोक्साइकालोजी में भी ऐसे ही दृष्टिकोण को बल दिया है। इस मत से विश्व-भर में मानव-मानस की मौलिक समतन्त्रता (Sameness) सिद्ध होती है, वह चाहे किसी जाति का क्यों न हो। इस प्रकार विश्व व्यापी एक मानव-मानस की स्थिति में विश्वास इस 'लोक-मानस' के सिद्धान्त के द्वारा पुष्ट हुआ है।

[यहाँ तक बोआज की पुस्तक के आधार पर]

१—To a great extent the form of mental life as we meet it in various social groups is determined by environment. Historical events and conditinos of nature further impede the development of innate characteristics Nevertheless, we may certainly claim that there are racially hereditory differences. Certain traits of the mind of the mongol, the negro, the melanesian and of other races are different from our owu and differ among themselves." [The Mind of Primitive Man p. 31]

इस ऐतिहासिक दृष्टिबिन्दु से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह 'लोक-मानस' की उद्भावना सामूहिक लोक मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक यथार्थवादी वैज्ञानिक और सबसे महत्वपूर्ण स्थापना है जो ऐतिहासिक क्रम में आज उपलब्ध हुई है।

यहाँ हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि जब हम मानव मानस में आज 'लोक मानस' की स्थिति का उल्लेख करते हैं तो हमारा अभिप्राय उस उत्तराधिकरण के सिद्धांत से नहीं जो जातीय दृष्टि से उसे ग्राह्य मानते हैं। मानव ने जन्म लेते ही अपनी आदिम अवस्था में जो मानसिक उपलब्धियां प्राप्त की वे उसकी सहज मानवीय प्रकृति बन गयी। वे ही निरंतर मानव को परंपरा में मानव का मानव बनाने के लिए सूत्र रूप में उत्तराधिकरण के रूप में, युग-युग में मानव मानव में अवतरित होती चली जाती है। और आदिम दाय के रूप में अवचेतन के अंतर्गत वही मूल मानसिक प्रकृति के रूप में सभ्यातिसभ्य मानव में भी विद्यमान रहती है।

लोक-मानस के तत्व—

फ्रेजर ने यह स्थापित किया था कि 'लोक मानस' के दो प्रधान लक्षण हैं—१ लोक मानस विवेकपूर्वी (Prelogical) होता है। उसने प्रिलाजिकल कहा है। लोजिक अथवा कार्य कारण के यथार्थ क्रम को समझ सकने वाले मानस के उद्घाटित होने से पूर्व की स्थिति से संबंध रखने वाली मन की प्रवृत्ति। किन्तु जैसा कि 'विफोर फिलासफी' नाम की पुस्तक में कहा गया है "Scholars who have proved at length that primitive man has a prelogical mode of thinking are likely to refer to magic or religious practice, thus forgetting that they apply the Kantian categories, not to pure reasoning but to highly emotional acts" p 19। क्योंकि वस्तुतः वे तर्क तो कर सकते थे। कार्य कारण क्रम की आवश्यकता वे समझते थे। पर संभवतः किसी भी क्रम का ही वे कार्य कारण समझ सकते थे, कार्य कारण में व्याप्त यथार्थ कारणत्व और कार्यत्व उनके लिए महत्व नहीं रखते थे। अतः 'लोक मानस' को 'विवेक पूर्वी' नहीं कहा जा सकता। फ्रेजर महोदय ने तो प्रिलाजीकल उसे इसलिए माना है कि उनकी व्याख्या में विरोधी तत्वों (contradictions) का समीकरण रहता है।

२ फ्रेजर ने दूसरा लक्षण स्थापित किया कि वह मिस्टिक अथवा रहस्य वाला होता है। क्योंकि वे अपने अनुभवों की व्याख्या में पराप्राकृतिक शक्तियों का आश्रय लेते हैं। पर यह पराप्राकृतिक शक्तियों की शरण लेना वस्तुतः उनके मानस का मूल विशेषता नहीं। यह तो उनकी एक विशेष मूल मनःस्थिति का परिणाम है। वे क्यों पराप्राकृतिक शक्तियों की कल्पना करते हैं यह जानने की चेष्टा करने से ही हम मूल 'लोक-मानस' के तथ्य से परिचित हो सकेंगे।

वस्तुतः 'लोक-मानस' का मूल सृष्टि के मनुष्य में विद्यमान सबसे प्रथम अपने जन्म की सहज प्रतिक्रियाओं का प्रतिफल है। आज फ्रायड के सिद्धान्तों से इतना तो अवश्य ही सिद्ध होता है कि उत्पन्न होते समय भी बालक में मूल काम भाव व्याप्त रहता है जिसे हम

रति कह सकते हैं। रति विस्तार चाहती है। वाह्य से आनन्दमय सम्पर्क। किन्तु वाह्य से अपनी रक्षा का भाव भी उसमें सहज है। इसका प्रतिरूप है भय। रति और भय के दो मूल सहज भाव आदिम मानव में जन्म से आये। रति ने 'रिचुअल' अथवा अनुष्ठानों (विधि) के रूप खड़े किये, भय ने टैबू अथवा निषेध और वर्जन के रूप। उस 'विधि-निषेध' के कर्म में हम आदिम मानव में जिस मनोस्थिति को विद्यमान देखते हैं वह सबसे पहले अभेद द्योतक बुद्धि प्रतीत होती है। 'लोक मानस' 'निज' और जड़ 'पर' के स्वरूप को भिन्न-भिन्न नहीं देख समझ सकता। उसके लिए समस्त सृष्टि उसी के समान सत्ता रखती है। वह व्यक्ति विशेषी (subjective) और वस्तु विशेषी (objective) भेद करने की सामर्थ्य नहीं रखता। वह किसी वस्तु को वस्तु के रूप में नहीं देख पाता। उसे प्रत्येक वस्तु अपने समान धर्मवाली ही विदित होती है। वह सूरज को निकलते देखता है, आकाश में चढ़ते देखता है और डूबते देखता है। तो वह उसे अपनी तरह ही आते और जाते देखता है और समझता है, और अपने इस ज्ञान को वह यथार्थ ज्ञान मानता है। यह ज्ञान रूपक की भांति नहीं, और न यह ज्ञान उसके अपने व्यक्तित्व का विस्तार है कि जिसे अपने से इतर सृष्टि को समझने या जानने या अभिव्यक्ति की सुविधा के लिए अपने ही रूप का प्रतिरूप मानता है।

इस यथार्थ का भाव उसमें बहुत प्रबल है। उसके लिए ऐसी समस्त बातें यथार्थ सत्ताशील हैं जो उसे प्रभावित कर सकें, जो उसके हृदय और मस्तिष्क पर एक छाप छोड़ सकें। इस मानसिक स्थिति में स्वप्न भी उतने ही यथार्थ हैं जितने कि जागृत अवस्था के दृश्य। ऐसे ही कितने ही ऐतिहासिक कथानक मिल जाते हैं जिनमें स्वप्न की बातों को पूर्ण आस्था के साथ स्वीकार किया गया है। हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में महर्षि विश्वामित्र को पृथ्वी दान दे दी और जगकर भी उस सत्य का पालन किया। बहुत से लोग स्वप्नों से अपने लिए मार्ग-दर्शन की प्रेरणा ग्रहण करते हैं। फारहो[1] ने तो यह बात लेखबद्ध भी कर दी है कि उन्होंने कितने ही कार्य स्वप्नों की प्रेरणा से किये। इसी प्रकार भ्रम दृश्य (hallucinations) भी आदिम मन के लिए मिथ्या नहीं सत्य थे। जमीरिया के अस्सटह्न के सरकारी विवरणों में यह उल्लेख किया गया है कि उनकी सेना जब सिनाई रेगिस्तान में होकर जा रही थी और बहुत थकी मादी थी तो उन्हें दो सिरों वाले हरे उड़ने वाले सांप दिखायी पड़े थे। तात्पर्य यह है कि भ्रम दृश्य जैसी वस्तु भ्रम के रूप में उनके लिए अस्तित्व नहीं रखती थी। जो उन्हें दिखायी पड़ा, भले ही वह भ्रम हो, पर जिसने उनके हृदय अथवा मस्तिष्क को प्रभावित किया, उसे वे अस्वीकार नहीं कर सकते थे, उसकी सत्ता उन्हें यथार्थत मानती पड़ती थी।

इसी प्रकार, तीसरे वे जीवित और मृतक में भी कोई विशेष भेद नहीं कर सकते थे, स्वप्न में अथवा जागृत स्मृति में मर जाने वाले के सजीव मानस चित्रों के आवर्तन से उसे मृतक भी जीवित की भांति सत्तावान ज्ञात होते थे। वस्तुत तो उनसे भी अधिक।

चौथे, अंश और समग्र वस्तु में भी वे कोई भेद नहीं कर सकते थे। शरीर का एक अंश भी, सिर का एक बाल ही क्यों न हो, उसके संपूर्ण शरीर के ही तुल्य ग्रहण किया जाता था। कहानियों में मिलने वाले अभिप्रायों में हमें ऐसे बहुत से अभिप्राय मिल जायेंगे, जिनमें किसी व्यक्ति-

१ मिस्र के प्राचीन सम्राट

के बाल को आग में तपाने से उस व्यक्ति का बुलाया जा सकता है। इस 'अभेदवाद' में ही यह मान्यता भी आती है कि नाम भी व्यक्ति से अभिन्न है। अनेक क्षेत्रों में अपने से बड़ो के नाम भूमि पर लिखने का घोर निषेध है इस निषेध के पीछे यही भावना काम करती है कि नाम पर पर पड़ेंगे, और यह ऐसा ही है जैसे स्वयं नामधारी पर पैर पड़े हो। इसी विश्वास का एक रूप हमें मान्यमिन राज्यों के मिश्र राजाओं की एक रिवाज में मिलता है। ये लोग प्याला पर अपने शत्रुओं के नाम खुदवा देते थे, और उन्हें एक विशेष सस्कार के साथ फोड डालते थे, इससे वे विश्वास करते थे कि अब उनके उन शत्रुओं का नाश हो गया। आज भी ब्रज के गावों में स्त्रियाँ दिवाली और होली पर वरियरा को कूटती हैं वे अपने कुटुम्ब के प्रत्येक व्यक्ति का नाम लेकर उसके वरियरा का उल्लेख करके पृथ्वी पर मूसल कूटती हैं। वे यथार्थ में विश्वास करती हैं कि इससे शत्रु कुचल जायेंगे[१]। वे यह भेद भी नहीं कर सकते थे कि कार्य कोई और वस्तु है और सस्कारानुष्ठान कोई और। एक किसान अपनी सफल फसल को देखकर यह नहीं कह सकता था कि यह सफलता उसकी मेहनत का फल था या उसके द्वारा किए गये अनुष्ठान का। उसके लिए दोनों ही एक तत्व बनकर उपस्थित होते हैं।

इसी प्रकार उसके लिए भावना ('concept') भी मूर्त स्वरूप वाले होते थे। उदाहरण के लिए "प्राण" उसके लिए मूर्त वस्तु है जिसे वह ले-दे सकता है, अथवा बाँट भी सकता है। सत्यवान के शरीर से यम प्राण नाम का पदार्थ निकाल ले गये और सावित्री को वह पदार्थ लौटा भी दिया। मृत्यु भी मूर्त वस्तु की भाँति परिकल्पित है। यम भी मृत्यु का मूर्त रूप है।

यह बात भी यथार्थ है कि आदिम मानस "कार्य कारण" के भ्रम पर तो विश्वास करता था। पर वह उसे एक व्यक्तित्व हीन प्राकृतिक व्यापार मानने को तैयार नहीं था। वह प्रत्येक कार्य का कारण चेतना और "इच्छा"—संयुक्त किसी पदार्थ को मानता था इसलिए जैसा हेनरी फ्रैंकफर्ट आदि ने लिखा है कार्य-कारण की स्थापक प्रश्न प्रणाली से वे कैसे और 'क्या' का उत्तर नहीं ढूंढते थे। वे कौन की कल्पना करते थे। वे यह तो मानते थे कि यह जो वर्षा होती है अथवा रात दिन होते हैं उनका कारण अवश्य है, पर वह कारण कोई सिद्धान्त विशेष नहीं हो सकता कोई व्यक्तित्व ही हो सकता है। कोई व्यक्ति है जो बादलों को भेजता है और वर्षा कराता है। सूर्य एक व्यक्ति है, वह आता है और जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक व्यापार के लिए वे कारणों की कल्पना करते थे।

कारण और कार्य में इस मूर्त चेतन व्यक्तित्व की स्थापना के ही साथ वे उनमें इच्छा के भी दर्शन करते थे। मृत्यु या जीवन पदार्थ रूप तो हैं ही उनके आदान प्रदान में इच्छा

---

१ इसी मनःस्थिति का एक परिणाम यह है कि तुल्य आकार वस्तु अथवा पदार्थ में और तुलनीय में भी कोई अन्तर नहीं। टोने और टोटके इसी मनःस्थिति का फल है। जैसा आदमी का पुतला बना कर उसे काट डालने से वह आदमी स्वयं कट जायगा। मिस्र में नून स्वर्ग की वरतला देवी माना जाती है। वे मृतक पुरुष को स्वर्ग भेजने के लिए कफन में मनुष्य के कद का नून का चित्र अंकित कर देते थे और उस में मुर्दे को बंद कर देते थे। इस विधि से उनका मृत पुरुष स्वर्ग में पहुँच जाता था।

का भी तत्व है। इस इच्छा तत्व और मूर्तत्व से संपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है, तब गुणों और दोषों के रूपों की कल्पना आदिम मानव करने लगता है। इसी स्तर पर देवताओं और असुरों का जन्म होता है।

कार्य और कारण की कल्पना में वे किसी भी निकटस्थ तत्व को कारण स्वीकार कर सकेंगे, भले ही वह यथार्थ कारण न हो। केवल दो की संलग्नता ही कारण रूप में पर्याप्त है। मिस्र में यह माना जाता रहा है कि आकाश स्त्री है, और पृथ्वी पिता। आकाश पृथ्वी के ऊपर लेटा हुआ था किन्तु वायु के देवता शू ने दोनों को पृथक कर दिया और आकाश को ऊपर उठा दिया। शू को इस रूप में मानने का कारण केवल यही है कि उन्हें आकाश और पृथ्वी के बीच में वायु का संचार दिखायी देता था। द्यावा-पृथ्वी को भारतीय परिकल्पना में माता-पिता स्वीकार किया जाता है।

वह विविध तत्वों और व्यापारों में संघर्ष भी देखता है, और इच्छा-व्यापार-युक्त उसे मूर्त रूप देता है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो सका है कि आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक स्थिति में निम्नलिखित तत्व होते हैं।

१—समस्त सृष्टि मनुष्य के ही तुल्य है। यदि इस सृष्टि में वह स्वयं "मैं" है तो सृष्टि का प्रत्येक अन्य अंग उसके लिए "तू" है।

२—प्रत्येक व्यापार गुण आदि उसके लिए मूर्त अथवा पदार्थवत सत्ता रखता है, मृत्यु जीवन प्राण आदि उसके लिए पदार्थ रूप ही हैं जिनका आदान प्रदान हो सकता है।

३—तुल्य और तुलनीय, अंश और अंशी, चिह्न-प्रतीक और प्रदाता अथवा लक्ष्य में अभेद होता है।

४—देश काल के भेद से होने वाली आवृत्ति में भी मूल विद्यमान रहता है।

५—प्रत्येक व्यापार अथवा तत्व "इच्छा" से भी संयुक्त होता है।

६—व्यापारों में कार्य-कारण परंपरा होती है पर कोई भी कारण निकटता, संबद्धता, पूर्वकालिकता के तत्त्व से युक्त होने पर कारण हो सकता है।

७—वह विविध प्राकृतिक तत्वों में संघर्ष भी लक्षित करता है। सूर्य और रात्रि में संघर्ष होता है। सूर्य परास्त होता है आदि।

इन तत्वों के साथ ही यह बात परिलक्षणीय है कि आदिम मानव समस्त सृष्टि से अपने व्यक्तित्व को तटस्थ नहीं रख सकता था। वह मनतः और कर्मतः, मानसतः और भावतः सृष्टि के समस्त व्यापारों का अंग होता है। अतः तुल्य-मूर्त विधान की मान्यता के साथ वह अपने लिए उपयोगी अनुपयोगी तत्वों को अपने द्वारा प्रस्तुत करता था। इस प्रस्तुत को अनुष्ठान अथवा रिचुअल कहा जा सकता है। इसके द्वारा वह प्रकृति के विविध तत्वों के संघर्ष व्यापार में सहयोग देता था।

प्रकृति से वह सहयोग भाव से चलता था। प्रत्येक प्रकृति के व्यापार में वह अपने लिए किसी न किसी प्रकार का अर्थ भी ग्रहण करता था। शकुनों की उद्भावना इसी स्थिति का परिणाम है।

ऊपर लोक मानस के जो तत्व प्रस्तुत किये गये हैं, उन्हें संक्षेप में हम केवल चार कोटियों में विभाजित कर सकते हैं। वे हैं —

१—यथार्थ और कल्पना में भेद करने की असमर्थता—

प्राक्कल्पना (फैंटसी थिंकिंग)

२—प्राणि अप्राणि, 'जड़ चेतन' को आत्मा से युक्त जानना—

आत्म शीलता (एनिमिस्टिक थिंकिंग)

३—यह विश्वास होना कि तुल्य से तुल्य पैदा होता है

टोना विचारणा (मजिकल थिंकिंग)

४—यह विश्वास होना कि विशेष विधि से कार्य करने से इच्छित फल अथवा अभीष्ट प्राप्त होगा

आनुष्ठानिक विचारणा (रिचुअल थिंकिंग)

इन मानसिक तत्वों के परिणाम निम्नलिखित होंगे —

१—सत्य और स्वप्न में अभेद—इससे वह इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि उसके दो अस्तित्व हैं—एक वह जो शरीर से संबद्ध है, दूसरा वह जो शरीर को छोड़ कर "स्वप्न" में घूमता फिरता है।

२—शरीर और छाया में अभेद—छाया को भी उतना ही महत्वपूर्ण मानना और अपना स्वरूप मानना, जितना शरीर को।

३—मृतक को भी सोया हुआ मानना, और यह समझना कि उसका दूसरा व्यक्तित्व "आत्मा" कहीं भटक गया है, वह संभवतः फिर कभी लौटेगा। अतः उसके शव को सुरक्षित करके उसके साथ भोजन आदि की वस्तुएं रखने की व्यवस्था की गयी।

४—भूत प्रेतों में विश्वास इसी वृत्ति का परिणाम है। कितनी ही ऐसी आदिम अथवा असभ्य जंगली जातियाँ हैं जो पशुओं, पेड़ों और पत्थरों तक के भूतों अथवा प्रेतों को मानती हैं।

५—प्रस्तरों, जड़ों अथवा अप्राण पदार्थों को आत्मतत्व से युक्त देखना जिसमें वृक्ष पहाड़ नदी, नाले चेतन मानवों की भाँति काम करते माने जाते हैं।

६—भ्रम के संयोग से वस्तुओं में कार्य कारण की कल्पना जिसे काकतालीय भी कह सकते हैं। उदाहरणार्थ कभी कई दिनों से मेह पड़ रहा है, और बंद नहीं होता तभी किसी से तवा उलटा होकर आँगन में गिर पड़ा, इसके बाद ही संयोग से मेह बन्द हो गया, तो आँगन में उल्टा तवा रखना मेह बंद होने का कारण मान लिया गया।

७—तुल्य से तुल्य को प्रभावित करना—पुतलों में सुई चुभो कर मनुष्य की मृत्यु में विश्वास करना।

८—अंश से अंशी को प्रभावित करना—किसी के नाम, वस्त्र शरीर के अंग, बाल, नाखून, आदि से उसे प्रभावित करना।

९—इसी विभाग से टोना करने वाले मार्गों अथवा जादूगरों अथवा स्यानों का प्रादुर्भाव।

१०—विशेष विधि से अनुष्ठान करने से बलात् अभीष्ट की सिद्धि इसी के फलस्वरूप मंत्र से अथवा अनुष्ठान से फल सिद्धि मानी जाती है। "पुत्रेष्टियज्ञ" आदि इसी वृत्ति के परिणाम हैं।

११—संतान-धारण और संभोग क्रिया में कार्य-कारण की स्थिति का अज्ञान। ऐसी आदिम जातियाँ आज भी हैं जो यह नहीं समझती कि पिता के कारण पुत्र पैदा होता है। आज भी स्त्रियां और पुरुष देवी देवताओं और पीरों पैगम्बरों से संतान की याचना करती मिलती हैं, वह इसी मूल आदिम विश्वास का ही अवशेष है।

१२—आदिम मानव व्यक्ति के अस्तित्व को नहीं मानता, वह तो "दल" के अस्तित्व को ही मानता है। इसी के परिणाम स्वरूप ऐसे समाजों में यह स्थिति मिलेगी कि एक लड़का अपने दल के समस्त वयोवृद्ध व्यक्तियों को पिता व पिता तुल्य मानता मिलेगा।

इसी मनोवृत्ति का परिणाम यह भी है कि किसी किसी आदिम जाति में एक दल की समस्त समवयस्क स्त्रियाँ, पुरुष की बहिनें मानी जाती हैं। और उस दल की समस्त समवयस्क स्त्रियाँ उसकी पत्नी के समकक्ष, जिसमें उसका विवाह हुआ है।

इस संबंध में ही आर० आर० मैरेट ने "साइकोलोजी एण्ड फोकलोर" (१९२०) नाम के निबन्ध-संग्रह में लिखा है. यह कथन जोड़ना और है कि यद्यपि लोक-वार्ताविद का धर्म, मेरी दृष्टि में, यही है कि वह अपनी विषय वस्तु को स्थिर न मान कर परिवर्तन शील ही माने, जीवित माने, मृत नहीं, फिर भी इसके यह अर्थ नहीं कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ऐसे कोई स्थायी छाया के समूह होंगे ही नहीं जो चित्र कला (Kinematographic) की प्रणाली से देखने पर प्रतिफलित होंगे, ऐसा कुछ भी नहीं मिलेगा जिसे अपेक्षाकृत स्थिरशील मानकर उस परिवर्तन की नाप जोख का साधन बनाया जा सके। उलटे मनुष्य की आन्तरिक प्रकृति के अध्ययन से तो यही घोषित करने की ललक होती है कि "plus ca Change, plus i' est to me'me Chose". यह मानना न्यायसंगत ही होगा .... कि मानव जाति (स्पीसीज) ने वनमनुष्यों (एप्स) से किसी विधि से अपना सम्पूर्ण विच्छेद तो सदा के लिए कर लिया पर तब से अब तक वह अपने रूप को प्रत्यक्षत वैसा ही बनाए रख सकी (पृष्ठ १९)—

यही विद्वान आगे लिखता है·

"किन्तु सभ्य मानस के क्षेत्र में प्राचीन पाखड छिपे पड़े हैं। एक क्षण के लिए भी किंचित विवेक चेतन (रेशनल) का प्रयत्न शिथिल होते ही मानस क्षेत्र में ये सामने आकर उपस्थित हो जाते हैं। (पृ० २२)

यही लेखक आगे लिखता है कि:

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि लोकवार्ता में अवशेषों के अवशिष्ट रहने पर विचार किया जाना है तो ये अवशेष क्यों बच रहते हैं? ये भी अन्य बातों की तरह समाप्त क्यों नहीं हो जाते। लेखक कहता है इसका ठीक उत्तर यह है कि ये इसीलिए बचे

रहते हैं कि ये लोक के उस जीवन के वे उपलक्षण हैं जिनकी निरंतर पुनरावृत्ति होती रहती हैं और जिनमें ही केवल दीर्घ काल में यह अवशिष्ट रहने की आन्तरिक क्षमता रहती है।" इससे स्पष्ट है कि लोक जीवन में जो परंपरागत अवशेष रहता है, उस अवशेष के साथ वह मानस भी अवशेष के साथ रहता है जिसका उस अवशेष के साथ संबंध है। वस्तुत जब तक मानस में उस अवशेष के लिये आग्रह नहीं हो तब तक कोई वस्तु अवशेष की भाँति परम्परा से परम्परा में जा नहीं सकती। मूलत ये मानस की मूल वृत्तियां हैं जो मानव के आदिम से आदिम रूप को अपने अन्दर बचाये हुए हैं।

समस्त मानसिक संस्थान में अब इस 'लोक मानस' की स्थिति को और भी भली प्रकार समझ सकते हैं।
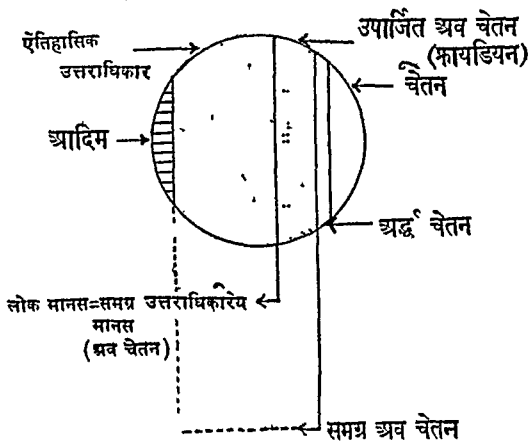
पहिले समस्त मानस के दो बड़े भेद किए जा सकते हैं १—चेतन तथा २—अवचेतन ३—भेद अर्द्धचेतन का भी मानना होगा। यह अवचेतन और चेतन के बीच का अवकाश नहीं यह चेतन की परिधि के रूप में है, चेतन की आवरण सीमा। अवचेतन के दो बड़े भेद होंगे, उपार्जित अवचेतन जो मनोविश्लेषण वादियों के अनुरूप स्थिति रखता है और कुण्ठाओं तथा दमित वासनाओं का बना हुआ है। २ उत्तराधिकारेय मानस। यही लोक मानस है। इसके निर्माण में दो तत्व हैं १ आदिम उत्तराधिकरण—यह मानव के मन की गति का प्राकृतिक दाय है। २ ऐतिहासिक उत्तराधिकरण—आदिम

काल से चलकर आज तक उस प्राकृतिक आदिम मानसिक सस्थान के सूत्रों से सलग्न होकर, इतिहास क्रम में विविध सस्कारो और संस्कृतियो के विकास से उपलब्ध मानसिक सस्कार जो आज हमारी रुचि और प्रवृत्ति के मूल में अन्तर्निहित विद्यमान रहते हैं ।

प्रश्न यह है कि लोक-मानस की यह स्थिति "व्यक्तिगत" है या सामूहिक । ऊपर से यह प्रश्न कुछ हास्यास्पद प्रतीत होता है । मानस का सबध मस्तिष्क से है । मस्तिष्क किसी शरीर का ही अश हो सकता है । अत मानस तो किसी व्यक्ति में ही हो सकता है । किन्तु बात इतनी सरल नही । मानव का मनुष्य से संबध है । मनुष्य का शरीर से । शरीर व्यक्तिपरक होता है । इसके होते हुए भी हम "मानव" की एक ऐसी स्थिति भी मानने को बाध्य होते है जो मात्र "व्यक्तिगत" नही । यह मानव क्या है ? क्या इसके शरीर नही है ? पर वह व्यक्तिरूप में नही मिलेगा । व्यक्ति व्यक्ति मे व्याप्त जो शरीर धर्म है वस्तुत. मानव का वही शरीर है । क्या यह नही पूछा जा सकता कि सृष्टि में जो अरबों मनुष्य हैं, उनमें से प्रत्येक को हम मनुष्य ही क्यो मानते हैं ? जातिवादियो "रेसथ्योरी मानने वालों" ने छोटे मस्तिष्क[1] या सिर वाले नीग्रो और विशाल मस्तिष्क वाले यूरोपियनो में भेद माना है, उनकी विविध शक्तियों में अन्तर माना है उनके द्वारा होने वाले हानि-लाभ को भी आँकने की चेष्टा की है ।[2] पर उन्हें "मनुष्य" सभी ने माना है । यही नही सबसे आदिम जगली मानव से लेकर आज के सभ्यातिसभ्य मनुष्य को भी मानव कहा जाता है । ऐसा क्यों ? कोई ऐसा धर्म अथवा लक्षण अवश्य है जो समान रूप मे सब में व्याप्त है । वह प्रत्येक शरीर मे प्रकट होता है, किन्तु सब में समानता है । यही मानव है जिसमें ससार मे फैले हुए प्रत्येक मनुष्य का रूप समाया हुआ है । इस मानव की सत्ता ही उसमें मानस की सत्ता की स्थिति की भी सूचना देती है । जब "मानव" है तो उसका मानस भी होगा । यह मानस वह मानस होगा जो ऐतिहासिक कालक्रम से आदिम से लेकर आज तक और भौगोलिक क्रम से समस्त विश्व मे प्रत्येक मस्तिष्क में "सामान्य मानस-धर्म" के रूप मे विद्यमान है । इस अर्थ में "लोक-मानस" मात्र व्यक्तिगत नही । व्यक्तिगत में स्थित भी वह सामान्य मानस है जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति का मानस मानस कहलाता है, और जिसके कारण ही मानव मानव के लिए प्रेषणीय हो पाता है । इसी अर्थ मे यह सामूहिक भी है क्योकि समस्त मानव समूह में अपनी सामान्यता के कारण यह धर्म के रूप में

---

१. कार्ल गुस्तव केरस ने सिस्टम आव फिजियालौजी में बताया है कि यूरोपियनों का मस्तिष्क का आकार बडा होता है । ये दिवस जातिया है और नीग्रो जाति का मस्तिष्क छोटा होता है यह रात्रि जाति है ।

२. मेडीसन ग्रान्ट ने इसे स्पष्ट किया है, Franz Boas ने बताया है कि His (i.e. Madeson Grant's)book is a dithyrambic praise of the blond blue eyed long headed white and his achievements and he prophesies all the ills that will befall mankind because of the presence of negroes and dark-eyed races (P. 25 "The Mind of Primitive Man")

विद्यमान प्रतीत होता है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है आज यह लोकवार्ताविदों के द्वारा सिद्ध हो चुका है कि मानव मात्र समान मानस धर्म रखता है।[1]

लोक मानस उस मानव मानस का ही एक अंश और अंग है। इस लोक-मानस का प्रत्यक्षीकरण किसी व्यक्ति के द्वारा नहीं होता। व्यक्ति में विद्यमान रहते हुए भी मनोवैज्ञानिक इस मानस की झाँकी अभिव्यक्ति के माध्यम से ही कर पाते हैं। अनादिकाल से आज तक और सृष्टि में आर से छोर तक मनुष्य-मात्र की जितनी भी अभिव्यक्तियाँ हैं, उनके विश्लेषण से ही लोक मानस की स्थिति और उसके स्वरूप का ज्ञान होता है।

लोक-मानस और मानव प्रकृति

उक्त विवरण से कुछ ऐसा आभास मिलता है कि लोक मानस और मानव प्रकृति को अभिन्न मान लिया गया है। वस्तुतः मानव प्रकृति तो मनुष्य के स्वरूप का मूल है। और मानस उसका एक अंश मात्र। मानव प्रकृति मानस की दिशा निर्धारक प्रकृति है। मानव प्रकृति के, रूढ़ मूल स्वरूप के अनुसार जो मानस ढला, वह जिस प्रकार से ऐतिहासिक भौगोलिक क्रम में प्रतिक्रियावान अथवा क्रियावान होकर विकसित होता हुआ, पर अपने रूढ़ मूल की सीमाओं अथवा तत्वों को न त्यागता हुआ चला आया है वही लोक-मानस है। यह आदिम मानस 'प्रिमिटिव माइंड' भी नहीं है और 'जन मानस' भी नहीं है। यह तो मात्र वह प्राकृतिक आदिम रूढ़ मूल मानस है जो ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक स्थितियों के परिणाम को किसी भी रूप में ग्रहण नहीं करता। इस आदिम शब्द का प्रयोग आज विद्यमान आदिम जातियों के लिए भी होता है। अतः आज आदिम मानस से आदिम जातियों का मानसिक विशेषताओं का भी ज्ञान होता है। निश्चय ही यह लोक मानस नहीं। लोक-मानस का किसी वर्ग अथवा जाति विशेष से संबंध नहीं। वह तो सर्वत्र मानस के मूल में विद्यमान तत्व है। यह जंगल में भी और शहर में भी मिलेगा।

लोक-मानस क्या हमें आज जन-मानस से भी भिन्न मानना होगा। जन को यदि जाति 'रेस' का पर्याय माना जाय तो वस्तुतः लोक-मानस उसका विरोधी है। लोक मानस की अवस्थिति ऐसे जन मानस के सिद्धान्त को भ्रामक सिद्ध करती है। किन्तु आज जन शब्द रेस अथवा जाति के अर्थ में नहीं आता। आज जन शब्द से जनता का भी अर्थ ग्रहण किया जाता है। जनता शब्द भी विश्वभर के सामान्य मनुष्य का वाचक है। अतः जन मानस उस सामूहिक "कलेक्टिव" मनोविज्ञान का एक रूप है जो वस्तुतः मानस के चेतन पक्ष पर बल देता है। जन मानस किसी युग का वह साधारणीकृत मानस होता है, जिसमें चेतन रूप में सामाजिक संस्कार बद्धता के साथ युग के विधि निषेधों के परिणाम से उद्भूत चेतन वृत्तियाँ फलित होती हैं। इसका संबंध चेतना-ग्राह्य वृत्तियों से है।

[1] The Psychological basis of cultural traits is identical among all races, and similar forms develop among all of them (P 33) तथा The similarities of culture the world over justify this assumption of a fundamental sameness of the human mind regardless of race (P 34)

इन मानसिक वृत्तियो की पृष्ठभूमि सामाजिक सस्कारो की चेतना और युग चेतना के साधारणीकरण से प्रस्तुत होती है । इसी कारण यह लोक-मानस से भिन्न है ।

और जिस शाब्दिक अभिव्यक्ति अथवा वाणी मे जितना यह लोक-मानस अधिक मात्रा मे मिलेगा, उतनी ही वह लोक-साहित्य के अन्तर्गत आ सकेगी । मैरेट महोदय ने लिखा है कि, ऐतिहासिक परिस्थितिया बदलती है, जबकि मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ अपेक्षाकृत स्थायी होती है । लोक-साहित्य के विद्यार्थी को दोनो के साथ ही न्याय करना चाहिये । "Psychology and Folklore (P. 121)" क्योकि आज लोक-वार्ता मात्र अवशेषो का ही अध्ययन नही है, लोक-मानस के साथ लोक आज मानव मे जीवित है । लोक साहित्य के द्वारा हम उसे आज उसके इतिहास के साथ विद्यमान रूप मे अध्ययन करते है ।

सहायक साहित्य

(1) Before Psychology, by Henri Frankfort etc
(2) Psychology and Folklore, by R. R. Marett.
(3) The outlines of Mythology, by Lewis Spence.
(4) The Standard Dictionary of Folklore etc Martin Leech.
(5) The Mind of Primitive Man, by Franz Boas
(6) The Evolution of Society by J. A. C. Brown.
(7) A Dictionary of Psychology, by James Drever.

१०. कसक् (संयुक्त धातु)=स० कष+कृ, प्रा० कसक्केइ या कसक्कइ हि० कसकै।

११ कट् (derivative) कर्मवाच्य या अकर्मक, इसका जन्म धातु 'काट्' से हुआ है (देखिए, मूलधातु २७)।

१२ कढ् (derivative) धातु 'काढ' का कर्मवाच्य या अकर्मक है (देखिए—१३)

१३ काढ् (नाम धातु)=स० भूतकालिक कृदन्त-कृष्ट, प्रा० कड्डइ (हेमचन्द्र ४,१८७) हि० काढै।

१४. खरक् (संयुक्त धातु) या खड़क=स० स्खल+कृ, प्रा० खलक्कइ या खडक्कइ, हि० खरकै या खडकै। इसी अर्थ वाली एक द्वित्व धातु और है—खर्-खर् खड-खड। ये मराठी और पंजाबी में भी हैं। इस धातु का मूल अर्थ है फिसलना या लुढकना—शब्द करते हुए। इसके दर्शन मराठी के खडक या खरक, (धारा का प्रवाह अर्थ) में होते है। धातु 'खड' का प्रयोग भी मराठी में है जिसमें मौलिक अर्थ छिपा हुआ है—गिरना। पजाब में भी है जहाँ इसका अर्थ ले जाना[४] है।

१५ गड् (derivative) (be hollowed, be sunk) कर्मवाच्य अकर्मक है जो धातु 'गाड' (देखिए १६) से व्युत्पन है।

१६ गाड् (नाम धातु)=स० संज्ञा—गर्त, प्रा० गड्ड (वररुचि ३,२५) प्रा० गड्डेइ या गड्डइ, हि० गाडै, अथवा इसका अपभ्रष्ट रूप-गाढै (१७)

१७. गाढ् =स० भूतकालिक कृदन्त—गाढ, प्रा० गाढइ, हि० गाढै।

१८. गोद (नाम धातु) चिह्नित करना या गोदना—स० सज्ञा-गोर्द, प्रा० गोद्देइ या गोद्दइ, हि० गोदै (?)

१९ घबराव् (नाम धातु)=सभवत 'गडबड़ाव' का अपभ्रष्ट रूप है, जिसका अर्थ यही है। यह 'गड्ड' से बना है=स० सज्ञा-गर्द (शब्द, चिल्लाहट आदि)।

२०. घिनाव या घिनियाव (नाम धातु)=स० सज्ञा-घृणा या (demunative) घृणि-का (धातु-घृण)=प्रा० घिणा (हेमचन्द्र, १,१२८) या घिणिआ, प्रा० घिणावेइ या घिणावइ या घिणिआवेइ या घिणिआवइ, हि० घिनावै, घिनियावै।

२१. घिर् (derivative)—'घेर' का कर्मवाच्य अकर्मक (देखिए मूल धातु—६४)

२२ चपक् (सयुक्त धातु)=स० चप या चर्प+कृ, प्रा० चप्पक्केइ, या चप्पक्कइ, हि० चपकै।

२३ चमक् (सयुक्त धातु) glitter=स० चमत्+कृ, कर्मवाच्य-चमत्क्रियते (कर्तृवाच्य के भावसहित) प्रा० चमक्केइ, या चमक्कइ, हि० चमकै।

२४. चाह (नाम धातु) 'छाह' का अपभ्रष्ट रूप (देखिए—४०)

२५ चिर् (derivative) be torn='चीर' धातु का कर्मवाच्य या अकर्मक रूप। देखिए—३१

---

४. The Change of 'ल' या 'र' to 'ड' या 'ड' is anomolous यह प्राकृत में हो गया था। हाल की सप्तशतक ४४, अक्खडइ—स० आस्खलति सप्तशतक १९५, खडिअ स० स्खलित। सम्भवत स्कद धातु से कोई सम्बन्ध हो। धातु क्षर और क्षल् भी दर्शनीय हैं। धातु थरक् और फरक् भी देखिए।

२६ चिक्नाव (नाम धातु) smooth polish=स० सना चिक्कण या चिक्विण (सम्भवत यह भी एक संयुक्त शब्द है 'चित' का=चित्र और कृ=प्रा० क्विण) प्रा० चिक्कणावेइ या चिक्कणावइ, हि० चिक्नावै।

२७ चिढाव (नाम धातु) या चिडाव, गाली देना=स० भूतकालिक कृदन्त क्षिप्त ('क्षिप्' धातु से व्युत्पन्न) प्रा० छिडावइ हि० चिढ़ाव (महाप्राणत्व का विपर्यय) या चिडावै (महाप्राणत्व का लोप)[5]

२८ चिताव (नाम धातु)=स० भूत कालिक कृदन्त चित्त, प्रा० चित्तावेइ या चित्तावइ (सेतुबन्ध ११,१) हि० चितावै[6]।

२९ चीत् (नाम धातु) Paint=स० सना चित्र स० चित्रयति, प्रा० चित्तेइ या चित्तइ हि० चीत।

३० चीन् या चीन्ह (नाम धातु) पहचानना=स० सना चिह्न, प्रा० चिण्ह (हेमचन्द्र २,५०) स० चिह्नयति प्रा० चिण्हेइ या चिण्हइ हि० चीन्है या चीनै।

३१ चीर (नाम धातु) फाडना=स० सना चीर (rag) इससे स० चीरयति प्रा० चीरेइ या चीरइ, हि० चीरै।

३२ चुक (संयुक्त धातु) समाप्त होना=स० च्युत+कृ, प्रा० चुक्कइ, (हेमचन्द्र ४, १७७) हि० चुकै।[7]

३३ चूक (गलती)=स० च्यु+कृ, प्रा० चुक्कइ, हि० चूकै।[7]
जहाँ तक व्युत्पत्ति का संबंध है यह धातु पूर्व धातु (३२) के समान ही है। मौलिक अर्थ गिरना भूल' में परिवर्तित हो सकता है। इस अर्थ में यह प्राकृत में बहुधा मिलता है (सप्त शतक, ५,३२३) चुक्कसंकेआ भूल की, फिर सप्त शतक ५,१९९, सेतुबन्ध १,९ में भी है जहाँ टीका इसकी इस प्रकार व्याख्या करती है प्रमादे देशी इति केचित अर्थात् कुछ के मतानुसार यह शब्द देशी शब्द है, जिसका अर्थ भूल करना है—देखिए—S Goldschemidt's edition of सेतुबन्ध।

---

५ (अ) महाप्राणत्व के परिवर्तन के सम्बन्ध में देखिये—
न० ४७ छड या छोड जहाँ महाप्राणत्व है।
(ब) मूल धातु=६५ चढ
(स) प्त का न्त' और 'ड (डड) हो जाना—देखिये धातु जुडाव जो भूतकालिक कृदन्त 'युक्त से बना है।
(द) मूलधातु न० ९२, ९३ जुट और जाड।

६ सेतुबन्ध ११,१ भूतकालिक कृदन्त 'चित्तविअ प्राप्त होती है—(हेमचन्द्र ३१५०) जिसकी ठीक स स्कृत व्याख्या में अथ चेतित या 'निवत्त या परितापित लिखा गया है।

७ हेमचन्द्र ने इसके स्थान पर संस्कृत धातु 'भ्रंश (Fall down) जो 'च्युत' का पर्यायवाची है लिया है। च्युत का ठीक व्युत्पत्ति सेतुबन्ध के व्याख्याकार ने न० १,९ में दी है। स० धातु चुक—(नामधातु)—चुक्कयति।

३४. चोराव् (नाम धातु=चुराना)=सं० चोर या चौर, प्रा० चोरावेइ या चोरावइ हि० चोरावै ।

३५ चौंक् (संयुक्त धातु भय से चौंकना)=सं० चमत्-कृ कर्मवाच्य चमत्क्रियते (कर्तृवाच्य का भाव लिए हुए) प्रा० चमक्केइ या चमक्कइ, अप० प्रा० चवँक्कइ, हि० चौंकै ।

३६ छन् (derivative=छानना) कर्मवाच्य या अकर्मक जो छान् (३८) से व्युत्पन्न है ।

३७. छल (नाम धातु=धोखा)=सं० संज्ञा, छल, सं० छलयति, प्रा० छलेइ, या छलइ, हि० छलै ।

३८. छान् (नाम धातु=Strain, search)=सं० भूतकालिक कृदन्त-स्यन्न, (धातु स्यद्) प्रा० सन्नेइ या छन्नेइ या छन्नइ, हि० छानै । (?)

३९ छाप् (नाम धातु=stamp)='छप्' से व्युत्पन्न कर्तृवाच्य या अकर्मक रूप. सम्भवत 'थाप्' धातु का दूसरा रूप । (परिशिष्ट ४, १३) ।

४०. छाह (नामधातु) या चाह=सं० चतुर्थ वर्ग—उत्साह, प्रा० उच्छाहेइ, या उच्छाहइ (हेमचन्द्र २,२२) हि० छाहै या चाहै । अथवा संस्कृत संज्ञा—इच्छा से व्युत्पन्न, प्रा० इच्छाएइ या इच्छाग्रइ या इछाग्रइ, हि० छाहै या चाहै ।[८]

४१ छिटक (संयुक्त धातु—तितर बितर होना)=सं० क्षिप्त+कृ, प्रा० छिट्टकेइ या छिट्टकइ, हि० छिटकै (देखिए ४६ भी)

४२. छिड (नामधातु)=(be vexed, take offence) धातु 'छीड' या 'छेड़' से व्युत्पन्न कर्मवाच्य या अकर्मक । देखिए ४६ भी ।

४३. छिड़क (संयुक्त धातु=छिडकना)=सं० स्पृष्ट+कृ०, प्रा० छिडक्केइ या छिडक्कइ, हि० छिडकै ।[९]

४४ छींक (नामधातु=छींकना) सं० संज्ञा—छिक्का, सं० छिक्कति, प्रा० छिक्केइ या छिक्कइ, हि० छींकै । छिक्का शब्द स्वयं भी संयुक्त है=छित्+कृ और सम्भवत. छित् शब्द 'क्षुत' का एक दूसरा रूप है, जिसका जन्म सं० धातु 'क्षु' से हुआ है ।

४५ छींट या छीट या छेट (नामधातु—छिडकना) सं० भूतकालिक कृदन्त, स्पृष्ट, प्रा० छिट्ठ ('स्पृ' के स्थान पर 'छि' हो गया जैसे 'छिट्टइ' या 'छिवइ' या 'छिप्पइ' में हो गया था) (हेमचन्द्र, ४,१८२ व १,२५७, देखिए मूल धातु ७८,८० भी) प्रा० छिट्ठेइ या छिट्ठइ' हि० छींटै या छीटै या छेटै ।[१०]

---

८. आदि के 'उ' या 'इ' के लोप के सम्बन्ध मे देखिये तुलनात्मक व्याकरण १७३ । महाप्राणत्व के परिवर्तन के सम्बन्ध में देखिये १३२ ।

९ संस्कृत 'स्पृष्ट' से व्युत्पन्न 'छिड' देखिए न० ४५ 'छीट' । अन्त के व्यजन के मृदुलत्व के सम्बन्ध में छीट से छिड जैसे जुट से जोडी ।

१० 'महाप्राणत्व' के लोप के सम्बन्ध मे देखिये तुलनात्मक व्याकरण—१४५—२ अनुनासिक देखिये १४९ 'इ' का 'ए' परिवर्तन देखिये १४८, संस्कृत धातु 'सिव्' मूलधातु—३४२ ।

४६ छोड, छेड (abuse)=स० भूतकालिक कृदंत कर्मवाच्य=क्षिप्त, प्रा० छेडेइ या छेड्ड, हि० छेड़ै या छाड़ै (देखिए २७=४२) सम्भवत क्षिप्त से एक धातु छिट' निकला जैसे स० धातु जुट, युक्त से व्युत्पन्न हुई। 'छिट' का प्रेरणार्थक छटि' होगा, जैसे जुट' का प्रेणार्थक जोटि हुआ। यहां से प्रा० छेडेइ और प्रा० जोडेइ हि० छेड़—जोड हुआ। छिट् धातु जो जुट के समान है हिन्दी में नहीं मिलती। केवल इसका संयुक्त रूप छिटक मिलता है। (देखिए—४१) सम्भवत ४३ तथा ४५ भी 'क्षिप्त' से व्युत्पन्न हुए हों। इसी प्रकार के धातु समूह है—छुट, छूट, छोड। नीचे लिखी रूप-श्रेणियाँ हो सकती है —

१ स० युक्त, प्रा० जुत्त या जुड़, धातुएँ स० जुट, प्रा० जुट्ट या जुड, हि० जुट, जुड।

२ क्षिप्त प्रा० छुत्त या छुट्ट, धातुएँ—स० छेट, प्रा० छुट्ट छुड, छुट हि० छूट। छोड—प्रेरणार्थक।

३ क्षिप्त प्रा० छित्त या छिट्ट धातुएँ स० छिट प्रा० छिट्ट या छिड, हि० छिट छिड। प्रेरणार्थक—छेड।

(प्राकृत की 'ट्ट' से युक्त धातुएँ संस्कृत भूतकालिक कृदंत कर्मवाच्य से व्युत्पन्न दीखती है। उनका संस्कृत में पुनग्रहण अन्त्य 'ट्' के साथ हुआ। पीछे इन्होंने 'ड' से युक्त प्राकृत धातुओं को जन्म दिया। यह साधारण ध्वन्यात्मक परिवर्तन के नियम के अनुसार हुआ जिसमें ट का ड हो जाता है। दो प्रा० धातुएँ—'ट्ट' से युक्त तथा 'ड' से युक्त—हिन्दी में आती है। 'छिट्ट' का प्रयोग कम मिलता है। संस्कृत धातुओं के साथ इसका वर्णन नहीं मिलता। यह हिन्दी में भी प्राय जीवित नहीं है। छिटक अवश्य मिलता है।

४७ छान (नामधातु=छिनाना)=स० भूतकालिक कृदंत कर्मवाच्य छिन्न ('छिद्' धातु से) प्रा० छिन्नेइ या छिन्नइ, हि० छानै।

४८ छुट या छूट (नामधातु=be let off, be released)=स० भूतकालिक कृदंत कर्मवाच्य—क्षिप्त, प्रा० छुत्त (हेमचन्द्र, २,१३८) या छुट्ट (शुभचन्द्र प्राकृत ग्रामर १ ३, १४२, छुट) प्रा० छुट्टेइ या छुट्टइ हि० छुटै या छूटै (देखिए—४६ तथा ५०) छुट' या क्षुट' धातु का ग्रहण संस्कृत में प्रेरणार्थक तथा सकर्मक रूप के अतिरिक्त नहीं हुआ। संस्कृत में 'छुट्' धातु का अस्तित्व तो है किन्तु इसने एक अलग अर्थ (काटना) ग्रहण कर लिया है। इसी प्रकार का अर्थ-परिवर्तन संस्कृत की एक अन्य धातु-श्रेणी में भी देखा जा सकता है जिनका मूल भी क्षिप्त में है क्षिप्त प्रा० में खित्त (हेमचन्द्र, २,१२७) हो जाता है या खुत्त है (सप्तशतक ४ २७८) या खुट्ट जहाँ से प्रा० नामधातुएँ खुट्ट, या खुड (हेमचन्द्र ४,११६, खुट्टइ या खुडइ यह तोडता है) मिलता है। हिन्दी में खूट' हो जाता है, खुड का कोई अस्तित्व नहीं। ये खुड् तथा इसके प्रेरणार्थक या सकर्मक रूप खोट या खोड संस्कृत में ग्रहण कर लिए गए। (देखिए मूलधातु ४१)

४६. छेद् (नामधातु = Perforate) = सं० संज्ञा छिद्र (धातु-छिद्) जहाँ से सं० छिद्रयति, प्रा० छिद्देइ या छिद्दइ, हि० छेदें।

५०. छोड (derivative-release) 'छुट्' से व्युत्पन्न एक कर्तृवाच्य तथा सकर्मक (देखिए—४८) संस्कृत धातु 'क्षोट' से तुलना करिये।

५१. जुगाव् (नामधातु = pair of labor) सं० संज्ञा-युग्म, प्रा० जुग्ग (हेमचन्द्र २,७८) प्रा० जुग्गावेइ या जुग्गावइ हि० जुगावें।

५२ जताव् (नामधातु = जताना) = सं० भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य ज्ञप्त (धातु ज्ञा के प्रेरणार्थक का) प्रा० जत्तावेइ, हि० जतावें।

५३. जम् (नामधातु = जमना) सं० संज्ञा-जन्म, प्रा० जम्मेइ या जम्मइ (हेमचन्द्र ४,१३६) हि० जमें।

५४. जीत् (नामधातु = जीतना) = सं० भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य-जीत (धातु 'ज्या' का) प्रा० जित्तेइ या जित्तइ, हि० जीतें।

५५. जुड (derivative = जुडना) धातु 'जोड' (५७) का कर्मवाच्य या अकर्मक।

५६ जुट् (नामधातु — जोडना) = सं० भूतकालिक कृदन्त, कर्मवाच्य युक्त; प्रा० जुत्त (हेमचन्द्र १,४२) या जुट्ट (देखिए—४६, ४८) प्रा० जुट्टेइ या जुट्टइ, हि० जुटें। सं० धातु 'जुट्' से तुलना करिये।

५७. जोड (derivative—जोड़ना) 'जुट' (५६) से व्युत्पन्न कर्तृवाच्य या सकर्मक।

५८ जोत् (नामधातु—जोतना) yoke = सं० संज्ञा-योक्त, सं० योक्त्रयति, प्रा० जोत्तेइ या जोतइ हि० जोतें।

५९. जोह या जोव् या जो (नामधातु-देखना) सं० संज्ञा ज्योतिस्, प्रा० जोएइ (हेमचन्द्र ४,४२२) या जोग्रइ (हेमचन्द्र, ४,३३२, जोग्रतिहे) हि० जोऐ या जोवें, जोहे। (व और ह के सम्बन्ध में देखिये तुलनात्मक व्याकरण—६६)

६०. झटक् (संयुक्तधातु—To twitch) सं० झट्+कृ, प्रा० झट्टक्केइ या झट्टक्कइ, हि० झटकें। 'झट' की व्युत्पत्ति के लिए मूलधातु 'झोट' (६६) देखिए।

६१ झपक (संयुक्तधातु = spring) फेंकना इधर-उधर चलना, Snatch) = सं० झप + कृ, प्रा० झपक्केइ या झपक्कइ, हि० झपकें। हेमचन्द्र (४,१६१) इससे मिलती-जुलती एक और असंयुक्त क्रिया 'झँपइ' देता है, किन्तु केवल अकर्मक रूप में (Move to and fro)। इसका संबंध संस्कृत भ्रमति से जोडा गया है। हिन्दी और मराठी में यही असंयुक्त क्रिया 'झाँपै' है, किन्तु सकर्मक रूप में (Cover with thatch) (इसका साहित्यिक अर्थ होता है घास के पुलदे फेंकना)। 'झप' की व्युत्पत्ति के लिए देखिए—परिशिष्ट, संख्या–६। हिन्दी में एक क्रिया-विशेषण झप् (जल्दी) मिलता है। हिन्दी में एक अन्य प्रकार की संयुक्त धातु 'झपट्' भी है, जिसका अर्थ प्राय झपक् के समान है।

६२. झलक् (संयुक्त धातु) चमकना = सं० झला+कृ, प्रा० झल्लक्केइ, या झल्लक्कइ हि० झलकें। झल की व्युत्पत्ति के लिए देखिए-मूलधातु, संख्या ६८।

६३ झांक (नामधातु = झांकना) = सं० मना अध्यक्ष, प्रा० अज्झक्खइ, हि० झांक (आरंभिक 'अ' का लोप हो गया, तथा महाप्राणत्व का भी लोप हो गया)

६४ झींक (संयुक्त धातु प्राह् भरना खेद करना) सं० शात + कृ, कर्म वाच्य-शात्क्रियते (क्त वाच्य भाव सहित) प्रा० झिक्केइ या झिक्कइ, हि० झींकै।

६५ झुक् (संयुक्तधातु) या झाक (Stagger, nod, bend) = सं० क्षुभ कर्म० एकवचन० नपुंसक लिंग क्षुप + कृ प्रा० झुक्कइ हि० झुकै या झाक।

६६ झाक् या झाक (संयुक्त धातु) = फकना = सं० क्षेप (या क्षप) + कृ प्रा० झक्कइ, हि० झाक या झाकै।

६७ टिक (derivative, = ठहरना be propped = नं० ६८ से व्युत्पन्न कर्मवाच्य या अकर्मक रूप।

६८ टेक् (संयुक्त धातु—Prop Support) = सं० त्राय ('त्रै' धातु का) + कृ, प्रा० टायक्कइ, हि० टेकै ?

६९ ठठ (नाम धातु) fix arrange = सं० भूतकालिक कृदन्त कर्म-वाच्य स्तब्ध (स्तम्भ धातु) प्रा० ठड्डइ या ठड्डइ, हि-ठठ ड' का 'ठ' में परिवर्तित होना सम्भवतः आरंभिक 'ठ' के कारण है। पुरानी हिंदी में 'ठठठ' थोड़ा देर ठहरने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है या आश्चर्य चकित या भौंचक्के होने के अर्थ में है। जब भूत कालिक कृदन्त उसी रूप में प्रयुक्त होता है तब मूल 'ड' रखा जाता है। इस प्रकार पुरानी हिंदी में ठाढ तथा आधुनिक में 'ठडा' (खड़ा हुआ)।

७० ठठक (संयुक्त धातु) ठिठक (थोड़ी देर ठहरना) सं० स्तब्ध + कृ, प्रा० ठठ्ठक्कइ हि० ठठक या ठिठक। 'ठठ' की व्युत्पत्ति के लिए ६९ देखिए। 'ड' के स्थान पर 'ड'—देखिए तुलनात्मक व्याकरण—३५।

७१ ठनक् (संयुक्तधातु) (एक प्रकार की ध्वनि) = सं० स्तन (Sounding) + कृ, प्रा० ठनक्केइ या ठनक्कइ, हि० ठनक। उ० टकार—ट + ट, ट या ठ का तात्पर्य ध्वनि से है।

७२ ठमक (संयुक्तधातु Strut) = सं० स्तम्भ + कृ, प्रा० ठम्भक्कइ ठम्हक्कइ हि० ठमक। सं० स्तम्भ प्रा० थम या ठम (हेमचन्द्र २ ६ हिंदी थाम् और ठाम। 'म्भ' 'का म्ह' व 'म' में परिवर्तन देखिए मूल धातुएं ११७ ११८।

७३ ठमक (संयुक्त धातु) Knock Clip = सं० ठग + कृ (देखिए परिशिष्ट, संख्या १० में ठीक') हिन्दी में एक विस्मयादिबोधक 'ठक्' खटखटाने की ध्वनि के अनुरूप, ठगो' भी है (Grammar)

७४ ठहर् (नाम धातु रहना धातु संख्या ७५ का एक अन्य रूप है। सम्भवतः इस प्रकार हो—ठाइ = ठहइ = ठहर = ठहरा। या 'र तत्व उसी प्रकार हो जैसे 'र या ल' ठहर और ठहल में है। हिंदी में एक संज्ञा ठाहर भी है = स्थान, 'र ल' के सम्बन्ध में तुलनात्मक व्याकरण ३५४ २—ट—प्रा० ठइ—संस्कृत स्था।

७५ ठाइ या ठाड नामधातु (be fixed, be erect या खड़ा होना) सं० "स्थापित

कृदन्त कर्मवाच्य स्तव्ध, प्रा० ठड्ढ (हेमचन्द्र २,३९) प्रा० ठड्ढेइ, या ठड्ढउ हि० ठाढै या ठाडै ।

७६ डर् (नामधातु–भय) = स० संज्ञा—दर, प्रा० डर (हेमचन्द्र ८,२१७, प्रा० डरइ हेमचन्द्र ४,१९८,) हि० डरै ।

७७ डाह् (नामधातु = गरम होना) = स० संज्ञा दाह, प्रा० डाह (हेमचन्द्र १,२१७) प्रा० डाहेइ या डाहइ, हि० डाहै ।

७८. ढक् (संयुक्तधातु, ढकना) = संस्कृत संज्ञा-स्थग् (कर्म० एकवचन० नपुंसक—स्थक्) + कृ० प्रा० ढक्कइ (हेमचन्द्र ४,२१) हि० ढकै (देखिए मूलधातु, संख्या-१०५)" ।

७९ ढल् (derivative) या ढर (बहना) 'ढाल' या 'ढार' धातु का कर्मवाच्य या अकर्मक । देखिए परिशिष्ट, धातु ११ ।

८० थक् या थाक् (संयुक्त धातु-थकना) स० स्तभ् (कर्म कारक-एक वचन-नपुंसक०-स्तप्) + कृ, प्रा० थक्केइ (हेमचन्द्र ४,३७०) या छठवाँ वर्ग – थक्कइ (हेमचन्द्र-४,८७,२५९ – जहाँ यह स० फक्कति का स्थानापन्न कहा गया है, जिसका अर्थ धीरे-धीरे चलना है, जो थकावट के कारण हो) हि० थकै, थाकै । हेमचन्द्र (४,१६) ने इसधातु को 'स्था' (खड़ा होना) के समान माना है। बंगाली में 'थाक्' है जिसका उच्चार 'थक्' होता है – रहना, ठहरना । हिन्दी में इसका मूल अर्थ 'ठहर जाना' (Come to stop) है, जो थकान के कारण हो । स० कर्मवाच्य 'स्तम्यते' (= स्तप् + कीयते) का अर्थ है—मजबूत बनाना, या कठोर बनाना (be paralysed) । हिन्दी मे मूल अर्थ कठोरता सुरक्षित है। ठहरना चाहे थकान के कारण हो अथवा आश्चर्य के कारण हिन्दी का 'थकित्' दोनो अर्थ रखता है ' इससे व्युत्पन्न अन्य रूप है—अथक्, थकावट, थक्का फक्का (Perplexed)[१२] ।

---

११. यह संस्कृत की मूल धातु तक्ष् से भी व्युत्पन्न हो सकता है । पहला वर्ग तक्षति प्रा० तक्खइ = थक्कइ = ढक्कइ । परिशिष्ट की धातुएं ठाँस्, ठक्, ठोस्, ठोक् की तुलना करिये । स० धातु 'तक्ष्' और 'त्वक्ष्' – प्राकृत में 'थ' के स्थान पर 'ठ' होजाता है । स० धातु 'तक्ष'—(chipping off and covering) ऐसा ही अर्थ परिवर्तन हिन्दी धातु मढ, (ढकना) मे, जो स० मृश् (रगडना) से व्युत्पन्न है, हो गया है ।

१२ S Goldschmidt, Prakritica (No 7, P. 5) मे इसकी व्युत्पत्ति नामधातु से बताता है = भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य 'थग्ध (धातु, थघ) जिसको वह धातु 'स्थभ' के समान बताता है और उसके मतानुसार 'ग्ध' 'क्क' में परिवर्तित हो गया है । इस सिद्धान्त का आधार तीन कल्पनात्मक स्थितियां हैं थघ तथा स्तभ की समानता, थग्ध (भूतकालिक कृदत-कर्मवाच्य) का अस्तित्व तथा 'ग्ध' का 'क्क' में परिवर्तित होना, पिशेल (Bezzenberger's Beitrage' III, २३५) इसकी व्युत्पत्ति स० धातु 'स्थक्' से मानता है ।

८१ थपक (संयुक्तधातु) = सं० थप + कृ 'थप' की व्युत्पत्ति के लिए देखिए, धातु 'थाप' परिशिष्ट, धातु-संख्या १३।

८२ थलक या थरक (फड़फड़ाना, Tremble) संभवतः 'खरक' का एक भिन्न उच्चारण है या 'फरक' का। 'फ' तथा 'थ' का विनिमय प्रा० फक्कइ तथा थक्कइ में देखा जा सकता है (हेमचन्द्र ४ ८७) 'ख और 'थ' का विनिमय खभो और थभो में देखा जा सकता है (हेमचन्द्र—२,८) इसका द्वित्व रूप थल्थल्' या 'थर् थर' भी है जो 'खरखर' या 'फर फर के समान है।

८३ थिरक (संयुक्तधातु नाचने आदि में) = सं० स्थिर + कृ, प्रा० थिरक्केइ या थिरक्कइ हि० थिरक

८४ थिराव्, (नामधातु = settle as liquor) = सं० संज्ञा स्थिर, सं० स्थिरायति, प्रा० थिरावइ या थिरावड हि० थिराव।

८५ थुक (संयुक्तधातु) = सं० ष्ठव (या स्थव) + कृ प्रा० थुक्केइ या थुक्कइ हि० थूक। 'एव का संकुचित रूप उ, देखिये तुलनात्मक व्याकरण—१२२

८६ दउड या दौड (run-नामधातु) = सं० संज्ञा द्रव प्रा० दव— प्रा० 'दवडेइ' या दवडइ, (४०) हि० दउड़ प० हि० दौड।"

८७ दरक (संयुक्तधातु) (Split) = सं० दर + कृ प्रा० दरक्केइ या दरक्कइ, हि० दरक।

८८ दहक (संयुक्तधातु जलना) = सं० दह + कृ, प्रा० दहक्केइ या दहक्कइ हि० दहक।

८९ दुख् (नामधातु-पीड़ा) = सं० संज्ञा दुःख सं० दुःखयति प्रा० दुक्खेइ या दुक्खइ हि० दुख।

९० धड़क (संयुक्तधातु भावावेश में जलना दुखी होना भय से) = सं० दग्ध + कृ, प्रा दड्ढक्कइ, हि० धड़क। इसका द्वित्व रूप धड़धड़ भी है।"

९१ धार् (नामधातु उंडेलना) = सं० संज्ञा धार प्रा० धारेइ या धारइ हि० धारै।

९२ धौंक या धौंक (संयुक्त धातु breathe upon) = सं० धम + कृ प्रा० धमक्केइ या अप० प्रा० धवँक्कइ, हि० धौंक।

९३ नट (नामधातु-नाचना) = सं० संज्ञा-नत सं० नतयति प्रा० नट्टेइ, या छठवाँ वर्ग नट्टइ (हेमचन्द्र ४,२३०—२,२३०) हि० नट। सं० धातु 'नट' (प्रथम वर्ग नटति या दशम् वर्ग-नाटयति) सम्भवतः प्राकृत से ली गई है।

---

१३ चण्ड के प्राकृत-लक्षण' (C D 11, 27 b) में एक धातु 'डव डव' की ओर इंगित किया गया है जिसका अर्थ है मुँह नीचा किये दौड़ना। मराठी में 'डव डव तथा डवड दोनों इसी अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। इसमें दवड भी है। ये दोनों धातुएँ एक ही हैं। प्रारम्भिक 'द का ड' में बदल जाना अनहोनी बात नहीं है (हेमचन्द्र १,२१७)

१४ हिन्दी में धड़ (body) तथा प्रबल ध्वनि के लिए भी आता है। यह सं० दृढ़ से निकला होगा। प्रा० दढ = हि० धढ

९४ नह् (derivative)=बहना, 'नहा' (मूलधातु, संख्या १३८) का कर्म वाच्य या अकर्मक रूप है। जिसकी व्युत्पत्ति नहा से हुई है।

९५ नहाट् (नामधातु-भागना)=सं० भूत कालिक कृदन्त कर्मवाच्य 'स्नस्त' (स्नस् धातु) प्रा० ण्हट्टइ, पू० हि० नहाटै।

९६ निकल (derivative) या निकर—धातु 'निकाल' (संख्या ९८) से व्युत्पन्न-कर्मवाच्य या अकर्मक।

९७. निकस् (derivative-be expelled)=मूल धातु 'निकास्' (संख्या—१३९) से व्युत्पन्न कर्मवाच्य या अकर्मक रूप।

९८. निकाल (नामधातु) या निकार्=सं० भूत कालिक कृदन्त कर्मवाच्य निष्क्रान्त, पालि तथा प्रा० निक्कन्तुर, प्रा० निक्कल्हइ या निक्कालइ, प० हि० निकालै या पू० हि० निकारै[15]।

९९ निखोड (नामधातु) या निखोर (Peel)=सं० भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य-निष्कुष्ट: प्रा० निक्कोट्टइ) 'उ' के स्थान पर 'ओ' हो गया—हेमचन्द्र १,११९) या निक्खोडइ।

१०० निकोस् (नामधातु=grim) सं० संज्ञा-निकुस्मय (धातु—नि+कु+स्मि से) सं० निकुस्मयते; प्रा० निक्कोस्सेइ या निक्कोस्सइ (हेमचन्द्र १.११६) हि० निकोसै।

१०१. निगल् (नामधातु=निगलना) सं० संज्ञा-निगल्, प्रा० निगलेइ या छठवां वर्ग-निगलइ, हि० निगलै (यह अत्यन्त प्राचीन धातु हो सकती है=सं० नि+गृ, छठवां वर्ग-निर्गिलति। 'इ' का 'अ' में परिवर्तन हो गया है।

१०२. निपट् (नामधातु समाप्त होना)=सं० संज्ञा-निष्पत्ति (धातु—'निस्+पद्' से) प्रा० निप्पट्टेइ या छठवां वर्ग-निप्पट्टइ, हि० निपटै। (?)[16]।

१०३ निबह् (derivative) या निभ-मूलधातु-निबाह (संख्या १४६) से व्युत्पन्न।

१०४. पइठ (पैंठ)=नामधातु (प्रविष्ट होना)=सं० भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य-प्रविष्ट, प्रा० पइट्ठ (हेमचन्द्र-४,३४०) प्रा० पइट्ठेइ या छठवां वर्ग पइट्ठइ, हि० पइठै, पैठै।

१०५. पक् (नामधातु=पकना)=सं० भूत कालिक कृदन्त कर्मवाच्य-पक्व, प्रा० पक्क (हेमचन्द्र २,७९) प्रा० पक्केइ या पक्कइ, हि० पकै।

१०६ पकड् (नामधातु=पकडना)=सं० भूत कालिक कृदन्त कर्मवाच्य प्रकृष्ट, प्रा० पक्कड्ढइ (हेमचन्द्र ४,१८७) हि० पकडै।

१०७ पच्छताव् (नामधातु=पश्चाताप करना)=सं० संज्ञा पश्चाताप, प्रा० पच्छ-तावेइ या छठवाँ वर्ग—पच्छत्तावइ, हि० पछतावै।

१०८. पट् (नामधातु—अदा हो जाना, छत पाटना, सींचना)=सं० संज्ञा-पत्र, या-पट्ट या

---

१५ 'ढ' का 'ल्ह' में परिवर्तन-देखिये तुलनात्मक व्याकरण—११५ संस्कृत धातु निस्+कल् सं० निष्कालयति=प्रा० निक्कालेइ।

१६ दन्त्य 'त्त' का मूर्धन्य 'ट्ट' हो गया है। प्राकृत पट्टणा संस्कृत के पत्तन से व्युत्पन्न हुआ है (वररुचि ३,२३ प्रा० पडइ संस्कृत पतित वररुचि ८,५१)

पट प्रा० पट्टेइ या (छठवा वग) पट्टइ, हि० पट । स० में पत्र का अर्थ है सिवाद या पात्र, पट्ट का अर्थ है वहीखाता जिसमें अन्यवगी का हिमाब लिखा जाता है पट का त्रत है—छत ।

१०८ पनप (नामधातु—बढना) = स० सना प्रपञ्च (धातु प्र + पच) स० प्रपचयति, प्रा० पपणेइ या पपणइ (हेमचन्द्र २४२) हि० पनपै (पपन का रूप) तु० व्याकरण—१३३ ।

११० पनियाव (नामधातु—सींचना) = स० सना पानीय प्रा० पाणिअ' (हेमचन्द्र १ १०१) प्रा० पणियावेइ या पणियावइ, हि० पनियावै ।

१११ परसि या परस (नामधातु—छूना) = स० सना-स्पर्श, प्रा० फरिस (वररुचि ३ ६२) प्रा० फरिसइ (हेमचन्द्र, ४ १८२) हि० परसि या परसै (महा प्राणत्व का लोप हो गया, 'इ' के स्थान पर अ आ गया) ।

११२ पलट (नामधातु = उलटना) या पलथ = स० भूतकालिक कृदन्त कमवाच्य पर्यस्त, प्रा० पल्लट्ट या पल्लत्थ (वररुचि ३ २१ हेमचन्द्र २ ४७) प्रा० पल्लट्टइ या पल्लत्थइ (हेमचन्द्र ४,२००) हि० पलटै या पलथै । (हेमचन्द्र ४,२००/२८५ पल्हत्थ और पल्हत्थट २—तु० व्याकरण—१६१)

११३ पहिचान या पहचान (नामधातु = पहचानना) = स० सना-परिचयन प्रा० परिच आणेइ या परिचअणइ, हि० पहिचानै या पहचानै । र के स्थान पर ह के लिये देखिये तुलनात्मक व्याकरण ६६, १२४ ।

११४ पिहन या पहिन् (derivative) मूलधातु 'पिन्हाव या 'पहिना' (सख्या १६७ १६६) का कमवाच्य या अकर्मक[१७] ।

११५ पिचक (सयुक्तधातु—पिचकना) = स० पिच्च + कृ, प्रा० पिच्चवकेइ या पिच्चवकइ, हि० पिचकै । पिच्च या पिच्' की व्युत्पत्ति के लिए देखिए मूलधातु 'पीच (सख्या १३८) सस्कृत में यह शब्द प्रा० से गृहीत हुआ है[१८] ।

११६ पिछल या फिसल (नामधातु—फिसलना) = स० सना पिच्छिल या पिच्छल (slippery) प्रा० पिच्छलइ या पिच्छलेइ हि० पिछलै या फिसलै (महाप्राणत्व प में आ गया । छ का स हो गया । देखो तुलनात्मक व्याकरण ११ ।

११७ पिट (derivative—पीटना) धातु पाट (सख्या—११६) का कमवाच्य या अकर्मक ।

११८ पिट् (derivative—पाटना आदि) धातु पेल (सख्या—१२१) से व्युत्पन्न कमवाच्य या अकर्मक ।

११६ पाट (नामधातु) = स० भूतकालिक कृदन्त पत्र वाच्य—पिष्ट प्रा० पिट्ठ (तुलनात्मक

[१७] बंगला में धातु पिनध है जो स० भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य (पिनद्ध) का नामधातु है। हिन्दी धातु का भी इसी प्रकार व्याख्या हो सकती है जिसमें ध का ह हो गया है।

[१८] स० में पिचिट शब्द । धात शब्द के विषय में परिवर्तित हुआ जाता है।

—१७३) या पिट्टइ (ट्ठ का ट्ट; पल्लट्ठइ का जैसे पल्लट्टइ हो गया, (हेमचन्द्र—४,२००) हि० पीटै । देखिए--१२१ ।

१२०. पुकार (नामधातु) स० सज्ञा—स्फूत्कार या फूत्कार या पूत्कार, प्रा० फुक्कारेइ या पुक्कारेइ या पुक्कारइ, हि० पुकारै[19] ।

१२१. पेल् (नामधातु—भीचना, पीटना) =स० भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य पिण्ट, देखिए मूलधातु सख्या—१८४ ।

१२२. पुन् (नामधातु) स० सज्ञा पुण्य ।

१२३. फटक् (सयुक्तधातु—फटकना) =स० स्फट+क्र, प्रा० फट्ट वकेइ या फट्टक्कइ हि० फटकै । प्राकृत में 'ट' का ट्ट, देखो, मूलधातु १८६ ।

१२४. फरक् या फडक (सयुक्तधातु=हिलना) =सं० स्फर+कृ, प्रा० फरक्केइ या फरक्कइ, हि०=फरकै, फडकै (देखिए धातुएँ—८२,११४) धातु फरफर या फुरफुर भी होती है ।

१२५. फिसल् (नामधातु—फिसलना)—देखिए—११६ । देखो परिशिष्ट धातु न० ८ ।

१२६. फूँक् (सयुक्त धातु) =स० फूत्+क्र, प्रा० फुक्केइ, फुक्कइ हि० फूँकै । (हेमचन्द्र ४,२२२,३ फुक्किज्जत और सप्तशतक १७८ फुक्कतम्र)

१२७. फुक् (derivative) धातु सख्या १२६ (फूँक) से व्युत्पन्न कर्मवाच्य या मकर्मक ।

१२८ वइठ् या वैठ (नामधातु) =स० भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य उपविष्ट, प्रा० उवइट्ठ या ओइट्ठ (हेमचन्द्र १,१७३) हि० वइठै या वैठै ।[20]

१२९ वक् (सयुक्त धातु) =स० वाच्+क्र, प्रा० वक्कइ, हि० वकै या वुक—प्रा० वुक्कइ का अप्रभ्रष्ट रूप हो (हेमचन्द्र ४,९८) सं० वुक्कति या वुक्कयति (व्र्+क्र) की सयुक्त धातु । हिन्दी में 'वुक' नही है, किन्तु इसका derivative वुकलाव हिन्दी में मिलता है । मराठी में दोनो वुक या वुकेल प्राप्त होते हैं ।

१३०. वँच् (नामधातु—पढना) =स० सज्ञा-वाच्य, प्रा० वच्चइ, हि० वाँचै ।

१३१. वहक् (सयुक्त धातु—भटकना) =सं० वह्निम्+क्र, प्रा० वहिक्केइ या वहिक्कइ, हि० वहकै ।

१३२. विथ्र (derivative—फैलना) मूलधातु 'वियार' (संख्या—२२५) से व्युत्पन्न कर्मवाच्य या अकर्मक ।

१३३. विराव् (नाम धातु—Mock) =स० संज्ञा-विराव (आवाज), प्रा० विरावेइ या विरावइ, हि० विरावै ।

---

१९. 'फ' का 'प' में परिवर्तन, देखिये धातु सख्या १११ 'परिस्' अकर्मक कर्मवाच्य का रूप चन्द के पृथ्वीराज रासो में प्राप्त होता है--पुक्कर् ।

२०. 'व' का 'व' में परिवर्तन विधि-नियम विरुद्ध है । हिन्दी वइढ की दूसरी व्युत्पत्ति प्रा० उवइट्ठ से की जा सकती है, जिसमें से प्रारम्भ का 'उ' लुप्त हो गया । देखो तुलनात्मक व्याकरण १७३.

१३४ बिलट (नामधातु—खराब होना) सम्भवत स० भूतकालिक कृदन्त कमवाच्य विलम्बित (विलप्त) से सबधित ।

१३५ बीट (नामधातु—बिखेरना) = स० भूतकालिक कृदन्त कमवाच्य-व्यस्त, प्रा० विट्ट (विट्ठ) प्रा० विट्टेइ या विट्टइ हि० बीट ।

१३६ बीत (नाम धातु—समाप्त होना) स० भूतकालिक कृदन्त कमवाच्य वीत प्रा० वित्त प्रा० वित्तेइ या वित्तइ, हि० बीत । (संस्कृत निहित के स्थान पर प्रा० निहित्त (हेमचन्द्र २६६) ।

१३७ बेढ (नामधातु—घेरना) = स० वेष्ट, प्रेरणायक वेष्टयति या प्रथमवग-वेष्टते, प्रा० वेढेइ (हेमचन्द्र ४,५१) या वढ्ढइ (हेमचन्द्र ४,२२१) हि० बेढ ।

१३८ बउराव् या बौराव् (नाम धातु—पागल होना) = स० सना वातुल, प्रा० वाउलावेइ या वाउलावइ, हि बउरावै या बौरावै । देखिये तुलनात्मक व्याकरण २५ ।

१३९ भाग् (नामधातु—भागना) = स० भूतकालिक कृदन्त कमवाच्य भग्न प्रा० भग्ग (हेमचन्द्र ४,३५४) प्रा० भग्गेइ या भग्गइ हि० भाग ।

१४० भींग या भीग (नामधातु—भीगना) = स० अभ्यग, प्रा० अभिगइ, अंभिगइ, हि० भीगै या भीग (?) मूलधातु भीज (परिशिष्ट सख्या २१) से मिलाइए ।

१४१ भुन (derivative—भुनना) धातु भून (सख्या—१४३) से व्युत्पन्न कमवाच्य या अकमक ।

१४२ भूल् (नामधातु) भोल या भार (भूलना, गलती करना) स० भूत कालिक कृदन्त कर्मवाच्य—भ्रष्ट, प्रा० भूल्लइ (हमचन्द्र ४ १७७) प० हिन्दी—भूलै या भोलै, पू० हि० भूर या भोर, स० भ्रष्ट = प्रा० भ्रड्ढ = भ्रल्ह[२१] = भुल्ल ।

१४३ भून (नामधातु) = स० भूतकालिक कृदन्त कमवाच्य भृण (Pan ८ २ ४४) प्रा० भुणेइ या भुणइ हि० भूनै ।

१४४ मढ् (नामधातु—मढना, ढकना) = स० भूतकालिक कृदन्त कमवाच्य मृष्ट, प्रा० मड्ढ या मड्ड, प्रा० मड्डइ या मढइ (हेमचन्द्र ४ १२६) हि० मढ़ै । स० धातु मठ (ढकना) आदि प्राकृत या पालि मट्ठ (= मृष्ठ) से गृहीत है जहाँ से 'मठ आया किन्तु हि० में मढ़ या मढ़ा है । इसी प्रकार बढ़, बेंढ़ धातु से भी ।

१४५ मत (नाम धातु—परामर्श करना) = स० सना मत प्रा० मतेंइया मतइ (हेमचन्द्र ४, २६० मतियो) हि० मत ।

१४६ मिट (derivative—be effaced) धातु मेट' (१५३) का कमवाच्य या अकमक ।

१४७ मुड (derivative)—मूंडना—मूलधातु मूंड (२८४) से व्युत्पन्न कमवाच्य या अकमक ।

१४८ मुद (derivative) बन्द होना—धातु 'मूद' (१५१) से व्युत्पन्न कमवाच्य या अकमक ।

---

२१ भार् या भोर से पूर्व म इसका संस्कृत नाम धातु भ्रमर स हिन्दी में 'भारा' या 'भोना मानता था ।

१४९ मू (नामधातु—मरना) = सं० भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य—मृत, प्रा० मुग्र (हेमचन्द्र ४४२) प्रा० मुग्रइ, हि० मुए।

१५०. मूत् (नामधातु—पेशाब करना) = सं० संज्ञा-मूत्र सं० मूत्रयति, प्रा० मुत्तेइ या मुत्तइ, हि० मूतै।

१५१ मूँद (नामधातु—बन्द करना) = सं० संज्ञा-मुद्रा, सं० मुद्रयति, प्रा० मद्देइ या मद्दइ, हि० मूँदे। (हेमचन्द्र ४, ४०१, दिण्णमुद्द—(sealed)

१५२. मून (नाम धातु—चुप रहना) = सं० भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य मून ('मू' धातु से) प्रा० मूणेइ या मूणइ, हि० मुन (अथवा 'मौन' संज्ञा से)

१५३ मेट् (नामधातु—मिटाना) = सं० भूतकालिक कृदन्त कर्म वाच्य मृष्ट, प्रा० मिट्टेइ या मिट्टइ (मिट्टइ) हि० मेटै। पाली मट्ठ मट्ट = मृष्ट।

१५४ मौल् या मौर (नामधातु = खिलना) = सं० संज्ञा—मौल, कर्म मौलयति, प्रा० मौलेइ या मौलइ, प० हि० मौलै, पू० हि० मौरै।

१५५ मौलाव या मौराव (नामधातु—blossom) = सं० मौल, प्रा० मौलावेइ या मौल्लावइ, प० हि० मौलावै पू० हि० मौरावै।

१५६. रग् (नामधातु—be attached) सं० भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य रग्न, प्रा० रग्ग (हेमचन्द्र २, १०) प्रा० रग्गेइ, हि० रगै।

१५७. रग् (नाम धातु—रंगना) = सं० संज्ञा-रंग, सं० रंगयति, प्रा० रंगेइ या रंगइ हि० रँगै।

१५८ रुक् (नाम धातु—रुकना) धातु 'रोक' (१६२) से व्युत्पन्न कर्मवाच्य या अकर्मक।

१५९ रुध् या रुद् रुंध् (२९८) से व्युत्पन्न कर्मवाच्य या अकर्मक।

१६० रूठ् या रुट (क्रुद्ध होना) सं० भूतकालिक कृदन्त कर्म वाच्य रुष्ट प्रा० रुट्ठ (हेमचन्द्र ४, ४१४) या रुट्ठ, प्रा० रुट्ठेइ या रुट्ठइ, हि० रूठै या रूटै।

१६१ रेंक् (संयुक्त धातु = रेंकना) = सं० रेप् (कर्म, एक वचन, नपुंसक रेट्) + कृ, प्रा० रेक्केइ या रेक्कइ, हि० रेंकै।

१६२. रोक् (संयुक्त धातु—बाधा डालना) = सं० रुध्, कर्म, एक वचन, नपुंसक-रुत् + कृ, प्रा० रुक्केइ या रुक्कइ हि० रोकै।

१६३. रोप् (derivative = जमाना) मूलधातु रुप् (२९५) से व्युत्पन्न सकर्मक या कर्तृवाच्य।

१६४ लगड् (नाम धातु) = सं० संज्ञा—लंग, प्रा० (diminutive) लगड, प्रा० लगडेइ या लगडइ, हि० लगडै।

१६५ लव् या लौ (नाम धातु—reap) = सं० संज्ञा—लव, सं० लवयति, प्रा० लवेइ या लवइ, हि० लवै या लौए।

१६६ लूक् (छिपना—संयुक्त धातु) = सं० लुप् + कृ, प्रा० लुक्कइ (हेमचन्द्र ४, ५५) हि० लुकै। 'लुप्' का अर्थ है 'बाहर हो जाना या लोप् हो जाना। इसकी व्युत्पत्ति सं० धातु लुप् (तोडना) से हुई है। यह मूल अर्थ प्राकृत के 'लुक्कइ' में अब भी सुरक्षित है, जिसका अर्थ तोडना, काटना (हेमचन्द्र, ४, ११६, जहाँ यह

स० तुड् के समान बताया गया है) तथा अंतर्धान होना अथवा अपने को छुपाना है (हेमचन्द्र ४ ५६) जहाँ यह स० 'निली' के समान बताया गया है ?[१२]

१६७ लुभाव् या लुहाव् (लुभाना) स० संज्ञा-लोभ, प्रा० लोभावइ या लोहावइ, हि० लुभावै या लुहावै ।

१६८ सज् (derivative—सजना-सजाना) 'धातु' 'साज (परिशिष्ट संख्या २४) का कर्मवाच्य या अकर्मक ।

१६९ सटक (संयुक्त) या सडक (get away)=स० सन्न या सद्+कृ प्रा० सट्टक्कइ या सडक्कइ, हि० सटकै या सडकै । 'सन्न' का अर्थ है ढकना, छिपावट । धातु 'सन्' प्रा० सड' हो जाता है (वररुचि ८,५१, हेमचन्द्र, ४,२१६)

१७० सध (derivative—सधना) मूल धातु साध' (३३६) से व्युत्पन्न कर्मवाच्य या अकर्मक ।

१७१ समुहाव (नामधातु)=स० संज्ञा-समुख, प्रा० समुहावइ या समुहावइ, हि० समुहावै ।

१७२ सरक् (संयुक्त धातु=खिसकना) स० सर+कृ, प्रा० सरक्कइ, या सरक्कइ, हि० सरकै । सम्भवत यह सडक' धातु का ही एक रूपान्तर हो ।

१७३ सराप् (नामधातु—शाप देना)=स० शाप का अपभ्रष्ट रूप ।

१७४ साठ, या साढ या साँट (derivative—जोडना मिलाना) मूलधातु सठ (२२२) से व्युत्पन्न सकर्मक या कर्तृ वाच्य ।

१७५ सील (नामधातु—सालना)=स० संज्ञा-शल्य, प्रा० सीअलेइ, या सीअलइ, हि० साल ।

१७६ सुधर (derivative—सुधरना) धातु सुधार' (३४६) से व्युत्पन्न कर्मवाच्य या अकर्मक ।

१७७ सुहाव् (नामधातु)=स० संज्ञा सुख, प्रा० सुहावेइ या सुहावइ, हि० सुहावै ।

१७८ सुहाव (नामधातु—सुन्दर होना)=स० संज्ञा शोभ, स० नामपति, प्रा० सोहावेइ या सोहावइ हि० सुहाव । यह मूलधातु भी हो सकती है जिसकी व्युत्पत्ति 'शुभ' धातु के प्रेरणार्थक से हुई है ।

१७९ सूख या सुख (नामधातु—सूखना)=स० संज्ञा-शुष्क, प्रा० सुक्खइ या सुक्खइ, हि० सूख ।

१८० सूत् (नामधातु—सोना)=स० भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य-सुप्त, प्रा० सुत्तेइ या सुत्तइ हि० सूत ।

१८१ सैंत् या सेंत (नामधातु—adjust)=स० भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य समाहित प्रा० समाहित (हेमचन्द्र २,९९-निहित्त=स० निहित) अप० समाहित्त या समाँहत्त, हि० (संकुचित) सत, जहाँ स प्रा० समाहित्तइ हि० सत या सैंत ।

१८२ हग् (उपयुक्तधातु)=स० हद्+कृ, प्रा० हग्गइ, हि० हगै ।

१२ 'लुक' धातु लुन्+कृ' से भी संबंधित हो सकता है । 'लुप्' 'लुञ्च' धातु से है जिसका अर्थ (लुञ्च के समान) काटना या अंतर्धान होना है । अथवा इसकी व्युत्पत्ति लुञ्च+कृ से हो सकती है । धातु लुञ्च का अर्थ है अदृश्य होना ।

१८३. हकाव् या हकाव् (सयुक्त धातु—हाँकना) =स० हक+कृ, प्रा हक्कावेइ या हक्कावइ, हि० हकावँ या हँकावँ ।

१८४. हकार (नामधातु—दूर करना, आवाज करते हुए) =स० हक्कार, स० हक्कारयति, प्रा० हक्कारेइ या हक्कारइ, हि० हकारँ ।

१८५. हत् (मारना) स० भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य-हत्, प्रा० हत्त (हेमचन्द्र, २,९९) प्रा० हत्तेइ या हत्तइ, हि० हतँ ।

१८६. हलक् (सयुक्त धातु—चलना) स० हल+कृ, प्रा० हलक्केइ या हलक्कइ, हि० हलकँ ।

१८७. हाँक् (सयुक्त धातु) =स० हक्+कृ, प्रा० हाकेइ या हाकइ (हेमचन्द्र ४,१३४) हि० हाँकँ । लिये १८३, १८४ ।

१८८. हार् (नामधातु—खोना, पीटाजाना) =स० नशा हार, प्रा० हारेइ या हारइ, हि० हारँ (हेमचन्द्र ४,३१ मे हारवइ है) हारावइ (हेमचन्द्र ३,१५०) यहाँ यह 'नशति' कहा गया है। यह केवल 'हारँ' का Pleonastic रूप है, हि० में हरावँ या हिरावँ ।

१८९. हाँक (सयुक्तधातु—blow) स० धम+कृ, प्रा० धमक्केइ या धमक्कइ, अप० धवँक्कइ, हि० हाँकँ (धाँकँ के स्थान पर) देखिए-धातु ९२ ।

परिशिष्ट १ मूल धातुएं

१ ऐंच् या एँच (खीचना,) स आ+कृप, भविष्य-आकर्यति (वर्तमान के भाव में प्रयुक्त) प्रा० आयछइ या आइंछइ (हेमचन्द ४,१८७) हि० ऐंचँ या एँचँ (महा प्राणत्व का लोप) यह धातु और नवु रूप 'अच' का प्रयोग दोनो, प्रा० (हेमचन्द्र ४,१८७ अचइ) तथा पुरानी हिन्दी (पृथ्वीराज रासो २७,३८, अचँ) में हुआ है। देखिए-२

२ खँच या खेच या खँच या खेच =स० कृप् भविष्य कक्ष्यति (वर्तमान के भाव मे प्रयुक्त), प्रा० कच्छइ या कछइ, हि० खँचँ या खेचँ या खँचँ, खेंचँ (महा प्राणत्व का विपर्यय) पुरानी हिन्दी में यह धातु 'खंच' के रूप मे प्रयुक्त मिलती है, जो प्राकृत के 'कंछ' के अधिक समीप है। इससे मिलती जुलती धातु 'अच' भी पुरानी हिन्दी में है, जो मूल 'ऐंच' का सुधरा हुआ रूप है, जो 'खंच' के अनुकरण पर बना होगा। खच का भी खँच हो गया। इसी प्रकार अच का ऐंच हो गया। इस प्रकार पृथ्वीराज रासो (२७,३८) में खचँ और अचँ है।[२३]

३. छाँड (Vomit, let go, release) स० छृद, प्रथमवर्ग छर्दति, प्रा० छड्डइ (हेमचन्द्र ८, ९१) हि० छाडँ, इस धातु का रूप 'छाँटँ, भी है। इसकी व्युत्पत्ति स० छृद् से हो सकती है, सातवाँ वर्ग-छृणत्ति प्रा० छंडइ या छटइ हि० छाडँ या

२३. पा मगोल ललरी वीस टकी वर पचँ ।
चौतेगी सव्वाज वान अरि प्रान सुअचँ ।

छाटै। इसकी व्युत्पत्ति स० नाम धातु 'छद' से भी दिखाई जा सकती है, दशम वग छदयति (ऐसा हेमचन्द्र २,३६ में दीखता है) (छदि स छड्डइ)।

४ छप् (दबाना, छापना)=स० क्षप, प्रथम वग-क्षम्पति, प्रा० छपइ हि० छप। अथवा यह सम्भवत क्षम् से है, चतुथ वग क्षाम्यति।[२४]

५ झख् या झख् या झक (बाह भरना Chatter) स० ध्वां र प्रथम वग ध्वांक्षति, प्रा० झखइ (हेमचन्द्र ४ १४०) हि० मर्ख झख, या मक। ध्व वा झ में परिवतन यहाँ स० ध्वा प्रा० झ या हेमचन्द्र २ २७।[२५]

६ झाप (फेंकना या ढकना)=स० क्षप कमवाच्य क्षप्यते (कत वाच्य के भाव में प्रयुक्त) प्रा० झपइ, हि० झांप,[२६] अथवा इसकी व्युत्पत्ति स० अधि+ ऋ से हो सकती है, प्रेरणाथक अध्यपयति प्रा० झपेइ या मपइ हि० भांपे।

७ ठक् (खट खटाना)=स० तक्ष् प्रथम वग तक्षति, प्रा० टक्खइ (त के स्थान पर ट) हि० ठक। देखिए ६। स० टक्कर से मिलाओ हेमचन्द्र १,२०५

८ ठास्(raw, hammer) स० तक्ष, प्रथम वग, तक्षति, प्रा० टच्छइ हि० ठाँस (देखिए १० ७,६ भी)[२७]

९ ठोक या ठोंक=स० त्वक्ष, प्रथम वग-त्वक्षति, प्रा० टुक्खइ, हि० ठोकै[२८]

१० ठास या ठोस (hammer)=स० त्वक्ष, प्रथम वग-त्वक्षति प्रा० टुच्छइ (हेमचन्द्र १ २०५) हि० ठोस या ठास (देखिए ८)

११ ढाल् या दार (उडेलना) 'धाड का रूपान्तर (देखिए—१४)

१२ थप् (fix, settle)=स० स्तम, कम वाच्य-स्तम्यत (कतृ वाच्य के भाव में) प्रा० थप्पइ, हि० थप। म्य=व्य=त्त=प्प

---

२४ धातु 'स्पृश' से भी प्रा० कमवाच्य (कत वाच्य-भाव सहित) निकल सकता है, छप्पइ (ल्पिइ स मिलता हुआ) (हेमचन्द्र ४,२५७)

२५ हेमचन्द्र ने इस क्रिया का कई बार उल्लेख किया है।

४ १४०=सतप् (Repent)

४,१४८=विलप् (hament)

४,१५६=उपालम (scold)

४ २०१=नि श्वस् (sigh)

४ २५६=भाष् (Talk)

२६ 'द के स्थान पर' झ म० क्षीयते प्रा० झिज्जइ (हेमचन्द्र २, ३ और अनुस्वार वा अन्त जपइ (हेमचन्द्र ४, २/१,२६ जप्पइ के स्थान पर)

२७ (अ) त के स्थान पर ट' देखा हेमचन्द्र १,२०५

(ब) टाँछ से ठास— छ से 'ट व 'छ से स' देखो

तुलनात्मक व्याकरण ११, १३२

२८ त के स्थान पर 'ट' हेमचन्द्र १ २०५

१३. थाप् या ठप् (थप्पड़, टकराना)=सं० स्तृह्, कर्मवाच्य स्तृह्यते (कर्तृवाच्य भाव सहित) प्रा० थप्पइ या ठप्पइ, हि० थापैं या ठपैं। स्तृ=स्थ=थ्य=थ्य =प्प

१४. धाड़ (उड़ेलना)=सं० ध्राड्, प्रथम वर्ग ध्राडति, प्रा० धाडइ (हेमचन्द्र ४,७९) हि० धाड़ैं (देखिए-११) सं० ध्राड् प्राकृत से गृहीत है और सम्भवतः भ्रंश के भूतकालिक कृदन्त कर्मवाच्य भ्रष्ट का नाम धातु रूप है, प्रा० भट्ठ=भट्ठ =धाड

१५. फलाग् (leap)=सं० प्र + लंघ्, प्रथम वर्ग-प्रलंघति प्रा० पलंघइ, हि० फलागैं।

१६. फेंक् या फीक्=सं० प्र—इष्, भविष्य-प्रेक्ष्यति (वर्तमान के भाव में प्रयुक्त) प्रा० पेक्खइ या पेंखइ, हि० फेंकैं या फीकैं।

१७. बिन् (बुनना) सं० वृ, नवमवर्ग-वृणाति प्रा० विणइ, हि० बिनैं। देखो नं० १९। बुनने के लिए सं० धातु 'वे' है, प्रथम वर्ग-वयति, या चतुर्थ वर्ग-ऊयते। किन्तु इस धातु से हिन्दी धातु 'बिन' की व्युत्पत्ति होना असम्भव दीखता है। किन्तु धातु वृ तथा वे सम्बन्धित दीखती हैं। दोनों का अर्थ है ढकना।

१८. बिछ् (फैलाना)=सं० वि-स्तृ, कर्म वाच्य विस्तीर्यते (विस्तीर्ण के लिए) प्रा० विच्छेइ या विच्छइ, हि० बिछैं।

१९. बुन् (बुनना) सं० वृ, पंचम वर्ग-वृणोति, प्रा० वुणइ, हि० बुनैं।

२०. बोझ=(load)=सं० वह्, कर्मवाच्य-उह्यते (कर्तृवाच्य के भाव में) या प्रेरणार्थक कर्मवाच्य-वाह्यते। प्रा० वुज्झइ (हेमचन्द्र ४,२४५-वुज्झइ) हि० बोझैं।

२१. भीज् (भीज)=सं० अभि + अञ्ज, कर्मवाच्य-अभ्यज्यते प्रा० अभिज्जइ हि० भीजैं या भींजैं (देखिए संयुक्त धातु १४०)

२२. भूंक या भोंक या भौंक (बेकार बातें करना) सं० भष्, भविष्य—भक्ष्यति, प्रा० भुक्कइ (हेमचन्द्र ४,१८६) हि० भूकैं।[29]

२३. भेज् (भेजना)=सं० अभि + अज्, कर्मवाच्य अभ्यज्यते (कर्तृवाच्य के भाव में) प्रा० अब्भिज्जइ, हि० भेजैं।[30]

२४. साज् (सजाना)=सं० सञ्ज्, कर्मवाच्य सज्यते (कर्तृवाच्य भाव में) प्रा० सज्जइ, हि० साजैं। संस्कृत धातु-सज्ज सम्भवत: प्रा० से गृहीत है।

---

२९. हिन्दी में भोंकैं भी मिलता है।

३०. प्रारम्भिक 'अ' का लोप व ई का 'ए' में परिवर्तन—देखिए तुलनात्मक व्याकरण १७२, १४८।

पर्याय सूची

१ Causal—प्रेरणार्थक
२ Conjugation—समुच्चय बोधक
३ Contraction,—संकोच
४ Elision—लोप
५ Participles—कृदन्त
　　Past P —भूत कालिक कृदन्त
　　Present P —वर्तमान कालिक कृदन्त
६ Phonetic permutation—ध्वनि व्यतिहार
७ Roots—धातुएं
　　Compound R मिश्रित धातुएं
　　denominative R नाम धातु
　　derivative R व्युत्पन्न धातु
　　Primary R अयौगिक धातु
　　Secondary R यौगिक धातु
८ Substantive—सत्व वाची
९ Suffix—प्रत्यय
　　Class S वर्गीय प्रत्यय
　　Passive S कर्म वाच्य प्रत्यय
　　Phonetic S ध्वन्यात्मक प्रत्यय
१० Voice—वाच्य
　　Change of—वाच्य परिवर्तन

परिशिष्ट २

धातु ३६—प्राकृत में कर्मवाच्य 'खाद्यते' भी प्रयुक्त होता है। जो कर्त्तृ वाच्य सा प्रतीत होता है जैसे खज्जति व खाते' Delius Radices Pracritice पृष्ठ ५४ मृच्छकटिक से उद्धृत डा० राजेन्द्रलाल मित्रा पृष्ठ ८७ में 'खज्जदि' अपनी प्राकृत शब्दावली में देते हैं।

धातु ४०—धातुएँ खुल्, खार्, खूट सब एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और संस्कृत धातुएँ क्षोट, खार्, खाड खार खाल्, खुण्ड, खुड खुर्, क्षुर जिन सब का अर्थ (१) Limp (लंग) (२) Divide or break (विभाजित करना या तोडना)। मूल रूप 'क्षोट' या 'क्षर्' या 'क्षुट' प्रतीत होता है।

धातु ६५—उत्+शद् (ऊपर की ओर गिरना) संस्कृत में असाधारण धातु है लेकिन इसका समास रूप उत्+पत् के समान बन गया है। 'शद्' का अंतिम 'द्' प्राकृत में 'ड' हो जाता है—हेमचन्द्र ४,१३० झडइ और वररुचि ८,५१ हेमचन्द्र ४ २१९ सडइ। प्रारम्भिक ड का लोप हो गया और 'छ' का महाप्राणत्व 'ह' पर परिवर्तित हो गया है या लुप्त हो गया है जैसे धातु 'चाह (इच्छा)—उच्छाह=उत्+

साह या इच्छा से (देखो तुलनात्मक व्याकरण १३२)। पुरानी हिन्दी में धातु 'चढ्' मराठी में 'चढ्' या 'चड्'। गुजराती, सिन्धी मे भी चढ् है, यह रूप हेमचन्द्र ने ४,२०६ चडइ दिया है। त्रिविक्रम ३,१२८ में चड्डइ और चडइ दोनों रूप मिलते हैं।

धातु ७८—हेमचन्द्र ने ४,१८२ मे धातु छिह् और छिव् का सम्बन्ध संस्कृत धातु 'स्पृश्' से किया है जिसके लिये वह वर्तमान कर्मवाच्य का रूप छिप्पइ देते हैं (हेमचन्द्र ४,२५७)। बाद का रूप केवल 'छिव्वइ' का कठोर रूप है जो छिवइ का कर्मवाच्य है—छिहइ का भी हो सकता है। अब संस्कृत धातु स्पृश् = प्रा० छिह्, ओष्ठ्य ध्वनि 'प' के कारण = हुह् (देखो संख्या ८०) फिर वर्तमान ह्य् = म्य = व्य = व्व। इसलिये संस्कृत स्पृश्यते = वर्तमान छिह्यइ = छिव्वइ = छिप्पइ। यह निष्कर्ष निकला कि 'छिव् या 'छुव्' रूप (हिन्दी छो या छू,) Derivative धातुएं हैं जो कर्मवाच्य छिव्व 'अ' छुव्व से बना है और संस्कृत धातु 'छुप्' केवल वर्तमान धातु 'छुव' संस्कृत परिधान में है।

धातु ९६—यह धातु 'झाड्' (झाडना) से सम्बन्धित है। यह धातु 'झट' से निकटतम सम्बन्धित है, जो मराठी में अभी तक शीघ्रता से (rush violently into contact with) के अर्थ में और हिन्दी में 'झट्' शीघ्रता के अर्थ में सुरक्षित है। अतएव इसका अर्थ एक ओर 'झगडा, विवाद' है और दूसरी ओर 'फँस जाना' है। द्वितीय अर्थ में 'झट्' धातु का अर्थ संस्कृत से प्राप्त हुआ है, इससे संस्कृत 'झाट' झाडी (shrub) बना है + हिन्दी झाट या झाड। इसका मूल अर्थ संस्कृत झटिति (शीघ्रता से) में सुरक्षित है। यह धातु सम्भवत संस्कृत अवि + अट् से व्युत्पन्न हुई हो (बीम्स तुलनात्मक व्याकरण—I,१७७) यद्यपि इसका भाव "इधर उधर बहुत घूमना" अति + अट् से अधिक स्पष्ट है। लेकिन अध्यटति या कर्मवाच्य अध्यट्यते (कर्तृ वाच्य के भाव मे) जिस से प्राकृत में अज्झटइ या अज्झट्टइ या (इ के लोप से) झटइ या झट्टइ आधुनिक झटै या झाँटै। 'अट्' धातु मे 'ट्' 'ड' में नही बदला है (देखो हेमचन्द्र १,१९५)।

धातु ११६—हेमचन्द्र ४,२५ प्रा० तुलइ मिलता है लेकिन सकर्मक रूप में धातु 'तुल्' हिन्दी में नहीं मिलता, यद्यपि मराठी मे 'तुल्' या 'तुळ' मिलता है। संस्कृत में धातु तुल् में दशम वर्ग का रूप तुलयति मिलता है, जिससे प्रा० और मराठी की धातु 'तुल' व्युत्पन्न हुई है।

धातु १२८—संस्कृत सयुक्ताक्षर क्ष्य प्राकृत मे क्ख या क्ख हो गई, यह पर्यायवाची देक्खइ का मूल समझा जाता है, इस की गणना हेमचन्द्र ४,१८१ में हुई है, क्ख का रूप अवअक्खइ = स० अवद्रक्ष्यति (धातु अव—दृश्) मे मिलता है, उसी का संकुचित रूप ओक्खइ (ओ, अव के स्थान पर देखो हेमचन्द्र १,१७२) और फिर बाद मे विस्तृत रूप अवक्खइ (ओ के लिए अव देखो तुलनात्मक व्याकरण ४८)। च्छ का रूप अवयच्छइ = संस्कृत अवद्रक्ष्यति (अवअच्छइ 'य' का लोप, देखो हेमचन्द्र प्रथम १८०) और निअच्छइ = संस्कृत निद्रक्ष्यति (धातु नि—दृश्) फिर च्छ

अवयज्झइ में जो अवयच्छइ का समान रूप प्रतीत होता है मद हो गया है। इस प्रकार हम इसे सकुचित रूप पयच्छइ = स० प्रद्रक्ष्यति (प्र—दृ्) को देखें। संस्कृत (classical) में दृ् का भविष्यत रूप में अर (पाणिनि VI, १५८) के स्थान पर 'र' चलता है लेकिन बोलचाल में दोनो ही रूप द्रक्ष्यति और द्रक्ष्यति काम में आते ह। इन दोनो रूपा में से बाद के रूप से हा प्राकृत के रूप व्युत्पन्न हुए ह जसे अवअक्खइ = अवदक्खइ (अवदक्खइ) = अवदक्ष्यति। निअच्छइ का दूसरा रूप निअक्खइ होगा यह णिअक्कइ का रूप प्रतीत होता है—वररुचि ८,६९ (क्ख के स्थान पर क्क) प्राकृत पासइ सस्कृत पश्यति से व्युत्पन्न हुआ है या पासइ (हेमचन्द्र १,४३) प्राकृत अवआसइ स० अवपश्यति। मराठी में प्राकृत धातु पास्—'पाह्' हो जाती है। प्रा० पुलोएइ स० प्रविलोकयति स है। अवि का सकुचित रूप उ हो गया (देखो तुलनात्मक व्याकरण १२२) प्रा० पुलएइ सम्भवत उसी का भ्रष्ट रूप है। हिंदी में इनका कोई रूप प्रचलित नही है।

धातु १५८—पलाइ का अशुद्ध रूप सम्भवत पलाउ है।

धातु २३८—धातु क्षै—प्राकृत झाअइ और इसका सकुचित रूप ह 'झाइ' ठाअइ की समरूपता के आधार पर ठाइ—स्था स ध्यै से झाअइ या झाइ है (वररुचि ८ २६) पालि में झायति और प्राकृत विज्झाइ (देखो हेमचन्द्र २,२८ = स० वि—क्षायति)। पर समास में प्राकृत रूप झेइ या झइ हो सकता है जैसे उट्ठेइ या उट्ठइ में ठेइ या ठइ ह—उत + स्था (हेमचन्द्र ४,१७) इस प्रकार वाज्झेइ या वुज्झइ वुज्झइ है।

धातु २५०—'इसका सम्बन्ध सस्कृत धातु वद् से है ऐसा प्राकृत वयाकरणो ने लिखा है (Coldwell पष्ठ ९९ जहाँ वोच्चइ या वाल्लइ धातु 'वच से मानी है)। वाद का रूप कमवाच्य वुच्यते (उच्यते) से कत वाच्य के भाव में व्युत्पन्न है जैसा हेमचन्द्र ४ १६१ से प्रतीत होता है। इसी प्रकार कमवाच्य वूयते से (वू' धातु) बोल्लइ बनाया गया है। सध्यक्षर य—ल्ल बन गया जसे पल्लाण पर्याण सोअमल्ल = सौकुमार्य (वररुचि ३,२१)

धातु २९०—इसका निर्देश स० धातु रह की ओर भा किया जा सकता है। इसका अर्थ रेगिस्तान है। रल् की व्युत्पत्ति मराठी राह् = राख से प्रतीत हाती है। स् का ह् में परिवर्तन—देखो तुल० व्या० ११६।

धातु ३०१—स० धातु—रुट, रुड, रोड रौड लुट, लुड, लुल, लोड।

धातु ३३७—इस धातु का अर्थ घिसना भी है। सारइ का उल्लेख हेमचन्द्र ने ४ ८४ में किया है जो प्रहरति का पर्यायवाची है।

धातु ३५०—'ग्रा का ग्घेइ या ग्घइ प्राकृत में जसे ट्ठेइ या ट्ठइ (स्था) साम का सकुचित रूप सूँ हिंदी में है जसे सँ, पै प्राकृत समग्घइ—देखो ३५७। सवग्घइ इसका मध्य रूप (हेमचन्द्र ४,३६७)। धातु 'शिघ् धातु से व्युत्पन्न हुई है प्रथम वग सिंघति प्रा० सिंघइ—हिंदी में सींघ होना चाहिए। (ई का ऊ में परिवतन हो गया)।

संकेत

१　√　=धातुचिह्न
२.　ना०　=नाम
३.　कृ०　कृदन्त

नोट　धातु सख्याओ में पहली सख्याओ में　　१　अयौगिक
　　２.　यौगिक
　　३.　परिशिष्ट न० १ की धातुए

दूसरी सख्याएँ धातु सख्या है ।

परिशिष्ट ३

संस्कृत की धातुएँ

	अ	
१	√अच्छ्	भूमिका
२.	√अज्; अभि	३/२३
३	√अज्; अभि	३/२१
४.	√अट्; अभि	१/२६६
५.	नाम अट्ट	३/१
६	नाम अध्यक्ष	२/६३
७.	नाम अभ्यङ्ग	२/१४०
८.	√अर्द; अभि	१/२६१
	आ	
९	√आप्, सम्	१/३२८
	इ	
१०.	नाम इच्छा	१/६५
		२/४०
११.	√इष्; प्र	३/१६
१२.	√इ; परि	१/१६५
	ई	
१३.	√ईल्; परि	१/१५६
	उ	
१४.	नाम उच्च	२/२
१५.	कृ० उत्कृष्ट	२/६
१६.	नाम उत्साह	२/४०
		१/६५
१७	नाम उद्‌वम्	२/३
१८.	कृ० उपविष्ट	२/१२८
	ऋ	
१९.	√ऋ—सम	१/३४८
	क	
२०	√कथ्	१/२६
२१.	√कम्प्	१/२९
२२.	नाम कर्द	२/८
२३	नाम कर्म	२/९
२४.	√कल्; निम्	२/९८
२५	√कष्	१/२४
२६.	नाम—कष	२/१०
२७.	√कस्, निस्	१/१३९
२८.	√कारि (प्रेरणार्थक)	भूमिका
२९	√काम्	१/३७
३०.	√कुच्, नि	१/१५१
३१.	√कुट्	१/३३
३२.	√कुट्ट	१/३१
३३.	√कुप्	१/३४
३४.	√कृ	१/२३,९९,१०५
३५.	√कृत्	१/२७
३६	√कृप्	१/२५, ३/१
	—उत्	१/५

१६१	√दम्	१/१०३
१६२	√दम्	१/१०३
१६३	√दह	१/१२२, १२४
१६४	नाम दह	२/८८
१६५	√दा	१/१२७
१६६	नाम दह	२/८८
१६७	√दिप्	१/१२५
१६८	√दुल	१/१०४
१६९	नाम दुग्ध	२/८९
१७०	नाम दृढ	२/९०
१७१	√दम्	१/१२६, १२८
१७२	√द्रु	१/१२३
१७३	नाम-द्रव	२/८६
	ध	
१७४	नाम धम	२/९२
१७५	√धा परि	१/१६६
१७६	नाम धार	२/९१
१७७	√धाव	१/१३२
१७८	√धू	१/१३२, ३६७
१७९	√धृ	१/३४६, १३१
१८०	√ध्मा	१/३६४
१८१	√ध्रन्	३/१४
१८२	√ध्राड	३/१४
१८३	√ध्वस	१/१३०
१८४	√ध्वाम	३/५
	न	
१८५	√नम्	१/१३४
१८६	√नत	२/९३
१८७	√नप—	भूमिका
१८८	√नह्—पि	१/१६८
१८९	नाम निकुरम्ब	२/१००
१९०	नाम निगल	२/१०१
१९१	कृ० निवत्त	२/२८
१९२	कृ० निष्पुष्ट	२/९९
१९३	कृ० निष्कृष्ट	२/९८
१९४	नाम निष्पत्ति	२/१०२
१९५	√नन	१/१३७

	प	
१९६	कृ० पक्व	२/१०५
१९७	√पच	१/१५२
१९८	√पच्—प्र	२/१०८
१९९	नाम पट	२/१०८
२००	नाम पट्ट	२/१०८
२०१	√पठ	१/१५१
२०२	√पत्	१/१५८ १६६
२०३	नाम पत्र	२/१०८
२०४	√पद—उत्	१/९२
२०५	नाम परिचयन	२/११३
२०६	कृ० परितोषित	२/२८
२०७	कृ० पयस्त	२/११२
२०८	√पलाय	१/१५८
२०९	√पष	१/१२८
२१०	नाम पश्चाताप	२/१०७
२११	√पा	१/१७१
२१२	√पा (पीना)	१/१७४
२१३	नाम पानीय	२/११०
२१४	नाम पिच्च	२/११५
२१५	नाम पिच्चिट	२/११५
२१६	नाम पिच्छन	२/११६
२१७	नाम पिच्छिल	२/११६
२१८	नाम पिण्ड	२/११४
२१९	√पिष	१/१७५
२२०	नाम पिष्ट	२/११६
२२१	√पीड	१/१७६
२२२	नाम पुन्य	२/१२२
२२३	√पुष	१/१८५
२२४	√पूज	१/१८१
२२५	नाम पूत्कार	२/१२०
२२६	√पृ	१/१७०
२२७	√पृ	१/१७८
२२८	कृ० प्रकृष्ट	२/१०६
२२९	√पद्र	१/१७९
२३०	नाम प्रपत्र	२/१०९
२३१	कृ० प्रविष्ट	२/१०४

४३७	√स्फट्	१/१८६		ह	
४३८	नाम स्फट	२/१२३	४५१	नाम हक	२/१८३
४३९	नाम स्फर	२/१२४	४५२	नाम हककार	२/१८४
४४०	√स्फल्	१/१९१	४५३	क० हत	२/१८५
४४१	√स्फिट्	१/१९६	४५४	नाम हद्	२/१८२
४४२	√स्फिट्ट	१/१९२	४५५	√हन्	१/३५८
४४३	√स्फुट्	१/१९८	४५६	√हस्	१/३६३
४४४	नाम स्फूत्कार	२/१२०	४५७	√हा	१/२३३
४४५	√स्मि—नि+क्+स्मि	२/१००	४५८	नाम हार	२/१८८
४४६	√स्म	१/३४८	४५९	√हु	१/३६७
		३५३	४६०	√हुड्	१/३६८
४४७	√स्यन्द्	२/३८	४६१	√हृ	१/ ५९
				वि	१/३३२
४४८	नाम स्यन्न	२/३८	४६२	√हृप्	१/३६०
४४९	√स्रम्	१/३३९	४६३	√ह्वल्	१/३६१
४५०	√स्विद्	१/३४३	४६४	नाम ह्वल	२/१८६
	√प्र०	१/१६३	४६५	√ह्व	१/३६६
			४६६	√ह्वे	१/३६२

श्री सु० शंकरराजू नायुडू

शैव सिद्धान्त एवं तिरुज्ञानसंबंधर

तमिल भाषा तमिल साहित्य एवं तमिल संस्कृति का संसार में विशिष्ट स्थान है। तमिल भाषा तथा उसकी लिपि का स्वतन्त्र उद्गम क्रमश सर्वेश्वर शिव तथा प्रणवस्वरूपी 'ओम' से माना जाता है। इसका साहित्य प्रागैतिहासिक काल से समृद्ध रहा है। इसकी संस्कृति का मूलाधार भी तमिल के उसी प्रणेता 'सर्वेश्वर शिव' की आराधना, स्तुति व भक्ति ही है। वस्तुत 'शिव' शब्द मूलत तमिल का ही माना जाता है। इसी प्रकार 'ओम' भी[1]। तमिल जनता की भाषा, साहित्य एवं संस्कृति इसी 'शिव भक्ति' के आधार पर सम्पन्न हुई है।

तमिल भाषा-साहित्य में प्रारम्भ से आज तक भक्ति का प्रधान स्थान रहा है। इसमें भक्ति साहित्य किसी काल विशेष की विशिष्टता के रूप में नहीं पाया जाता। परन्तु इतना अवश्य है कि भक्ति-पद्धति में समय समय पर बाह्य प्रभावों के फलस्वरूप यथानुकूल परिवर्तन होते आये हैं। शैव के साथ-साथ जैन, बौद्ध व वैष्णव भक्ति साहित्य का अपना अपना विशिष्ट स्थान हम तमिल साहित्य में पाते हैं। तमिल महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम' 'मणिमेखलै' व 'जीवक चिन्तामणि' में हम जैन एवं बौद्ध सिद्धान्तों को स्पष्टत देखते हैं। ईसा की दूसरी शताब्दी से सातवीं शताब्दी तक तमिल प्रदेश में जैन एवं बौद्ध धर्म का अत्यधिक प्रभाव पड़ चुका था। फलत जनता ही नहीं कतिपय सम्राट् भी उन्हीं के अनुयायी हो चुके थे। तमिल भूभाग में स्थान स्थान पर अनेक जैन एवं बौद्ध मठ स्थापित हो चुके थे और सैकड़ों श्रमण इन मठों में निवास करते हुए समाज में भी विविध प्रकार के काम कर रहे थे। सातवीं शताब्दी के लगभग इनमें नाम धार्मिक कुप्रथाओं के आकर समा जाने के कारण कुछ शैथिल्य आ गया। जनता का इन

---

१ देखिए—(क) पृ० २८ और २९—'शैव सिद्धान्त उपक्रमणिका' ले० श्री० का० सुब्रह्मण्य पिल्लै एम ए., एम एल

(ख) Linguistic Survey of India, Vol IV—Dr Grierson

(ग) इसी प्रकार पूजा (पूसै—पू + सेय अर्थात् पुष्प + करना तात्पर्य अर्चना) भी तमिल का माना जाता है।

पर से विश्वास शनै शनै: घटने लगा; और पुन तमिप सस्कृति की अपनी शैव भक्ति का प्रभाव जनता पर पडा। वे सम्राट् भी जो अन्य धर्मों की शरण में जा चुके थे, शैव भक्ति की ओर आकर्षित हुए, और तमिप प्रदेश भर में दसवीं शताब्दी के अन्दर अन्दर इसका पूर्णत प्रसार हो गया। सातवी एव दशवी शताब्दी के इसी मध्य काल मे शैव भक्ति के चार प्रधान प्रचारक व भक्त 'नालुवर' (चार महान्) हुए। प्रधानत इन चारो ने ही शैव धर्म का पुन संस्थापन तथा जैन-बौद्ध धर्म का निर्मूलन तमिप प्रदेश में किया। ये चारो मत 'शैव-समय-परमाचरियार' (समय=धर्म) कहलाते हैं। ये हैं—तिरुज्ञान-सबंधर, तिरुनावुक्करशर (अप्पर), सुन्दरमूर्त्ति तथा माणिक्कवासहर। शैव सतों को साधारणत 'नायन्मार' अथवा 'नायनार' कहते हैं। इनके द्वारा प्रतिपादित तमिप शैव भक्ति-दर्शन को 'शैव-सिद्धान्तम्' की सज्ञा से सूचित किया जाता है। इन चारो ने इस सिद्धान्त-विशेष का, जो तमिप सस्कृति व साहित्य की ही अपनी विशिष्ट निधि है, मधुर तमिप काव्य मे गा कर, प्रचार किया, और अनेक तमिप मत्रो के द्वारा आश्चर्यजनक अभूतपूर्व सभवो को सिद्ध करते हुए, जनता, सम्राट् व अन्य धर्मावलम्बियो को वशीभूत कर लिया। इनके पश्चात् तमिप प्रदेश में जैन व बौद्ध धर्मावलबियो की सख्या दिन प्रति दिन घटती चली गई। शैव सिद्धान्त के श्रेष्ठ भक्त-कवि नक्कीरर (ईसा प्रथम शताब्दी) व अनुराधिका कारैक्काल अम्मयार (पाचवी शताब्दी) आदि अनेक प्रसिद्ध व्यक्ति पूर्व काल मे भी हो चुके हैं। परन्तु ये चार शैव-समय-परमाचारियार उक्त सिद्धान्त के विशिष्ट प्रचारक हैं। इन्होंने अपने प्रदेश को अन्य धर्मों से पूर्णत मुक्त किया।

शैव सिद्धान्त में मोक्ष के चार प्रधान मार्ग निहित हैं। यथा—१ सत्पुत्र मार्ग, २. दास मार्ग, ३. सख्य मार्ग, ४. सन्मार्ग। सत्पुत्र मार्ग को तिरुज्ञानसबधर ने, दास मार्ग को तिरुनावुक्करशर (अप्पर) ने, सख्य मार्ग को सुन्दरमूर्त्ति ने तथा सन्मार्ग अथवा ज्ञान मार्ग को माणिक्कवासहर ने व्यक्तिगत जीवन के उदाहरण से सिद्ध करके प्रतिपादित किया। इन चारो मार्गों का साधन 'सरि है' (किसी से कराना), 'किरियै' (स्वय करना), 'योगम्' तथा 'ज्ञानम्' (ज्ञान) है। अपने सास्कृतिक एव आध्यात्मिक स्तर के अनुकूल साधन पर चल कर कोई भी व्यक्ति स्थायी मुक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकता है।

शैव सिद्धान्त के अनुसार 'पति-पशु-पाशम्'—अर्थात् (१) ईश्वर, (२) जीव तथा (३) बधन अथवा माया—येतीनो नित्य हैं। बंधन व माया के फलस्वरूप ससार व सपूर्ण सृष्टि की रचना हुई है। अत यह ससार व सृष्टि भी नित्य ही है। जीव तथा माया नित्य होते हुए भी पूर्णत स्वतत्र नही हैं। वे ईश्वर की शक्ति व आज्ञा के अधीन ही हैं। ईश्वर अपने अनुग्रह के कारण सदसद् कर्मों के भार से पीडित व मायिक बधनो मे मग्न जीव को उनसे मुक्त करके स्थायी मोक्ष प्रदान करता है। यहाँ 'मोक्ष' से तात्पर्य 'मायिक बधनो मे मुक्ति' ही है, जिसके अनन्तर वह आध्यात्मिक अनुभूति से पूर्ण अपार व अक्षुण्ण आनन्द मे निरन्तर निमग्न रहता है। मोक्ष की यह अवस्था सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य व सायुज्य

भी हो सकती है। यहां सायुज्यावस्था में जीव ईश्वर के साथ मिल कर अथाह सागर में पड़े जल बिन्दु के समान एकाकार नहीं हो जाता अपितु स्वतन्त्र सत्ता सहित ईश्वर के सब गुणों से युक्त रहता है। अंतर केवल यह होता है कि वह जगदम्बिका पावनी से पृथक् रहता है और उसे 'सृष्टि-संरक्षण-संहार'[1] कर्म नहीं करना पड़ता। जीव आनंदानुभव की अनिर्वचनीय अवस्था में अवस्थित रहता है।

ईश्वर और जीव नित्य होते हुए भी जीव ईश्वर का दास है। तमिष संत तायुमानवर ने इस ही व्यक्त करते हुए कहा है—

"एङ्ङुनी अङ्ङु नान्,
उन् अडिमै अल्लवो।"

अर्थात्,

तू जब से, मैं तब से,
तेरा क्या दास नहीं?

परन्तु माया के कारण अपने को पूर्ण स्वतन्त्र मान कर जीव सांसारिक बंधनों में जकड़ा रहता है। जीव के वस्तुतः दास होने के कारण, ईश्वर अपनी अतीव अनुकम्पा व अनुग्रह का वरद हस्त सदा उस पर बनाये रखता है और जब भी विह्वल हृदय से पुकारा जाता है जीव की रक्षा के लिये प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से तुरन्त प्रस्तुत हो जाता है। जीव के विह्वल हृदय की इस अवस्था का उपयुक्त उदाहरण चीरहरण के समय द्रौपदी को देना है। कातर हृदय से विपदग्रस्ता ने पुकारा नहीं कि करुणाकर की कृपावृष्टि होने लगी। शैव सिद्धान्त की चरम अवस्था यही है अर्थात् जीव अपने को 'शिव' के श्री चरणों में समर्पित कर दे, और उसमें 'मैं', मेरा का लेशमात्र भी भाव न रहे।

इस प्रकार का करुणा ईश्वर तभी प्रकट करता है जब कि उपयुक्त रीति से उससे याचना की जाती है। इसे ईश्वर की 'मरक्करुण' कहते हैं जिससे वह जीवों पर यथानुकूल अनुग्रह करके सहज में उनकी नैया पार करा देता है। परन्तु यदि जीव माया के बंधनों में पड़ कर चिर निद्रा में ही रह जाता है तो भी ईश्वर उसे उसी अवस्था में चिर काल के लिये नहीं छोड़ देता। अनेक प्रकार की विषम परिस्थितियों में जीव को डाल कर अन्त में उसे वह अपनी ओर आकृष्ट कर ही लेता है। इसे ईश्वर का 'मरक्करुण' कहते हैं। 'अरक्करुण' एवं 'मरक्करुण' के फलस्वरूप ईश्वर संसार में अवतार ग्रहण करता है और गुरुरूप में जीवों को 'पति-पशु-पाशम्' की वास्तविकता को व्यक्त करके राजशिला ईश्वर के पास 'जीव शिशु' को ले जाता है। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए अठारहवीं शताब्दी के शैव संत शिव-ज्ञान मुनिवर ने कहा है—

'ऐम्बुलवेडरिन् नयदनै वळर्न्देनत्
तम्मुदन् गुरुवायुत तवत्तिनिलुणर्त्तविट्
टन्नियमिन्मियिन् कयल् शेलुमे।"

---

[1] शैवों के मतानुसार सृष्टि कर्ता ब्रह्मा तथा संहारकर्ता विष्णु शिव का ही प्रधान हैं, क्योंकि महा प्रलय के पश्चात् ब्रह्मा एवं विष्णु का भी अंत हो जाता है और केवल माया शक्ति तथा जीवगण शेष रहते हैं। ब्रह्मा एवं विष्णु शिव के ही कार्यकर्ता माने जाते हैं।

अर्थात् पचेन्द्रिय-व्याध के वधन में पड़ा पडा जो जीव अपनी वास्तविक सत्ता को भूले हुए जीवन व्यतीत करता रहा है, उसे ईश्वर स्वय गुरु-रूप धारण करके, तप आदि ,के द्वारा वास्तविक सत्ता का वोध कराएगा और उसके फलस्वरूप, वह ससार के वधन म मुक्त हो कर शिव का चरण-शरण प्राप्त करेगा।

इस तथ्य को स्पष्ट करने की एक कथा इस प्रकार है। एक राजा का पुत्र किसी डाकू के हाथ में पड कर विविध भोग आदि के कारण अपने वास्तविक व्यक्तित्व को ही विस्मृत कर बैठा। राजा ने एक दिन उसके सम्मुख उपस्थित हो, उसे अपने वास्तविक राजकीय व्यक्तित्व का वोध कराया। इस पर वह तुरन्त उस डाकू के चगुल से मुक्त होकर पिता के साथ चल पडा। यही पद्धति ईश्वर एव जीव के साथ भी शैव सिद्धात मे मानी जाती हे।

यहा एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या, ईश्वर ससार मे एकदम भिन्न कोई सत्ता है, या यहाँ भी उपस्थित है ? यदि हे तो किस रूप मे ? इसका उत्तर शैव सत तिरुमूलर ने अत्यन्त सुन्दर रूप मे दिया है। वे कहते है--

"मरत्तै मरैत्तदु मामदयानै,
मरत्तिल् मरैन्ददु मामदयानै।
परत्तै मरैत्तदु पार्मुदलबूदम्,
परत्तिल मरैन्ददु पार्मुदलबूदम् ।।"

इसका सरल अनुवाद इस प्रकार हो सकता है—

छिपाता है लकड़ी को मदमत्त हस्ती,
छिपा ही है लकडी मे मदमत्त हस्ती।
छिपाती है भगवन् को क्षिति आदि भूतम् ।।
छिपी ही है भगवन् मे क्षिति आदि भूतम् ।।

तमिप मे प्रागैतिहासिक काल से प्रचलित एक कहावत इस प्रकार है—

"कल्लैक्कण्डाल् नायैक्काणोम् ,
नायैक्कण्डाल् कल्लैक्काणोम् ।"

अर्थात्

पत्थर देखो तो उसमे कुत्ते का पता नही,
कुत्ता देखो तो उसमे पत्थर का पता नहा।

साराश यह है कि सर्वेश्वर सर्वत्र विद्यमान है। जव हम काठ के वने एक मदमस्त हाथी को देखते हैं तो उसे हम हाथी ही कह देते हैं, और उस समय काठ का विचार ही नही करते। वस्तुत उस काठ मे ही गुप्त रूप में आकारवत् हाथी उपस्थित है। इसी प्रकार गुप्त रूप मे सृष्टि के कण कण में ईश्वर विद्यमान है। हम उसकी वास्तविक सत्ता से अनभिज्ञ होने के कारण विविध नाम-रूपात्मक ससार का ही विचार करते रह जाते हैं। इसी प्रकार पत्थर में वने हुए कुत्ते का भी उदाहरण समझा जा सकता है। परिणामत प्रथम उदाहरण मे काठ और हाथी तथा द्वितीय उदाहरण मे पत्थर तथा

भुक्ता विद्यमान ह, और दाना में दो-दो पदाथ अभिन्न रूप से सम्पृक्त ह। यही स्थिति ईश्वर और ससार के सबध में भी वस्तुत उपस्थित है। जाव भी एक पथक् शाश्वत् तत्त्व है, जो इस तथ्य को तब तक नही समझ पाता जब तक कि उसे गुरु द्वारा इस तथ्य का बोध नहीं कराया जाता।

शव-समय-परमाचारियार नालवर ही इस सिद्धात के प्रधान गुरु माने जाते ह जिन्हाने 'करकलित चिन्मुद्रम्' के सकेत से शव सिद्धान्त के तथ्या को स्पष्टत जीवोंपर व्यक्त किया। हाथ की पाँच उगलियों में अगूठे को 'पति' 'ईश्वर', उसके साथ की तर्जनी को 'पशु' 'जीव' तथा शेष तीना को 'पाशम्' 'सासारिक बधन' मान लें। 'पाशम्' का तीनो उगलियाँ जीव को जकडे हुए तीन प्रकार के मल—आणवम् माय तथा कामियम् अर्थात् अहकार माया तथा काम व कम—ह। साधारणत हाथ की उँगलियाँ को फैलाने पर हम देखते ह कि अगूठे को छोड कर शेष चारा उँगलिया एक साथ मिली रहता हैं। इस से तात्पय यह है कि साधारणत ईश्वर को भूल कर जोव ससार व माया में लोन रहता है। 'करकलितचिन्मुद्रम' में अगूठ के साथ तर्जनी मिल जाती है और शेष तीना अलग खडी हो जाती ह। इस साकेतिक मुद्रा से तात्पय यह है कि गुरु यह उपदेश दते हैं कि जीव को सासारिक बधनों से मुक्त करके ईश्वर के साथ उसका सम्पक स्थापित करो। केवल यह मुद्रा शव सिद्धान्त को पूणत स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त है।

ईश्वर जोव मात्र की रक्षा के लिये अर्थात् उनका वास्तविकता का अनुभव कराने के लिये तीन मार्गों का अनुसरण करता है। यथा—

प्राण-तन सम एक हो,
नेत्र-रवि सम द्वैत हो,
दृष्टि-बुधि सम साथ हो,
ईश ही है जीवगण को
बोध अनुभव सब कराता ॥

सक्षेप में इसका भाव यहा है कि ईश्वर 'प्राण-तन' 'नेत्र रवि' तथा दृष्टि-बुद्धि' के समान जाव के साथ एक होकर, अलग रह कर व मित्र रूप में सबध स्थापित करके वस्तु स्थिति का बोध व अनुभव कराता है। एक ही समय इन तानो रूपा में जीव को सत्पथ पर लाने का प्रयत्न सदा ईश्वर करता ही रहता है। इसी के आधार पर शाय सत तायुमानवर ने कहा—

"अवनन्डि ओरणुवुम् असैयादु।"

अर्थात्—

पाए विना उसकी अनुज्ञा नही हिलता एक अणु भी।

ईश्वर की आज्ञा व अनुग्रह पर ही प्रत्येक अणु का सचालन सभव है। परन्तु ईश्वर भी स्वय निर्मित सीमा के अतगत नियमो के अनुसार ही काय सचालन करता है। भाव यह कि जावा को सोमित स्वतत्रता को बनाये रखते हुए उनके कर्मानुसार भाग्य का

विधान करता है। उदाहरणार्थ, हिंसा घोर पाप माना जाता है। कहावत है—

"कोन्ड्राल् पावम्, तिन्ड्राल् पोच्चू"

अर्थात्—

मारो तो पाप, खाओ तो माफ।

इसका अर्थ मासाहारी इस प्रकार करते हैं कि किसी को मारना पाप अवश्य है परन्तु उस मास को खा लेने से वह पाप माफ हो जाता है। वस्तुत यह वास्तविक अर्थ का उलटा है। ठीक अर्थ यह है कि मारने के कारण उत्पन्न उस पाप को खाने पर अर्थात् पाप जनित दु खो को भोगने पर वह पाप माफ हो जाता है। इसका सारांश यह है कि जीवों को कर्मफल भोगने होंगे।

"करम गति टारै नाहि टरी।" (कबीर)

परन्तु यदि जीव भी 'कातर हृदय से पुकारे' तो ईश्वर उसकी तुरन्त रक्षा करता है असह्य दुख को सह्य बना कर। कहावत है—

"मलैप्पोल् वरुवदु पनिप्पोल् पोहुम्"

अर्थात्

पर्वत सम जो आवे,
ओस बूंद सम जावे।

कातर हृदय की ऐसी पुकार जीव की ईश्वर के प्रति निश्चल भक्ति से ही सभव है। यह भक्ति केवल 'प्रेम स्वरूप' ही है। यह विशुद्ध प्रेमात्मिका भक्ति इस शैव सिद्धान्त की अपनी एक विशिष्टता है। शैव मत तिरुनावुक्करसर ने स्वय एक स्थान पर कहा है—

"उळ्ळम् कुळिर्न्द पोदेलाम्,
उहन्दुहन्दुरैप्पेने।"

अर्थात्—

जब जब हिरदय शीतल होवे,
तब तब स्तुति-यश-गीत सुनाऊं।

शैव सिद्धान्त का प्रधान मार्ग भी यही है। इसमें किसी बाह्य कर्म काड अथवा ज्ञानार्जन को इतनी प्रधानता नही दी गई है। भक्ति ही शैव सिद्धान्त का प्रधान साधन है। हाँ, इतना अवश्य है कि इस पथ के पथिक बनने के लिये परमेश्वर शिव में परिपूर्ण प्रतीति की परमावश्यकता होती है।

साधारणत जीवों के लिये शैव सिद्धान्त के उपकरण तीन माने जाते हैं। वे है— (१) विभूति, (२) रुद्राक्ष, (३) 'नम शिवाय' पचाक्षरमत्र। विशिष्ट शैव भक्त इन में से एक उपकरण पर भी पूर्ण श्रद्धा रख कर परम पद को प्राप्त हुए है, ऐसी अनेक कथायें प्रचलित ही नही, अपितु शिलालेख आदि के आधार पर सत्य सिद्ध की जा चुकी हैं। उदाहरणार्थ, मेय्पोरुळ् नायनार जो तमिप भूभाग के एक सम्राट् थे, विभूति पर ऐसी श्रद्धा

रखते थे कि शैव भक्त के रूप में एक विभूति-मंडित शत्रु द्वारा तलवार के घाट उतारे जाने पर भी उसे क्षमा कर दिया, जिसके फलस्वरूप उन्हें तुरंत मुक्ति पद प्राप्त हुआ। इसी प्रकार ग्वाल भक्त आनाय नायनार की श्रद्धा पंचाक्षर मंत्र 'नम शिवाय' पर थी। अपनी मधुर मुरली द्वारा प्रस्फुटित 'नम शिवाय' की मंत्रध्वनि में ही मुग्ध होके वे मुक्ति-पद के अधिकारी हुए।

यह शैव सिद्धान्त का सार है। इसी को श्री मेयकण्डदेव नायनार ने अनुपम समास शैली में १२ सूत्रों के अंदर भर कर 'शिवज्ञानबोधम' की रचना की है जो इस सिद्धांत का ब्रह्मसूत्र अथवा भगवद्गीता है। शिवज्ञानबोधम पर अठारहवीं शताब्दी के शिवज्ञानमुनिवर द्वारा एक विशाल भाष्य रचा गया है।

इस सिद्धान्त के चार प्रधान प्रचारक तिरुज्ञानसंबंधर, तिरुनावुक्करसर, सुंदरर तथा माणिक्कवासहर ने मधुर शैली में अपने अपने विशिष्ट आदर्शों का सुंदर ढंग से अभिव्यक्त किया है। प्रथम तीन शैव संतों के द्वारा रचित काव्य को 'तेवारम' तथा चतुर्थ शैव संत रचित काव्य को 'तिरुवासहम'[1] कहा जाता है। तेवारम तो माना विविध काव्य-मणियों के देवहार' ही हैं और तिरुवासहम के सम्बन्ध में कहा जाता है—

"तिरुवासहत्तिक्कु रहात्तार ओरुवासहत्तिक्कु मुरुहार।"

अर्थात—

यदि 'तिरुवासहम, से द्रवित नहीं होता
तो और किसी से नहीं हो सकता।

इन शैव संतों की कृतियों का संकलन श्री नंबियांडार नम्बी ने किया है जिनमें प्रथम तीन भाग तिरुज्ञानसंबंधर के चौथे और पांचवें अप्पर के, और छठे और सातवें सुंदरर के तेवारम हैं। आठवां भाग माणिक्कवासहर रचित तिरुवासहम' है। यहां हम शैव संत तिरुज्ञानसंबंधर की जीवनी का लघुवर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं।

वैज्ञानिक विकास की चरमावस्था के इस काल में भी हम भारतीयों को यह स्वीकार करने में अत्यधिक कठिनाई का अनुभव नहीं हो सकता कि इस संसार में ऐसी अनेक घटनायें समय समय पर हो जाती हैं जिनका उत्तर आधुनिक विज्ञान की परिधि के अंतर्गत नहीं दृष्टिगत होता। शैव संत तिरुज्ञानसंबंधर की जीवनी में हमें अनेक अलौकिक घटनाएं मिलती हैं। प्रत्येक घटना के संबंध में उन्हीं के उसी क्षण के भावोद्रेक से प्रस्फुटित काव्य आज भी उपलब्ध होने के फलस्वरूप उन घटनाओं पर पूर्णत अविश्वास भी नहीं किया जाता। ऐसी अलौकिक घटनायें केवल इन चारों संतों के ही विषय में प्रसिद्ध नहीं हैं अपितु कई भक्तों के द्वारा भी उनके सिद्ध होने के उदाहरण प्राप्त हैं। जनता साधारणत इन पर विश्वास भी करती है। तिरुज्ञानसंबंधर की जीवनी वस्तुत ऐसी अलौकिक घटनाओं का ही वर्णन है।

---

१ इस ग्रंथ पर मुग्ध हो डा० जी० यू० पोप ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया है।

शियाळी नगर में गौणिया गोत्र के दम्पति शिवपादविरुदयर-भगवती के अत्यधिक जप तप व व्रत के अनन्तर एक पुत्ररत्न हुआ। जब वह तीन वर्ष का था तो एक दिन पिता उस शिशु के साथ नगर के प्रधान शिव मंदिर तिरुत्तोणि,[1] के निकटवर्ती तालाब में स्नान करने गये। जब वे उसे किनारे पर छोड़ स्नान कर रहे थे तो बच्चा भूख के कारण विलाप करने लगा, जिसे सुन कर भगवती उमा ने स्वयं अपना क्षीर एक स्वर्ण कलश में उसे पिलाया। उसे पीते ही मानो शिव ज्ञान का संबंध इनके साथ हो गया, और फलत उसी पर इनका नाम तिरु ज्ञान संबधर (तिरु=श्री) पड़ गया[2]। पिता ने लौटने पर उसे दूध पीते देख एक छड़ी से डाँटते हुए पूछा कि तुमने यह दूध किससे लिया ? बच्चे ने आनन्दाश्रु भरे नेत्रों से दोनों हाथों को उठाकर अर्धनारीश्वर की ओर संबोधित करते हुए उसी क्षण अपना सर्वप्रथम गीत गाया—

"तोडुडैय शेवियन् विडैयेरि योर्तूवेण् मदिशूडिक्
काडुडैय शुडलैप् पोडिपूशि येनतुळ्ळं कवरहळ्वन्
एडुडैय मलरान् मुनैनाट्पणिदेत्त वरुळ्चेय्द
पीडुडैय पिरमा पुरमेविय पेन्मा निवनन्ड्रे"

[अर्थात्—ताडपत्र के कर्णाभूषणों से युक्त, ऋषभ पर आरूढ़ हो विशुद्ध व विमल चन्द्र से विभूषित, श्मशान-विभूति से रमा हुआ, मेरे हृदय को हरनेवाला चोर, जिनकी कृपा के कारण पद्मोद्भव ब्रह्मा ने (उसी से) पूर्वकाल में विनम्र स्तुति की, ब्रह्मापुरम् (शियाळी) में मूर्त रूप में स्थित श्रेष्ठ महात्मन् शिव ही तो है !]

और गाकर पिता को आश्चर्यचकित एवं पूर्णः विश्वस्त कर दिया कि वे शिव के ही मानो पुत्र है। अत. उनका नाम 'आळुडैय पिळ्ळैयार' अर्थात् 'ईश्वर के सुपुत्र' भी पड़ा। इस घटना को सुन कर नगर निवासी विस्मित हुए। दूसरे दिन प्रात काल मंदिर में जाकर पिळ्ळैयार ईश्वर मग्न हो गीत गाने लगे, और उसी समय पंचाक्षर मंत्र अंकित 'तिरुत्ताळम' (दोनों हाथों से ताल देने का पीतल का वाद्य) उनके श्री करों में आ उतरे, जिन्हें बजाते हुए हमारे संत आजीवन गाते रहे। इन अलौकिक घटनाओं को सुन कर दूर दूर के भक्त इनके दर्शनार्थ आने लगे, और अपने अपने नगर को पवित्र करने के लिए इनको आमन्त्रित करने लगे। पिळ्ळैयार ने वैसा ही करके सबके हृदय को संतुष्ट किया। जिन जिन मंदिरों में वे जाते, ईश्वर स्तुति के नूतन गीत गा गा कर मनुष्य मात्र को मन्त्रमुग्ध कर देते। तिरुनीलकंठ याप्पाण नायनार तो इनसे ऐसे आकृष्ट हुए कि अनुमति

---

१ इस मंदिर के देवता को 'तोणिप्पर' अर्थात् 'तरणि-नाथ' कहते हैं। किंवदंती है कि प्रलय के समय केवल यही स्थान एक नाव के समान तैरता रहा।

२. शंकराचार्य ने इसी घटना को सूचित करते हुए 'सौन्दर्य लहरी' में कहा है—

तव स्तन्यं मन्ये धरणिधर कन्ये हृदयत,
पय. पारावार परिवहति सारस्वतमिव।
दयावत्या दत्त द्रविडशिशुरास्वाद्य तव यत्,
कवीना प्रौढाना अजनि कमनीयः कवयिता ॥

प्राप्त करके आजन्म इनके संग रह कर इनके प्रत्येक गीत को अपनी वीणा में बजाते रहे। कुछ दिनों के पश्चात वे प्रसिद्ध शिवस्थल चिदंबरम् गये। लौटते समय पिळ्ळैयार ने पिता की गोदी व कंधा छोड़ पैदल चलना प्रारंभ किया। उसी दिन रात को सभी नवनों को शिव ने स्वप्न में आज्ञा दी कि मोतियों की एक शिविका उन्हें प्रदान करें। तुरन्त वह तैयार हो गई और उस पर चढ़कर पिळ्ळैयार विभिन्न मन्दिरों की यात्रा करने लगे।

तिरुनावुक्करसर अप्पर ने अब इनकी कीर्त्ति सुनी और स्वयं शियाळी सिधारे। सत-समागम हुआ। कुछ दिन शियाली में रह कर पुनः वे अन्य पुण्य क्षेत्रों की ओर अग्रसर हुए। अब पिळ्ळैयार का भी तमिळ प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के दर्शन करने की इच्छा उत्पन्न हुई, और उस इच्छा को पिता से प्रकट किया। पिता भी पुत्र के साथ प्रस्थान करने को प्रस्तुत हुए। सभी क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के संगीतात्मक गीत गाते हुए वे कावेरी नदी के उत्तरी तट पर पहुँचे। वहाँ कोल्लि मळवन नामक शिवभक्त राजा की पुत्री मुयलहन्' नामक भयकर बीमारी से पीड़ित थी। किसी भी औषधि से वह स्वस्थ न हो सकी। राजा की विनीत प्रार्थना पर पिळ्ळैयार की अनुकंपा उस पर हुई, और एक ही गीत में वह भली चंगी हो चली। वहाँ से सोड्डा पुण्य क्षेत्रों में पवित्र तेवारम गाते हुए वे तिरुवावडुतुरै पहुँचे। यहाँ पिता ने निवेदन किया कि एक विशिष्ट यज्ञ के लिए कुछ धन की आवश्यकता है। पिळ्ळैयार ने अपने शिव से गीत गाकर निवेदन किया। तुरन्तु बलि-पीठ पर एक हजार मोहरों की एक गठरी उपस्थित हुई जिसे उन्होंने अपने पिता को देकर शियाळी प्रस्थान कराया और स्वयं धर्मपुरम आदि धर्मक्षेत्रों की यात्रा करते हुए, तिरुमरुहल पहुँचे। यहाँ के मंदिर के पीछे एक मठ था जिसमें उस दिन रात को एक युवती का हृदयविदारक रोदन सुन पिळ्ळैयार ने वहाँ जाकर उससे कारण पूछा। युवती ने करुण क्रन्दन करते हुए कहा, 'मेरे पति को सर्प ने डस लिया है। तामन नामक वैश्य-श्रेष्ठ की मैं सातवीं पुत्री हूँ। मेरे पिता ने इन्हें प्रारम्भ में अपनी प्रथम पुत्री विवाह में देने का वचन देकर मेरे पिता ने इन्हें धोखा दे दिया। इसी प्रकार छः पुत्रियों की आशा दिला कर इन्हें निराश कर दिया। मैं इस जान कर इनके साथ बिना माता पिता से कहे चली आयी। अब मेरी आप ही रक्षा करें।' पिळ्ळैयार ने 'सडयाय एनुमाल्' गीत गाकर उसके पति को जिला दिया, और उन दोनों का नियमानुकूल विवाह करा कर दाम्पत्य जीवन प्रदान किया। पिळ्ळैयार वहाँ से अनेक स्थलों को पवित्र करते हुए तिरुप्पुहलूर पहुँचे जहाँ प्रमपद्धति के प्रचारक श्री० मुरुहनायनार ने इनका स्वागत सत्कार किया जिससे प्रसन्न होकर इन्होंने ईश्वरमर वडवुळ श्रीदेवर[१] (तिरुप्पदिहम) गाया।

संत तिरुनावुक्करसर बालसंत तिरुज्ञानसंबंधर की यहाँ उपस्थिति सुनकर उनसे मिलने गये। दोनों का पुनर्मिलन हुआ। यहाँ शैव संत तिरुनीलनक्क नायनार तथा सिरुत्तोण्डै नायनार से भी उनका सम्मिलन हुआ।

यहाँ से अप्पर स्वामिकळ विभिन्न क्षेत्रों को पहले पैदल जाते, और उनके पश्चात्

१ प्रत्येक श्री देवर में ११ या १२ छन्द रहते हैं, देश जैसा कि नाम से प्रतीत होता है। अंतिम छन्द संत की मुद्रा व नाम से युक्त रहता है।

पिळ्ळैयार ईश्वर-प्रदत्त शिविका पर आरूढ़ हो उन स्थलों का दर्शन करते। अब एक भयंकर दुर्भिक्ष के कारण भक्तों को भी विषम परिस्थिति का सामना करना पड़ा। इसे देख पिळ्ळैयार तथा अप्पर यह सोच कर कि क्या 'भक्त भी दुःख पीड़ित है!' व्यापक सर्वेश्वर का ध्यान करते हुए शयनशायी हुये। शिव ने दोनों को स्वप्न में दर्शन देकर कहा, "दुःख निवारण हेतु मंदिर के पूर्वी एवं पश्चिमी पीठ पर एक एक स्वर्ण मुद्रा दुर्भिक्ष समाप्त होने तक प्राप्त होता रहेगा।" ऐसा ही हुआ, जिससे भक्त दुर्भिक्ष के दुःखों से दूर रहे। इसी प्रकार 'वासि तीरवे काशु नल्हुवीर' श्रीदशक गाकर वहीं सुन्दर स्वर्ण मुद्रायें भी प्राप्त कीं।

दुर्भिक्ष की समाप्ति के पश्चात् दोनों संत उसी प्रकार कई धार्मिक स्थलों की यात्रा करते हुए तिरुमरैक्काट (आधुनिक वेदारण्यम्) पहुँचे—पहले अप्पर बाद में पिळ्ळैयार। यहाँ के प्रधान मंदिर का श्री-द्वार (तिरुक्कादवु) बंद पड़ा था। खुलता ही न था। पूजा के लिये जाने वाले भक्त सब पीछे के द्वार से ही जाते थे। इसे देख पिळ्ळैयार ने अप्पर से कहा कि हमें सीधे मार्ग से ही मंदिर में प्रवेश करना चाहिये। अतः उसके खुलने के लिये आप ही प्रार्थना गीत गावें। अप्पर ने वैसा ही किया। गीत समाप्त करते करते द्वार स्वतः खुल गया। यथानुरूप पूजा-पाठ करके लौटते हुए अप्पर ने पिळ्ळै-यार से कहा, "इस द्वार को प्रतिदिन नियमानुसार खुलना और बंद होना चाहिये। अतः अब इसके बंद होने के लिए आप गावें।" पिळ्ळैयार ने 'चतुरम् मरै' गीत को प्रारम्भ किया और द्वार स्वतः बंद हो गया। सभी उपस्थित भक्त-जन आश्चर्यचकित रह गये। उस दिन से आज तक वह द्वार नियमानुसार खुलता और बंद होता है।

उन दिनों पाण्ड्य प्रदेश में जैन धर्म का प्रचार प्रबल रूप प्राप्त कर चुका था। पाण्ड्य सम्राट् शैव धर्म को त्याग जैन हो गया था। जनता इससे साधारणतः अप्रसन्न थी। शैव मंत्री कुलच्चिरैयार तथा साम्राज्ञी मंगयर्करशी ने अति दुःखित हो, एक गुप्तचर तिरुज्ञान-संबंधर के पास भेजा और उनसे पांड्य प्रदेश की राजधानी मदुरा पधारने की प्रार्थना की। उन्होंने तुरन्त तत्पर हो कर पूजा-पाठ के अनंतर शिविका पर आरूढ़ होकर तिरुनावुक्करसर के विरोध करने पर भी मदुरा की ओर प्रस्थान किया। मार्ग के सभी शिव स्थलों का दर्शन करते हुए वे जब पांड्य प्रदेश पहुँचे तो जैन धर्मावलंबियों ने अनेक प्रकार के स्वप्न देखे। मंत्री व साम्राज्ञी को सुन्दर शकुन प्राप्त हुए। अनेक प्रकार के आदर सत्कार सहित मंत्री ने उनका स्वागत किया। मदुरा के प्रसिद्ध मंदिर में मंगयर्करशी ने पिळ्ळैयार के दर्शन प्राप्त किये। वहाँ के सभी भक्तों ने पिळ्ळैयार की अनुनय विनय के साथ आराधना की। इन घटनाओं को देख जैन श्रमणों ने सम्राट् को सूचना दी, और कहा कि हम उन्हें देखकर चकित रह गये। सम्राट् ने कहा "मैं उनके विषय में सुन कर चकित हूँ।" उन्हें पांड्य प्रदेश से भगाने के लिये सम्राट् को यह सुझाया गया कि उनके आश्रम में आग लगा दी जाय। सम्राट् ने भी अपनी सम्मति दे दी। जैन श्रमणों ने मंत्र शक्ति से आग लगाने का प्रयत्न किया, पर असफल रहे। अतः हाथ में एक जलती हुई लकड़ी लेकर आश्रम में आग लगा दी। कुछ ही क्षणों में इसे देख शिव-भक्तों ने पिळ्ळैयार से कहा। उन्होंने आश्चर्यान्वित हो, इसे शासन की शक्तिहीनता मानकर 'शेय्यने तिरुवालवाय्' श्रीदशक

में कहा कि जो आग जैनों ने यहाँ लगायी है वह जाने शान चल कर सम्राट् को ग्रसे। वैसा ही हुआ।

इधर मंत्री और साम्राज्ञी ने निश्चय कर लिया था कि यदि किसी भी प्रकार का बाधा आमंत्रित शैव संत का उत्पन्न हुई तो हम प्राण त्याग देंगे। जब इस दुर्घटना का समाचार उन दोनों को मिला तो वे प्राण-त्याग के लिये प्रस्तुत हुए परन्तु उसी क्षण वास्तविक वस्तु-स्थिति का भी सुसमाचार उन्हें प्राप्त हो गया। सम्राट इधर प्राणघातक ज्वर से पीड़ित थे। नाना प्रकार विभिन्न औषधियों के द्वारा उसके निवारण का प्रयत्न करते रहे परन्तु सब असफल ही सिद्ध नहीं हुआ, अपितु ज्वर अत्यधिक बढ़ने लगा। जैन श्रमणों ने भी मयूर पंखों से शरीर को शीतल करने का निष्फल प्रयत्न किया। जहां जहाँ इन मयूरपंखों का स्पर्श होता उन सब स्थानों में जलन अधिक होने लगती। फिर उन्होंने कमंडलुजल का शरीर पर छिड़काव किया। उससे शरीर पर फफोले पड़ने लगे। जैन श्रमणों पर अति क्रुद्ध हो सम्राट् ने उन्हें वहां से स्थान रिक्त करने की आज्ञा दी। मंत्री और साम्राज्ञी ने तिरुज्ञानसंबंधर के आगमन की सूचना देकर उन से इस भयंकर ज्वर को शांत कराने की प्रार्थना सम्राट् से की। शैव संत का नाम सुनते ही सम्राट् ने कुछ शीतलता का अनुभव किया और उन्हें बुला लाने की अनुमति देते हुए कहा कि इस ज्वर से मेरी जो रक्षा करेंगे उन्हीं पर मेरी श्रद्धा रहेगी। अति प्रसन्न हो दोनों ने अपने संत से वस्तु स्थिति का वर्णन करते हुए प्रार्थना की कि आप ही चल कर उनकी रक्षा करें और साथ साथ शैव धर्म का पुनः स्थापन भी यहाँ हो। प्रार्थना स्वीकृत हो गई। शैव मत को सम्राट् के पास जाते देख जैन श्रमण ने उसका विरोध करते हुए सम्राट् से कहा कि ज्वर शांत करने का भार दोनों को दें, और चाहे ज्वर उनसे ही शांत क्यों न हो जाय, उसे हमारे द्वारा ही शान्त हुआ बतावें। सम्राट् झल्ला उठे और कहने लगे कि यह असंभव है। इतने में पिळ्ळैयार सम्राट् के समीप पहुँचे। इनके पहुँचने मात्र से सम्राट् को एक विशिष्ट शीतलता का अनुभव हुआ। जैन श्रमण घबड़ाये। जब जैन श्रमण किसी अंग को शीतल न कर सके, शैव संत ने—

"मन्दिरमावदु नीरु,
    वानवर मेलदु नीरु
सुन्दरमावदु नीरु,
    तुदिक्कप्पडुवदु नीरु।
तन्दिरमावदु नीरु,
    समयत्तिलुळ्ळदु नीरु
शेंदुवरवायुम पगन
    द्रिरुवालवायान्द्रिरुनीरे

[अर्थ—मंत्र की महान शक्ति, देवताओं से श्रेष्ठ वस्तु सौन्दर्य का प्रधान आधार सर्वाधिक प्रशंसनीय सामग्री तंत्रों का गुण-गौरव व धर्म का सर्वस्व ही नहीं अपितु अरुण ओष्ठोंवाली अम्बिका को अर्धाङ्ग में प्राप्त अखिल भुवनेश्वर तिरुआलवायूर के मंदिर में मूल रूप में विद्यमान भगवन् की वही विभूति है।]

गा कर दाहिने अंग पर अपने करो से विभूति लगाई, जिससे वह तुरन्त शीतल हो गया। परन्तु कठिनाई यह हुई कि उस भाग की जलन भी बाई ओर मिल कर सम्राट् को एक ओर नरक-दुःख और दूसरी ओर स्वर्ग-सुख का अनुभव कराने लगी। उन जैन श्रमणो से जो बाई ओर अपनी तन्त्रमन्त्रादि शक्ति का प्रयोग करके मयूर पंख फेर रहे थे, सम्राट ने सक्रोध कहा, "आप हार गये, हटिये।" पुनः प्रार्थना करने पर शैव मत ने इस भाग को भी विभूति द्वारा तीव्र जलन से पूर्ण शांत कर दिया। पाण्ड्य सम्राट, साम्राज्ञी और मंत्री के आनन्द का पारावार न रहा। जैन श्रमणो ने किसी प्रकार शैव मत को नीचा दिखाने के लिये दूसरे मार्ग का विचार करते हुए कहा "दोनो अपने अपने धार्मिक सिद्धान्तो को ताडपत्र पर लिख कर अग्नि को समर्पित करें। जिसका भस्मी-भूत न हो, उसे ही विजयी समझें।" स्वीकृति प्राप्त करने पर ऐसा ही किया गया। यहाँ भी जैन श्रमणो की ही हार हुई। सम्राट् हँसे। अब भी जैन श्रमणो से न रहा गया, और कहा, "अपने धार्मिक तथ्यो को ताटपत्रो पर लिख कर सवेग प्रवाहित वैगै नदी में डाले, और जिनका पत्र धार के विरुद्ध बढे, उन्हें ही विजयी मानें।" अब मंत्री इस चुनौती को सहज में स्वीकार करने को तैयार न थे, और सावेग व सक्रोध पूछा कि हारने वालो को क्या दंड निश्चित किया जाय? जैन श्रमणो ने भी साहंकार उत्तर दिया, "यदि हम हारे तो सब सूली पर चढेंगे।" फिर सभी नदी तट पर पहुँचे और धार पर दोनो ने अपने अपने ताटपत्रो को छोड़ा। जैन श्रमणो का पत्र समुद्र की ओर, तथा शैव मत का पत्र पर्वत की ओर सवेग बहने लगा। इतना ही नहीं, पिळ्ळैयार ने ताड़पत्र पर लिखा था, "वेन्दनुम् ओंगुह" अर्थात् सम्राट् भी विकसित हो कर वृद्धि प्राप्त करें, जिसके फलस्वरूप सम्राट् की पीठ का टेढापन भी तुरन्त सीधा हो गया। शैव ताडपत्रों को लाने के लिए मंत्री घोड़े पर सवार होकर अत्यंत वेग से गये। पिळ्ळैयार ने "वन्नियुम् मुत्तमुम्" श्रीदशक गाकर पत्र को रोका, और मंत्री उसे तभी ला सके। इन सब से जैन श्रमणो ने अपनी हार स्वीकार कर अपने ८००० साथियो के संग सूली पर चढ कर प्राण त्याग किये। पाण्ड्य प्रदेश में शैव धर्म का स्थायी प्रसार होने लगा। सम्पूर्ण भूभाग विभूतिमय हो गया।

इस आश्चर्यजनक घटना की वार्ता शियाळी पहुँची, जिसे सुनकर शिवपाद विरुदया तुरन्त मदुरा पहुँचे। पिता को देखते ही पिल्लैयार को जन्म स्थान शियाळी के 'तोणियप्पर' का ध्यान हो आया। अतः सब से विदा लेकर तिरुप्परगुन्ड्रम, तिरुक्कुट्रालम्, तिरुनेल्वेली आदि स्थानो मे श्री दशक गाते हुए रामेश्वरम् में कुछ दिन रह कर पाँड्य प्रदेश से बाहर आये। कुछ दूर चलने पर तिरुक्कोळ्ळमबूदूर दिखा, परन्तु मार्ग में वेगवती गहरी नदी को पार करना था। नाविक अपनी अपनी नाव को किनारे पर बाँध कर गाव चले गये थे। पिल्लैयार की अभिलाषा पर एक नाव की रस्सी खोली गई और सब उस पर आरूढ हुए? शैव मत के 'कोट्टमे कमपुम्' श्रीदशक गाने पर वह नाव स्वयं चल पड़ी, और सब सकुशल दूसरे किनारे पर जा लगे। देवदर्शन करने के पश्चात् कुछ दिन वहाँ रह कर फिर पोदिमगै पहुँचे। पोदिमगै बौद्धो का केन्द्र था। उनके नायक शारिबुद्धन को वाद में परास्त करके वहाँ भी पिळ्ळैयार ने शैव मत को स्थापित किया। वहाँ से अप्पर के दर्शनार्थ तिरुपून्दुरुत्ति गये। अप्पर ने बाल शैव सन्त का आगमन सुन, भेंट में ही घुस कर शिविका

के भार को स्वयं अपने कंधे पर उठाया। तिरुप्पूंदुरुत्ति पहुँचने पर जब इसका बोध पिळ्ळैयार को हुआ तो वे अत्यधिक दुःखित हुए। दोनों ने एक दूसरे को प्रणाम किया। सभी भक्तजन दोनों की प्रशंसा के गीत गाने लगे। एक दूसरे की घटनाओं को सुनने के पश्चात् अप्पर पांड्य प्रदेश की ओर गये और पिळ्ळैयार ने निमाळै की ओर प्रस्थान किया।

अब पिळ्ळैयार की इच्छा तमिल प्रदेश के उत्तरी भाग तोण्ड नाडु' देखने की हुई। अतः चिदम्बरम्, तिरुवण्णामलै आदि स्थानों की यात्रा करते हुए तिरुवोत्तूर पहुँचे। वहाँ एक शिव भक्त अपने आराध्य देव के निमित्त कुछ ताड़वृक्षों को लगा कर बड़ा करता आ रहा था। वे नर-वृक्ष ही निकले और उनसे कोई फल प्राप्त नहीं हुआ। इस पर चिढ़ाते हुए वहाँ के जैन श्रमण उससे पूछा करते थे "क्या तुम्हारे शिव की कृपा से इनमें से फल निकल सकते हैं?" परिस्थिति को स्पष्ट करते हुए उसने पिळ्ळैयार से प्रार्थना की जिसे स्वीकार कर शैव संत ने "पूत्तेर्न्दायन्' शान्ति गाकर उसे अनुग्रहीत किया कि वे नर-वृक्ष मादा-वृक्ष में परिवर्तित हो जायें, और वे उसी क्षण वैसे हो गये। फलों के गुच्छों के गुच्छे उसमें निकल आये। यह देख वहाँ के जैन श्रमण या तो उस स्थान को ही छोड़ कर चले गये, अथवा शैव मतानुयायी हो गये।

अब वे वहाँ से अनेक शिव स्थलों की यात्रा करते हुए तिरुवालंगाडु के समीप पहुँचे। यह वह स्थान है जहाँ प्रसिद्ध शैव भक्तिन 'कारक्काल् अम्मैयार' ने सिर के बल चल कर शिव के चरणों में नित्य निवास प्राप्त किया था। अतः उस स्थल के अन्दर प्रवेश न करके बाहर से ही उनके यश गीत गा कर अन्य स्थलों की यात्रा में संलग्न हुए। तिरुक्काळत्ती में प्रेम के ही मूर्त रूप में उपस्थित शिव भक्त कण्णप्पर के जिन्होंने अपने दोनों नेत्रों को निकाल कर शिवार्पण कर दिया था, दर्शन करके भक्ति प्रवाह में मग्न हुए। वहाँ से विभिन्न स्थलों की यात्रा करते हुए मद्रास के निकटवर्ती तिरुवोट्रियूर में पदार्पण किया।

मद्रास के मयिलापूर (मयूर नगरी) में एक शिव भक्त रईस के वर्षों के तप के पश्चात् पूम्पावै नामक कन्या उत्पन्न हुई। रईस ने निश्चय कर लिया कि इसके पति को ही सम्पूर्ण सम्पत्ति आदि दान में दूंगा। पांड्य प्रदेश में पिळ्ळैयार के आश्चर्यजनक महत्त्व को सुन कर मन में ठान लिया कि उनको ही कन्यादान दिया जाय। एक दिन एक सर्प ने उस कन्या को डस लिया और अनेक प्रकार की औषधियों के प्रयोग पर भी वह जीवित नहीं हुई। फिर रईस ने विचार किया कि मैंने इसे पिळ्ळैयार के लिये अर्पित कर ही दिया था। अतः उसकी अस्थियों व भस्म को एक स्वर्ण कलश में सुरक्षित रख कर उस बाल शैव संत के आगमन पर उन्हीं को अर्पित करूंगा। अब उन्हें तिरुवोट्रियूर में उपस्थित सुन तुरन्त वहाँ जाकर भक्ति विनय सहित अपने यहाँ आमंत्रित किया। सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर पिळ्ळैयार ने "मट्टिट्ट' आदि गाकर "उठो पूम्पावै" कहा। बारह वर्ष की उम्र युवती का साकार आविर्भाव हुआ। अब रईस से न रहा गया। पिळ्ळैयार से तुरन्त पाणिग्रहण के लिये प्रार्थना की। परन्तु पिळ्ळैयार ने कहा। "तुमने इसे जन्म दिया। मैंने इसे मृत्यु के मुख से पुनर्जन्म प्रदान किया। अतः मेरा इससे पाणिग्रहण पूर्णतः अनुचित है।" पूम्पावै आजन्म कुमारी रह कर अर्धनारीश्वर शिव के चरणों में समाविष्ट हुई।

यहाँ से अनेक स्थलो की यात्रा करते हुए पुन तिरुप्पुकलूर्म् दर्शन करके पीय मता गियाली पहुँचे। वहाँ श्री मुरुहू नायनार, तिरुनीलनक्क नायनार आदि अनेक शिवभक्त एकत्रित थे। वहाँ सब के साथ सानन्द अपने आराध्यदेव 'तोणिअप्पर' की आराधना में लीन हो गये।

अब पिळ्ळैयार के पिता को इनके विवाह का विचार आया। अब ये षोडश वर्षीय युवक हो चुके थे। तिरुनल्लूर के श्री० नम्बाण्डार नम्बी की सुपुत्री के साथ उनका विवाह निश्चित हुआ। तिथि का भी निश्चय हो गया। समय आ पहुँचा। वर को नम्बादि ने विभूषित किया गया। रुद्राक्ष की माला उन्होंने स्वयं पहन ली। विवाह-मडप पर वर-वधू विराजमान हुए। विवाह सम्पन्न होने के लिये दोनो ने दीपक के चारो ओर प्रदक्षिणा की। जब पिळ्ळैयार के मन में ध्यान आया कि "क्या! अग्नि शिवरूप नहीं है?" और सोचा कि अब श्री मदिर जाना चाहिये, तो उन्होंने निश्चय किया कि उनके साथ मैं शिव चरणो में प्रवेश करूगा। सीधे श्री मदिर गये। और लोगो ने भी उनके साथ प्रस्थान किया। ईश्वर के सम्मुख, " कल्लूर् पेरुमणम्" श्रीदशक गा कर निवेदन किया, "हे अम्बिकेश्वर! तेरे पदपद्मो में प्रवेश प्राप्त करने का उपयुक्त अवसर यही है।" 'एवमस्तु' की शिवध्वनि हुई और सम्पूर्ण श्री मदिर ज्योति रूप में परिवर्तित हो गया, और उसमे एक श्री द्वार के भी दर्शन हुए। इसे देख अपना अन्तिम श्री दशक—

'कादलाहिक् कशिन्दु कण्णीर्मल्हि
योदुवार्तमै नन्नेरिक्कुय्प्पदुम्,
वेद नान्गिनु मेय्प्पोरुळावदु
नादनाम नमच्चिवायवे"

[अर्थ—अपार प्रेम के फलस्वरूप अश्रु प्रवाहित करते हुए आराधना करने वालो को सद्गति प्रदान करने की शक्ति, तथा चारो वेदो का आधारभूत सत्य 'नम: शिवाय' रूपी ध्वन्यात्मक नाम में ही निहित है।] गाते हुए कहा, "सभी इस ज्योति मे प्रवेश करें।" सब ने इस ज्योति मे प्रवेश किया। तिरुनीलनक्क नायनार, मुरुहनायनार, शिव पादविरुदयर, नम्बाडार नम्बी, तिरुनील कठ या पूपाण नायनार आदि अपनी अपनी अर्धांगिनी व वशज समेत, शिविका के ढोनेवाले, अन्य भक्तगण आदि सब उस परम ज्योति मे प्रवेश कर गये। तदनन्तर ज्योति अदृष्ट हो गई। मदिर पुन अपने पूर्व स्वरूप मे प्रत्यक्ष हुआ।

सातवी शताब्दी के षोडश-वर्षीय तमिष बाल शैव सत की जीवनी का यह सक्षेप है। इनके गाये ३८४ श्रीदशक गीत ही १६,००० चरणो में प्राप्त हैं। ये गीत विभिन्न 'पण' (सगीत की रीति) में रचित है। सुमधुर तमिष का सुन्दर स्वरूप इनके गीतो में दर्शनीय है। सगीतात्मकता व सरल प्रवाह इन गीतो की एक विशिष्टता है। गीतात्मक शैली के सैकडो विभिन्न प्रकार, इनके काव्य में देख कर कलाविद् अवाक रह जाते हैं। वस्तुत इनके गाये गीतो की सख्या १०,००० के लगभग मानी जाती है, परन्तु जो भी थोडे मे प्राप्त हैं, वे इनकी भक्ति, काव्य-कलात्मकता तथा सगीत सौष्ठव को सिद्ध करने के लिये यथेष्ठ हैं। प्रकृति का सजीव, सूक्ष्म व सुमधुर स्वरूप, तिरुक्कुट्रालम् व

तिरुनेल्वेली आदि पर रचे इन गीतों का पठन पाठक के सम्मुख चित्रवत उपस्थित हो जाता है। इनके गीतों में मानव जीवन की अंत एवं बाह्य प्रकृति का वर्णन मंजुल स्निग्ध शब्दों में हुआ है। यह भावोद्रेक के फलस्वरूप क्षण मात्र में प्रस्फुटित हुआ वर्णन है। बाल संत होने के कारण बालकोचित कौतूहल के साथ पवित्र प्रेम का नैसर्गिक प्रवाह भी इनके काव्य की विशिष्टता है। सर्वेश्वर शिव का गुणगान इनके काव्य का उद्देश्य है। तमिल ऋषियों में सर्वश्रेष्ठ व सर्वाधिक प्रसिद्ध इन्हें ही माना जाता है। कोई भी ऐसा शिव मंदिर तमिल प्रदेश में नहीं है जहाँ इनकी पूजा प्रतिदिन न होती हो।

शैव सिद्धान्त एवं तिरुज्ञानसंबंधर के सम्बन्ध में लिखित एक अंग्रेजी उद्धरण नीचे दिया जाता है—

I "This system has been pronounced by the late Dr G U Pope of Oxford as the choicest product of the Dravidian intellect. The same view has been expressed in greater detail by Rev C Goudie who says 'This system possesses the merits of great antiquity in the religious world it is heir to all that is most ancient in Southern India. It is a religion of the Tamil people by the side of which every other form is of comparatively foreign origin. As a system of religious thought as an expression of the faith and life the Saiva Siddhanta is by far the best that South India possesses indeed it would not be rash to include the whole of India and to maintain that judged by its intrinsic merits the Siddhanta represents the high water mark of Indian thought and Indian life."

(pp 1 & 2 The Metaphysics of the Saiva Siddhanta System by Sri K. Subramania Pillai M A, M L, Tagore Professor of Law Calcutta)

II 'Mr Virabadra Mudaliar B A B L an expert on the subject speaks in his strain of exuberance. We have Simply to open the inimitable pages of our Lord Sambandha to understand the profuse richness of Tamil poetry during this Tamilic period. We are able to point out nearly one hundred metrical varieties in his poetry. Was there ever we ask any poet, ancient or modern, in any language on the face of the earth *not* excluding Sanskrit who has *so spontaneously and* with such an insatiable thirst for the praise of his Divine Father in Heaven sung on that same subject so many interesting varieties of lovely verses as nearly one hundred varieties not based on small distinctions such as are recognised in Sanskrit but differing as widely as any two metres of a language leaving of course out of consideration the verses which are alleged to have perished? In fact Lord Sambandha has over flooded the Tamil land with an enormous number of metres of unknown varieties and of unsurpassed perfection accuracy and beauty. We do not read Sambandha's poetry because it does not contain any vain philosophic disquisitions or learned commentaries on Vedanta or an ingenious attempt at an Advaitic or Siddhantic interpretation of the Gita or even a faithful record of the much advanced metaphysical experiences of the author. Sambandha's poetry shines far above those cloudy controversial regions like the lofty towering peak in Goldsmith's poetry. We philosophers find nothing in him to quote, not even so much as we find in

२ मेहउ हतु जेई जोण्हउ
पिच्च णिप्पहे एहु चदहु ।

इन उदाहरणों में अन्त में और मध्य में भी उकार मिलता है। यह उकार बहुलता एक महत्वपूर्ण ध्वनि संबंधी विशेषता थी जिसने सबका ध्यान भी आकर्षित किया। पालि में उकार की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। यहा 'ऋ' का परिवर्तन -उ- में हो जाता था।[1] नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं —

१ ऋ > उ
ऋतु > उतु
वृक्ष > रुक्ख

प्राकृतों में भी आरम्भिक ऋ, रि अथवा र व्यंजन में परिवर्तित हो जाती थी। उदा० वृक्ष > रुक्खो। ऋ > उ के भी उदाहरण मिलते हैं, ऋतु > उदु मृणाल > मुणाल; पृथ्वी > पुहवी, ऋजु > उज्जु। अपभ्रंश में भी होती हुई यह प्रवृत्ति ब्रज की बोली तक आ पहुँची। यहाँ ऋ > उ वाली प्रवृत्ति नहीं पनपी। ऋ > र वाली प्रवृत्ति जागती है। वृक्ष > रूखु। प्राकृत में रुक्खो मिलता है संयुक्त व्यंजन का सरल किया गया, अतः पूर्व का स्वर दीर्घ हो गया। अन्त्य "ओ" का ह्रस्व उच्चारण—उ के रूप में रह गया।[2] ब्रज में ऋतु का रुति मिलता है इस प्रकार ऋ के विकास के रूप में—उ की बहुलता बढ़ी।

दूसरी शती ईस्वी का लिखित प्राकृत धम्मपद पेशावर के आसपास खोतान के निकट गोशृंग अथवा गोशीर्ष विहार में प्राप्त हुई थी। इस प्राकृत धम्मपद में भी उकार प्रवृत्ति पाई जाती है।[3] ललित विस्तर की भाषा भी उकार बहुलता से युक्त है।[4] उदाहरण के लिए प्राकृत धम्मपद का एक पद्य लिया जा सकता है—

उजग्रो नाम सो मगु अभय नम्र स दिश् ।
रथो अकुयनो नमु धमत्रकेहि सहतो ।
हिरि तमु अवरमु स्मति स परिवरन ।
धमहु सरधि व्रोमि समेदिठिपुरे जवु ।

इस श्लोक मे मगु, नमु, अवरमु, धमहु, और पुरेजवु शब्द उकारान्त हैं। पालिका

---

१ यहा ऋ > इ, > अ, > उ मिलता है। भरतसिंह उपाध्याय, पालि साहित्य का इतिहास पृष्ठ ३९,४०

२ "The change of the vowel r to u is found mostly in nouns of relationships in all regions, but in the east and the centre it also tends to be i . ..As in Pali and in Pkts, OI A r is changed to a, i, and u in Ap

[Dr G V. Tagare, Historical Gr. of Ap , p. 40]

३ देखिये, प्राकृत धम्मपद, सपादक, बरुआ और मित्रा, कलकत्ता विश्वविद्यालय (१९२१)

४. ललित विस्तर [सम्पा० डा० एस० लेफमान, हाल, १९०२ ई०] पृ० १६५,१६६ ।

मग्गा हो मगु हुआ है। ब्रजभाषा में भी मगु मिलता है। इस प्रकार प्राकृत में उकार बहुलता का बीज पनपने लगा था। ललित विस्तर का भी एक उदाहरण लिया जा सकता है—

पुरि तुम नरवर सुतु नपु यदभू,
नरु तव अभिमुख इम गिग्म वची।
दद मम इम महि सनगर निगमा।
त्यजि तद प्रमुदितु न च मनु क्षुभितो।

इसमें मुतु नृपु नरु प्रमुदितु उकारांत हैं। ब्रज का बोली में आज भी ये शब्द उकारांत हैं।

प्राकृत वैयाकरणों ने उकार-बहुला विशेषता का उल्लेख स्पष्ट रूप से नहीं किया है। पर प्राकृतों में उकारांत रूप पनपने लगे थे। पुरुषोत्तम देव ने 'टक्क' विभाषा को संस्कृत और शौरसेनी का मिश्रित रूप मानते हुए इसे उकार-बहुला माना है।[1] अश्वघोष के नाटक [लगभग १०० ई०] की भाषा प्रारम्भिक प्राकृत की उदाहरण है। इसमें दुष्ट गणिका विदूषक और गोमत्र की भाषा में अ > ओ मिलता है। आगे यह स्पष्ट किया जायगा कि ओ का ह्रस्व उच्चारण होते होते भी—उ होगया। निया प्राकृत सर आरेल स्टाइन द्वारा उपलब्ध मध्य एशिया के खरोष्ठी लेखों की भाषा है। इसमें अन्त्य अ >उ का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है। प्रात > प्रतु, मत > मुतु, कुजर > कुज। इसमें अकारांत का उकारांत भी मिलता है विराग > विरगु, मधुर > मसुरु। अ > ओ के भी उदाहरण हैं। महाराष्ट्री प्राकृत में अ > उ के उदाहरण मिलते हैं उदधित > उग्रहीउ। शौरसेनी में उकारान्त का ओकारांत मिलता है। मागधी प्राकृत में प्रथमा एक वच० (सु) में भूतकालिक कृदन्त -क्त से निर्मित शब्दों में विभक्ति का या तो लोप हो जाता है या उसके स्थान पर उ का प्रयोग मिलता है।[2] हसित > हसिदु (हसिदि) अर्धमागधी में प्रथमा एक वच० अह के लिए गद्य में प्राय ए तथा पद्य में ओ मिलता है।[3] पैशाची प्राकृत को वररुचि ने शौरसेनी पर आधारित माना है।[4] हेमचन्द्र का भी ऐसा ही विचार दीखता है।[5] इसमें भी अ > ओ मिलता है। इस प्रकार किसी किसी प्राकृत में उ मिलता है तथा किसी में ओ वाले रूप मिलते हैं। ओ वाले रूप उ वाले हो गये। इस प्रक्रिया का मुनि जिन विजय जी ने उल्लेख किया है।[6]

अपभ्रंश में यह प्रवृत्ति प्रमुख हो गई। इस संबंध में मुनिजिनविजय जी का कथन दृष्टव्य है।

---

१ संस्कृत शौरसन्यो [प्राकृतानुशासन १६/१] उद्बहुलम [वही १६/२]
२ प्राकृत प्रकाश १२/११
३ डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल प्राकृत विमर्श पृ० ८६
४ प्रकृति शौरसेनी प्रा० प्रकाश १०/२
५ शेष शौरसेनीवत प्रा० व्याकरण ४/३२८
६ पउम चरिउ—भूमिका प्रथम खंड पृ० ८६
७ P C, Intro, vol 1, p 61 § 55

"—u (eul.—au) is the only termination in the Noun and Acc. sing., there being no form in a or-ā Noun sing. forms in-O occur sporadically as prakritisms before the indeclinable vi and under metrical stress"

इसके अतिरिक्त अन्य स्त्रीलिंग रूपों में भी उन्होंने यह प्रवृत्ति मानी है।[1] सन्देश रासक की भाषा पर विचार करते हुए श्री भायाणी ने मध्यग-व-के लोप को परवर्ती अपभ्रंश की एक विशेषता माना है। यह विशेषता ब्रजभाषा की विशेषता बन गई[2]। 'व' के लोप होने पर उ का आगम भी एक विशेषता हो गई। जीव >जीउ। चौदहवीं शती के 'षडावश्यक बालावबोध' में उकार की बहुलता मिलती है।[3] यहाँ पुरु, नगरु, भद्र, राउ जैसे रूप मिलते हैं। श्री अगरचन्द नाहटा ने वीरगाथा काल के जैन-साहित्य के कुछ उदाहरण दिये हैं। उनमें पूर्वी प्रदेश की बोली में भी उकार प्रवृत्ति मिलती है।[4] बारहवीं शती में काशी के दामोदर पंडित ने 'उक्ति-व्यक्ति प्रकरण' ग्रंथ रचा। इसकी भाषा "प्राचीन कोसली" है।"[5] शौरसेनी अपभ्रंश के प्रथमा एक वचन के प्रत्यय-उ का प्रभाव प्राचीन कोसली पर इतना व्यापक जान पड़ता है कि प्रथमा के अतिरिक्त अन्य विभक्तियों में भी उकारान्त पदों का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार यह समस्त पूर्वी तथा पश्चिमी अपभ्रंशों की विशेषता हो गई।[6] श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर ने इस अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा था।[7] अत. पुल्लिंग संज्ञाओं, विशेषणों तथा कृदन्तों के कर्ता तथा कर्म कारकों के एकवचन रूपों का उकारान्त अथवा ओकारान्त होना शौरसेनी क्षेत्र की मुख्य पहचान थी। उनका इकारान्त तथा एकारान्त होना मागधी भाषाओं की एवं उनका अकारान्त अथवा आकारान्त होना पंजाब प्रांतीय भाषाओं की।' पर इकारान्त, ऐकारान्त वाले प्रदेश में भी वैकल्पिक रूप से ओकारान्त, उकारान्त प्रवृत्ति मिल जाती है, यह देखा जा चुका है। इस प्रकार हेमचन्द्र के बाद 'उक्ति-व्यक्ति' में होती हुई यह प्रवृत्ति अवधी और ब्रजभाषा तक अबाध गति से प्रचलित रही।

---

१ देखिये, वही p. 64, § 69।

२ सन्देश रासक, व्याकरण, § ३३ सी०।

३ उद्धरण देखिये, अगरचन्द नाहटा, आचार्य प्रवर तरुण प्रभसूरि, जर्नल आव दि यू० पी० हिस्टारीकल सोसायटी, वर्ष २२–खण्ड १-२ (१९४९)

४ वीरगाथा काल का जैन साहित्य ना० प्र० पत्रिका वर्ष ४६, अंक ३, १९९८ वि०

५. डा० चटर्जी उक्ति व्यक्ति प्रकरण स्टडी, पृ० २

६ O I A-अ > अप०-उ It is the Characteristic of this period that-u of noun sing. is applied to indeclinables also, in all the regional Aps. [G V. Tagare Historical Gr. of Ap. पृ० 51]

७ कोशोत्सव स्मारक ग्रंथ, ना० प्र० स० (सं० १९८५) पृ० ३८५, साहित्यिक ब्रजभाषा तथा उसके व्याकरण की सामग्री' लेख।

विसर्ग > उ--

पालि में अकारान्त शब्दों के परे विसर्ग का—ओ हो जाता है।[1] जैसे देव > देवो, क > को। माग > मग्गो, मूक > मूगो। प्राकृत में भी यही विसर्ग > ओ की प्रणाली चलती रही[2] यथा > जसो क्षुद्र > खुद्दो, त्याग > त्याजो, आय > आयो, स्पन्द >फन्दो। शिला प्राकृत[3] में अ > उ का वैकल्पिक प्रयोग भी मिलता है प्रातु > प्रतु मत > मुतु, कुजर >कुजरु। पर साधारणत इसमें अ > ओ ही मिलता है। महाराष्ट्री प्राकृत में भी कुछ उदाहरण अ > उ के मिल जाते है। उच्चित > उग्रहोउ। किन्तु अपभ्रंश में आकर उकार की धारा प्रबल हुई। ओ के स्थान पर—उ आने लगा। शकर > सकरु, भयकर > भयकरु, तडाग >तलाउ [4] ब्रज का बोली में अपभ्रंश का यही प्रवृत्ति दीखती है। नीचे तुलनात्मक सारिणी से यह बात स्पष्ट हो जाती है—

स०	पा० प्रा०	अप०	ब्रज०
माग	मग्गो	—	मगु
मूक	मूगो	—	मूकु
शकर	—	शकरु	सकरु
तडाग	—	तलाउ	तलाउ (तलावु)

पालि और प्राकृत का ओ ह्रस्व होता होता उ के रूप में रह गया हो यह हो सकता है।[5] यह प्रवृत्ति पउम चरिय' में दीखती है। इस प्रकार विसर्ग >उ का प्रवृत्ति का तारतम्य बैठ जाता है।

मध्यग-व-का लोप और-उ-का आगम--

श्री भायाणी ने मध्यग—व—के लोप को परवर्ती अपभ्रंश का एक विशेषता माना है। उन्होंने इस ब्रजभाषा की एक विशेषता माना है।[5] इसके स्थान पर उ आ जाता है।

---

१ भरतसिंह उपाध्याय, पालि साहित्य का इतिहास, पृ० ४५

२ अश्वघोष के नाटक की भाषा प्रारम्भिक प्राकृत है (लगभग १०० ई०) इसमें गणिका और विदूषक की भाषा शौरसेनी है। इसमें अ का ओ मिलता है। गोभय की भाषा अर्द्ध मागधी का प्राचीन रूप माना जाता है। इसमें भी अ >ओ मिलता है। अर्द्धमागधी में गद्य में अ >ए मिलता है तथा पद्य में—ओ मिलता है। (डा० नरयूप्रसाद अग्रवाल प्राकृत विमर्श, पृ० ८६) पैशाची में भी अ >ओ रूप मिलता है। मध >मधो, केशव >केसवो।

३ सावय धम्म दोहा १७०

४ "In the constituted text the Genitive and Vocative forms have been spelt with short 'o' The Imperative forms are spelt with —u also when none of the Mss has o

[जिनविजया मुनि Pc, T, Intro p 56]

५ सन्देशरासक, व्याकरण § ३३ गो०

जीउ = जीव
सताउ = संतावु
पीउ = पीव

ब्रज की बोली में यह प्रवृत्ति ज्यों की त्यों मिलती है। जीउ, पीउ जैसे शब्द आज भी इस बोली मे प्रयुक्त होते हैं। नीचे ब्रज की बोली मे कुछ उदाहरण संचित किये गये हैं—

जीउ = जीव
राउ = राव
गाँउ = गाँव

प्राकृतों में भी—व का लोप तो होता था,[1] पर वहाँ—उ का आगम नहीं था। उनमे अ आजाता है जीव > जीअ, दिवस > दिअहो। पर अपभ्रंश मे प्राय समस्त अकारान्त सज्ञाओं को उकारान्त कर दिया गया। अत —व—के लोप होने पर—उ—का आना स्वाभाविक था।

अ > उ—

स्वर व्यत्यय का उदाहरण प्राकृतों मे मिलता है। इनमें एक अ > उ भी है। प्रलोकयति > प्रलोएदि, सर्वज्ञ < सव्वण्णु। यह स्वर व्यत्यय महाराष्ट्री और अर्द्ध मागधीमें विशेष रूप से मिलता है।[2] पर प्राकृत में अकारान्त शब्द ओकारान्त बहुधा होते हैं—

दर्भ > डब्भो
व्यतिक्रम > वितिक्कमो
मुग्ध > मुद्धो
खड्ग > खग्गो
सुप्त > सुत्तो

'नियाप्राकृत' मे अकारान्त का उकारान्त भी मिलता है। विराग > विरगु; मधुर > मधुरु। शौरसेनी में अकारान्त का ओकारान्त रूप ही मिलता है · व्यापृत > वावुडो; पुत्र > पुड्डो। मागधी प्राकृत की एक विभाषा चाडालो[3] में प्रथमा, एकवचन अकारान्त शब्दों में— ए और—ओ दोनों प्रयोग मिलते हैं।[4] इस प्रकार प्राकृतों में ओ तथा उ दोनों रूप ही मिलते हैं। पर शौरसेनी में अ > ओ ही प्रमुख है।

अपभ्रंश में अकारान्त को प्राय नियमित रूप से उकारान्त कर दिया जाता था।

कमल > कवँलु
भ्रमर > भवँरु

---

१. क-ग-च-ज-त-द-प-य-वा प्रायो लोप, प्राकृत प्रकाश, २/२
२ डा० सरजू प्रसाद अग्रवाल, प्राकृत विमर्श, पृ० ९९.
३ प्राकृतानुशासन, १४/१
४. वही, १४/२

इसी प्रवृत्ति के दर्शन ब्रज की बोली में होते हैं। कमलु, भमरु, आदि रूप वहाँ ज्यों के त्यों मिलते हैं। यहाँ भी ब्रज की बोली अपभ्रंश की अनुगामिनी दीखती है।

अकारान्त शब्दों को उकारान्त करने की प्रवृत्ति ब्रज में बहुत व्याप्त हो गई है। अकारान्त पुल्लिंग एक वचन संज्ञाओं को तो उकारान्त कर ही दिया जाता है पर अकारान्त विशेषण जो अकारान्त पु० एक वच० संज्ञाओं के साथ लगते हैं, उनको भी उकारान्त कर दिया जाता है लालु, एकु, आदि। विशेषण के साथ तो यह प्रवृत्ति इतनी बढ़ गई है कि बहुवचन अकारान्त संज्ञा के अकारान्त बने रहने पर भी विशेषण उकारान्त हो सकता है—

जैसे—

सबु लोग गये।
भौतु बातन में कहा करयाऐ।

इस प्रकार उकारान्त एकवचन संज्ञा को उकारान्त करने की प्रवृत्ति का तारतम्य प्राकृत, अपभ्रंश और ब्रज की बोली में मिल जाता है। इस तारतम्य को नीचे की तुलनात्मक सारिणी से समझा जा सकता है—

संस्कृत	प्रा०	अप०	ब्रज की बोली
अद्य	अज्ज	अज्जु	आजु
कृपण		निपणु	किरपनु
तत्वम्		तच्चु	तत्तु
तडाग		तलाउ	तलाउ (तलावु)
प्रिय		पिउ	पिउ
राजन		राउ	राउ
रावण		रामणु	रामनु
वायु		वाउँ	बाउ (बाइ)

किन्तु कुछ ऐसे शब्द भी हैं जो प्राकृत या अपभ्रंश में उकारान्त मिलते हैं। संस्कृत का 'बाहु' ब्रज की बोली में 'बाँह' मिलता है। नीचे की सूची से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

सं०	अप०	ब्र० बोली
वस्तु	वत्थु	बत्त
बन्धु	बंधु	बन्द
अभ्यन्तरम्	भीतरु	भीतर
वधू	वहु	बहू
ऋतु	रिउ	रुति
नवनीत	लोणिउ	लौनी

जहाँ तक बाहु > बाँह का संबंध है बाहु संस्कृत में न० लिंग है किन्तु बाँह ब्रज की बोली में स्त्रीलिंग हो जाती है। यह पहले देखा जा चुका है कि स्त्रीलिंग अकारान्त ब्रज

की बोली में उकारान्त नहीं होता 'वस्तु' के तद्भव रूप का ब्रज की बोली में कभी प्रयोग नहीं होता। केवल जेवरों के संबंध में बातचीत करते हुए 'चीज-बस्त' या 'चीज-बस्त' का प्रयोग होता है। यह भी स्त्रीलिंग में है। 'बन्द' शब्द ब्रज में एक वचन में प्रयोग नहीं होता। 'भाई-बन्द' बहुवचन में ही प्रयुक्त होता है। बहुवचन अकारान्त को उकारान्त नहीं किया जाता। 'भीतर' स्थानवाचक है। स्थानवाचक को ब्रज में उकारान्त नहीं किया जाता भीतर, बाहर, ऊपर। वधू संस्कृत में अकारान्त है। अतः ब्रज में बहू हो गया। अपभ्रंश से प्रभावित बहु रूप नहीं मिलता। रुति में स्वर-विपर्यय है। नवनीत का लौनी इस प्रकार बना दीखता है—

नवनीत > लौनीअ > लौनी

नवनीत का लोणिउ होने में यह प्रक्रिया हो सकती है : 'व' का लोप होकर—उ का आगम हुआ। स्वरों को ह्रस्व करने की प्रवृत्ति के द्वारा 'नी' का 'णि' हुआ और अकारान्त को उकारान्त कर दिया गया और—'उ' आ गया।

ऐसे बहुत कम उदाहरण है जिनमे अपभ्रंश का उकारान्त ब्रज की बोली में उकारान्त न हो। पर ऐसे बहुत उदाहरण है जिनमें प्राकृत में अकारान्त ही रूप मिलता है, पर ब्रज मे वे उकारान्त मिलते है—

सं०	प्रा०	ब्र०
सर्व	सव्व	सबु
ग्राम	गाम	गामु
गृह	घर	घरु

अकारान्त को उकारान्त करने की प्रवृत्ति ब्रज में इतनी प्रबल है कि केवल संस्कृत तद्भवों में ही यह नहीं मिलती, अपितु विदेशी शब्दों का तद्भव रूप भी उकारान्त करके ही बनता है। नीचे की कुछ सारिणियाँ इस बात को स्पष्ट कर देंगी।

फारसी शब्द—

ज़ोर	...	जोरु
दरबार	...	दरबारु
निशान	..	निसानु
अदरक	..	अदरखु
होश	...	होसु
गरम	...	गरमु
जवाब	.	ज्वाबु

अरबी शब्द

मालूम	...	मालिमु
लायक	...	लाइकु
हाल	.	हालु
हकीम	..	हकीमु
असबाब	...	असबाबु

अंग्रेजी शब्द--

Boycott	बाईकाटु
Summon	सम्मनु
Collector	कलट्टरु
Joint (Collecter)	जडु
Inspector	सपट्टर
Station	अट्टेसुनु

इस उकार बहुला प्रवत्ति का दृष्टि से ब्रज का बोली सिन्धी भाषा स बहुत मिलती जुलती है —

स०	ब्रज	सिंधी
ओष्ठ	होटु[1]	—
काष्ठ	काठु	काठु
कास	कासु	कासु
क्षण	खनु	खिण
ग्राम	गामु (गाँउ)	गामु
वर	वरु	वरु
चोर	चारु	चारु
मेघ	मेहु	मेहु
जाल	जारु	जारु

इस सूची में केवल क्षण > खिण (सि०) ब्रज स नहीं मिलता। अन्य सभी रूप दोनों में उकारान्त मिलते हैं।

इतना याद रखना चाहिये कि प्रथमा द्वितीया एक वचन पुल्लिंग में भी अकारान्त या उकारान्त मिलता है। किन्तु विकृत बहुवचन रूप बनाने में अन' जोड दिया जाता है। पर मथुरा जिले के अधिकांश भाग में —अनु जोडा जाता है।[2] —अन् जोडने की प्रवत्ति अनें में परिवर्तित हो गई है—ग्रामनु ग्रामनें। खडी बोली के ओ (ग्रामो) का संबंध संस्कृत पष्ठी बहुवचन — आना' से माना गया है।[3] पालि में पु० अका० प० बहुवचन में आन मिलता है एक० बुद्धस्स बहु० बुद्धान। अन्त का एक० वचन प० अत्तनो बहुवचन अत्तान राज < राजन् का प० एक० रञ्जो, रञ्जस्स राजिनो राजस्स रूप मिलते हैं। इस का बहुवचन रूप राजान मिलता है। गुणवन्तु का भी प० बहु० वचन गुणवन्तान मिलता है।

---

१ गुजराती में होट मिलता है।

२ डा० धीरेन्द्र वर्मा ने इस संबंध में लिखा है 'आधुनिक ब्रज में संपूर्ण क्षेत्र में व्यंजनान्त संज्ञाओं में 'अन' जोड कर विकृत रूप बहुवचन बनाया जाता है। ग्राम से ग्रामन्, इट से इटन् केवल अलीगढ़, ऐटा तथा बदायूं में अनु जोडा जाता है" ब्रजभाषा, पृष्ट ५८।

३ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी भाषा का इतिहास, पष्ट २५८।

प्राकृत में भी पुल्लिंग अकारान्त षष्ठी के रूप — आन से बवत मिलते हैं—

एक०	बहु०
वच्छस्स	वच्छाण, वच्छाण

राजन् शब्द में भी षष्ठी बहु० (आम्) के लिए —ण का प्रयोग होता है।[1] जैसे राज्ञाम् > राआण।

किन्तु अपभ्रंश में षष्ठी बहु० (आम्) में अकारान्त शब्दों के लिए—हुँ रूप का प्रयोग होता है।[2] तृणाना > तणहुँ। देव > देवहुँ।

ब्रजभाषा में अपभ्रंश वाला रूप प्रचलित नहीं हुआ। आन या आण रूप अन या अनु के रूप में मिलते हैं। अकारान्त का उकारान्त ब्रज में हो जाता है और अपभ्रंश में भी। जैसे स० कथित > अप० दथिउ > ब्र० कहिउ।

इस अनु की बहुवचन बनाने की शक्ति इतनी लोकप्रिय है कि ब्रज में बहुवचन बनाने के लिए इकारान्त, उकारान्त, आदि सभी स्त्री० तथा पु० शब्दों को अनु लगाकर बहुवचन बनाया जाता है—

	एक०	बहु०
पुल्लिंग—	पीवा	पीधानु, पीधनु
	वन्दरु	वन्दरनु
	गाठि	गाठिनु
स्त्रीलिंग—	बहू	बहूनु
	दाई	दाईनु
	गऊ	गऊनु
	गाइ	गाइनु

इनमें से अधिकांश में केवल —नु ही रह गया है। अ समाप्त हो गया है। स्त्रीलिंग शब्दों के षष्ठी बहुवचन शब्दों का ब्रजभाषा के स्त्री० शब्दों की तुलना करिये।

	प्रा.	ब्र.
नदी (णई)	णईण, णईण	नदीनु
माला	मालाण, मालाण	मालानु
वधू	बहूण, बहूण	बहूनु

इस प्रकार इस प्रवृत्ति में ब्रज की बोली प्राकृत के अधिक समीप है।

कर्ता एक वचन—

प्रथम द्वितीया एक० (सि, अम्) की विभक्तियों के पूर्व शब्द के अन्त्य अ > उ रूप मिलता है।[3] इसको डा० तगरे ने सभी प्रादेशिक अपभ्रंशों की विशेषता माना है।[4] प्रथमा

१. आमोण —प्राकृत-प्रकाश, पृष्ठ ५/४०
२. हेमचन्द्र, प्रा० व्या० ४/३३९
३. हेमचन्द्र प्राकृत व्याकरण, ४/३३१।
४ OIA—a > u It is the Characteristic of this period that—u of Nomn. sing is applied to in declinables also, in all the regional Aps [Historical Gr. of Ap., P. 51]

एक वचन के कुछ उदाहरण अपभ्रंश से दिये जा सकते हैं—

दसमुख > दहमुहु
भयकर > भयंकरु
सकर > सकरु

द्वितीया एकवचन के उदाहरण—

चतुमुख > चउमुहु
षण्मुख > छमुहु

नपुंसक लिंग में भी—उ स्वर हो जाता है—

मुखकमल > मुँहकमलु

न० लिंग के अकारान्त रूपों के प्रथमा और द्वितीया एक० (सु अम्) में - उ का प्रयोग मिलता है —

तुच्छक > तुच्छउ

'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' की भाषा को डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने 'प्राचीन कोसली' माना है।[1] शौरसेनी अपभ्रंश के प्रथमा एकवचन के प्रत्यय—उ का प्रभाव इस भाषा पर बहुत है। यहाँ तक कि प्रथमा के अतिरिक्त अन्य विभक्तियों में भी उकारान्त पदों का प्रयोग हुआ है। हेमचन्द्र के बाद उक्ति—व्यक्ति में होता हुई यह प्रवृत्ति अवधी[3] और ब्रज भाषा[4] तक अबाध गति से प्रचलित रही। खड़ी बोली में इस प्रवृत्ति का लोप हो गया। यह भी हो सकता है कि खड़ी बोली से संबंधित अपभ्रंश में यह प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही न रही हो। वर्ण रत्नाकर में इस प्रवृत्ति के दर्शन नहीं होते। कीर्तिलता में इसके प्रयोग कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में हो रहे हैं।[5] सूरसागर में यह प्रवृत्ति नियमित नहीं मिलती। पर ब्रज की प्रचलित बोली में यह स्पष्ट दीखती है। इसमें छप्परु घरु बरु आदि शब्द हैं जिनमें यह प्रवृत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इस स्थान पर कोई अपवाद नहीं मिलता।

प्रथमा बहुवचन में अकारान्त को उकारान्त अन्त में नहीं किया जाता। बहुवचन और एकवचन के प्रथमा रूपों में यही मुख्य अन्तर है।

वर्तमान कालिक कृदन्त

प्राकृतों में वर्तमान कालिक कृदन्त न्त और मानच के लिए—न्त और—माण प्रत्यय जुड़ते हैं।[7]

१ प्राकृत व्याकरण ४/३३०/छन्द—२
२ वही ४/३५३
३ उक्ति व्यक्ति प्रकरण, स्टडी, पृष्ठ २
४ उपजा हिय अति हरषु विसरा (मानस)
५ स्यामु हरित दुति होय (बिहारी)
६ तवहु पिआज पिआजु पइ
जमु पत्थावे पुण्ण।
७ न्त माणौ शतृ शानचः प्राकृत प्रकाश ७/१०

पठत्, पठमान् > पठन्तो पठमाणो
हनत्, हनमान् > हनन्तो, हनमाणो

अपभ्रंश में—अन्त तथा-माण अन्तवाले वर्तमान कालिक कृदन्त मिलते हैं।[1] पश्चिमी अपभ्रंशों में— अन्तु रूप भी मिलता है। डा० तगरे ने इसका कालक्रम इस प्रकार निर्धारित किया है[2]—

५०० ई० ?—भमन्त

६००—१००० ई०—जणन्तु, वसन्तु, मुणन्तु, गहन्तु, लहन्तो। यह उकारान्त रूप ब्रज की बोली मे इसी वर्तमान—कालिक कृदन्त में मिलता है। पर इन्ही शब्दो को यदि ब्रज की बोली में लिखा जाय तो इस प्रकार लिखा जायगा -

अप०	ब्रज
भमन्तु	भमतु
जणन्तु	जान्तु
वसन्तु	बसतु
गहन्तु	गहँतु
लहन्तो	लहँतु (लेतु)

अन्तु वाले रूप केवल प्रथमा एक वचन मे मिलते हैं। प्रथमा बहुवचन में—अन्त वाले ही रूप मिलते हैं—भमत, जान्त आदि। ब्रजभाषा में वर्तमान कालिक कृदन्त को उकारान्त कर दिया जाता है।[3] जैसे जाँतु, चल्तु, आँमतु। यदि आरभिक ध्वनि दीर्घ स्वर से सयुक्त होती है तो उसका नासिक्यीकरण कर दिया जाता है—आँमतु, जाँतु, खाँतु, गाँमतु। मथुरा जिले के कुछ भागो में, नासिक्यीकरण नही मिलता. आवतु, जातु, खावतु, रोवतु आदि। मथुरा के जिन भागो में नासिक्यीकरण मिलता है, उन भागो में भी चमारो की बोली में नासिक्यीकरण नही मिलता। चमारो की बोली में चल, गल्, मिल् आदि से बने हुए रूपो ल्तु न मिलकर न्तु मिलता है।

	अन्य	चमार
मिल्	मिल्तु	मिन्तु
चल्	चल्तु	चन्तु
गल्	गतुं	गन्तु

'न्तु' वाली प्रवृत्ति साम्य के आधार से आई हो सकती है। इसका अपभ्रंश से बहुत कुछ साम्य है।

---

१ डा तगरे, Historical Gr of Ap पृ० ३१४.
२ वही।
३ 'पश्चिम में साधारणतया—तु . प्रत्यय जोड़ते हैं—' डा० धीरेन्द्र वर्मा, 'ब्रज-भाषा,' पृ० ६६।

आज्ञार्थ

प्राकृत वैयाकरणों के अनुसार कुछ विशेष रूप अपभ्रंश में मिलते हैं, जो प्राकृतों में नहीं मिलते थे।

प्र० पु० बहु० वच०—हुं (hum)[1]
द्वि० पु० एक० वच० —इ-उ-ए ।[2]
तृ० पु० एक० वच०—उ[3]

शेष रूप प्राकृतों के समान ही थे। प्राकृतों में आज्ञार्थ के लिए निम्नलिखित रूप थे।[4]

एक वचन

प्र० पु० अमु (amu)
द्वि० पु० शून्य (या—अ)-(अ—ए-) सु—एहि Amg also आहि
तृ० पु० अउ शौ० मा० ढ० अदु

बहु वचन

प्र० पु० अप० अ-मा० आमो, महा० शौ० आमो, ढ० तथा अ० मा० भी-(a c) म
द्वि० पु०—अह शौ० मा० (?) अध एध C-P अध
तृ० पु० अन्तु

अपभ्रंश में इनके अनेक रूप मिलते हैं। पर इन अनेक रूपों में से भी नीचे लिखे हुए रूप अधिक प्रयुक्त होते हैं —

द्वि० पु० एक वच० शून्य (या अ) अह अहु
तृ० पु० एक वच० —(अ) उ तृ० प्र० बहु० —(अ) न्तु
द्वि० पु० बहु० वच —(अ) हु ।

प्रथम पुरुष के रूप प्रायः नहीं मिलते हैं जो मिलते हैं वे अपवाद स्वरूप और प्राकृत के अनुकरण पर हैं। अपभ्रंश के ये रूप—उ की ओर ही विकसित होते दीखते हैं। यह बात अहु न्तु, हुं से स्पष्ट है।

ब्रजभाषा

डा० धीरेन्द्र वर्मा ने प्राचीन ब्रज के मध्यम पुरुष वर्तमान आज्ञार्थ बताने वाले निम्नलिखित प्रत्ययों का उल्लेख किया है ?

एक वचन	बहु वचन
—अ —उ —इ —हि	—अहु —ओ —आ
	—हु—उ

---

१ क्रमदीश्वर का संक्षिप्त व्याकरण ६६
२ हेमचन्द्र ८, ३८७ क्रमदीश्वर ६४
३ क्रमदीश्वर ६८
४ Pischel, Grammatik § 467

इनमें से एकवचन का अन्तिम प्रत्यय—हि दीर्घ स्वरान्त धातुओं के बाद आता है—जाहि, खाहि, आदि। बहुवचन के प्रत्ययों में अन्तिम दो भी दीर्घ स्वरान्त धातुओं के बाद आते हैं - लेहु, जाउ, आउ, खाउ।

मध्यम पुरुष एक वचन में शून्य (अ) प्राकृत में भी था और अपभ्रंश में भी यह पहले देखा जा चुका है। वही—अ व्रजभाषा में भी डा० धीरेन्द्र वर्मा ने माना है।[1] यह—अ वाला रूप मथुरा की छाता तहसील में आज भी बोलचाल में है। पर अन्य स्थान पर अ वाला रूप नहीं मिलता वहाँ—इ वाला रूप मिलता है। चलि, टरि, करि आदि। यहाँ हमारा संबंध—इ वाले रूप से नहीं है।—उ वाला रूप प्रा० और अप० में प्रचलित था। प्राचीन व्रज में भी था। पर आजकल मथुरा जिले की व्रज की बोली में केवल दीर्घ स्वरान्त धातुओं में—उ जुड़ा हुआ मिलता है तू जाउ, तू आउ, खाउ। पर नवीन पीढ़ी के व्रजभाषा भाषी अब इस—उ को भी छोड़ रहे हैं। केवल जा, खा, आ, धातु रूप ही बोले जाते हैं। इस प्रकार मथुरा जिले की आधुनिक व्रज की बोली में से—उ वाले मध्यम पुरुष एक० वच०, आज्ञार्थ के रूप समाप्त होते जा रहे हैं।

मध्यम पुरुष बहुवचन के रूप प्राकृतों में—अ से युक्त थे। अपभ्रंश में मध्यम पुरुष बहुवचन का रूप—उ से युक्त हो गया। यह पीछे दी हुई तालिका से स्पष्ट है। प्राचीन व्रज भाषा में भी—अहु, और—उ वाले रूप थे। पर मथुरा जिले की आधुनिक बोली में य—अहु और—उ वाले रूपों का अभाव हो गया। केवल—औ वाले रूप शेष रह गये हैं: चलौ, आऔ, गाऔ आदि। पर दीर्घ स्वरान्त धातुओं में—उ लगाने की प्रवृत्ति आज भी प्रचलित है।

तुम लेउ
तुम देउ

किन्तु यदि—आकारान्त धातु होती है तो—औ ही लगाया जाता है।

उत्तम पुरुष आज्ञार्थ के रूप अपभ्रंश में ही लुप्त हो गये थे।[2] व्रज में भी नहीं मिलते। अन्य पुरुष के प्रा० और अपभ्रंश रूप—उ से युक्त थे। मथुरा जिले की बोली में अन्य पुरुष के निम्नलिखित आज्ञार्थ रूप प्रचलित हैं—

एक वचन

१.	व्राते	कहियेउ कि वु	चलै	(ह्रस्वस्वरान्त धातु)
२	,,	,,	जाइ	(दीर्घ स्वरान्त धातु)
३.	,,	,,	आवै	,,
४.	,,	,	खावै	,,
५.	,,	,,	न्हावै	,,
६	,,	,,	ले (इ)	,,
७	,,	,,	दे (इ)	,,

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा, व्रजभाषा पृ० ९८
२. As expected there are no forms of IP. sing. and plur. (Dr. Tagare, Historical Gr. of Ap, पृ० २९७]

बहु वचन

इसमें चल, जाइँ, मान, खाम, जाम लें, दें रूप हो जाते हैं। इस प्रकार—उ वाले रूप यहाँ से भी लुप्त हो गये।

ऊपर केवल मुख्य रूपों के विकास इतिहास पर दृष्टि डाली गई है। कुछ अन्य रूपों में भी उकार की प्रवृत्ति मिलती है जैसे वर्तमान निश्चयार्थ में सहायक क्रिया तथा मूल क्रिया का मध्यम तथा प्रथम पुरुष, एकवचन हतुऐ रूप मिलता है।[1] वर्तमान सम्भावनार्थ में एक वचन 'होउ' मिलता है। आप प्राचीन ब्रज में परिमाणवाचक उकारान्त क्रिया विशेषण कछु था।[2] समुच्चय बोधक क्रिया विशेषण और का ब्रज में औरु मिलता है। किन्तु ये अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं।

---

१ धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा पृ० १०५

२ वही, पृ० १०८

दिया है। वाल्मीकीय रूप में कवि ने जो परिवर्तन किये हैं, उनके लिये कवि क्षमा-याचना भी करता है। उसके शब्द देखिये—

'समस्त रसक कोने जानिवाक पारे।
पक्षी सब उरइ येन पखा अनुसारे॥
कवि सब निबन्धय लोक-व्यवहारे।
कतो निज कतो लम्भा कथा अनुसारे॥
देववाणी नुट्टि इठो लौकिक से कथा।
एते के इहार दोष नलैका सर्व्वथा॥

[कौन समस्त रसों का पार पा सकता है? पक्षी अपने पंखों की क्षमता के अनुसा उड़ान भरते हैं। कवि अपनी रचनाओं को लोक-व्यवहार के अनुसार रचते हैं। कभी नवीन कथासूत्रों को मूल-कथा के साथ तथ्यों और घटनाओं के स्वभाव के अनुसार जोड़ दिया जात है। ये सूत्र लौकिक हैं, स्वर्गीय भाषा में प्रकट नहीं हुये। अतः इस प्रकार के परिवर्तनों लिये कवि दोषी नहीं ठहराया जा सकता]

इस प्रकार परिवर्तनों के लिए तर्क प्रस्तुत करने के अनन्तर कवि लोक-रुचि अनुकूल वर्णनों में परिवर्तन करने की स्वतंत्रता का उपयोग करता है। वह एक सशक्त कथ करने वाला था। वह पाठकों की जिज्ञासा को तीव्र रूप में रखने की कला को जानता था वह मानवीय भावों और मानसिक प्रक्रियाओं के क्रम को जानता था। वह प्रकृति का भी अच्छ चित्रकार था। उसने प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रात्मक वर्णन प्रस्तुत किये हैं; नगरों, स्था तथा मानवीय सौन्दर्य के सुन्दर चित्र इनकी रचना में मिलते हैं। उक्त वर्णनों प्रस्तुत करने में कवि की दृष्टि आसामी जीवन और पद्धति, पौधे और पक्षियों पर स रही है।

माधव कदली का परवर्ती कवियों पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा। कथा-काव्य के में माधव कंदली की शैली और उनके वर्णन परवर्ती कवियों के लिए आदर्श बन गये। कहावतें, घरेलू लोकोक्तियाँ तथा कल्पना चित्र आदि ने परवर्ती कवियों को बहुत दूरी प्रभावित किया।

पंद्रहवीं शती में कोई उल्लेखनीय साहित्यिक कृति नहीं दीखती। इस शताब्दी के अन्ति भाग में अथवा आगे की शताब्दी के आरंभिक दशकों में कथा-काव्य की एक नवी शैली का जन्म हुआ. पाचाली (सं० पांचालिका) अथवा लेचारी (स० रथ्याकर)। प्रकार की रचनाएँ 'ओजा पाली' नामक अभिनय के लिये की गई थीं। इस प्रकार अभिनय आज भी खुले रंगमंच पर खेले जाते हैं: ओजा इसका नेता होता है। दुर्गा मनकर, पीताम्बर, तथा सुकवि नारायण देव इस समय के प्रमुख कवि हैं जिन्होंने संगीत अभिनयों के लिये रचनाएँ बनाईं। सुकवि नारायण का पद्म पुराण, मनकर मनसा-काव्य, तथा दुर्गावर का बेउला-उपाख्यान कुछ उल्लेखनीय रचनाएँ इनमें सर्पदेव मनसा तथा बेउला (बेहुला, बेफुला) के कार्य और कथा का व वर्णनात्मक शैली में है। बीच-बीच में गीतों का भी समावेश मिलता है। बेउला सा

के समान अपने मत पति का काल के मुँह से निकाल कर लाई थी। कथा की घटनाओं और परिस्थितियों का चित्रित करने वाले वर्णनात्मक पद्य पूर्ण और सरल है। बीच बीच में जो गीत है उनमें विभिन्न परिस्थितियों के प्रति मानव की समस्त भाव दशाओं का चित्रण मिलता है। दुर्गावर की गिरि रामायण तथा पीताम्बर का उषा परिणय भी इसी शैली के काव्य है।

सोलहवीं शती के वैष्णव-कवियों ने कथात्मक काव्य को और भी अधिक विस्तृत और समृद्ध किया। आगे समय में भी यह विकास क्रम चलता रहा। शंकरदेव के द्वारा परिचालित नव-वैष्णव आंदोलन के फलस्वरूप सांस्कृतिक और साहित्यिक नव जागरण आया। इस आंदोलन ने असमी साहित्य को नवीन रूप और आकार दिया। वैष्णवों का आचार दर्शन और आदर्श इस युग के कवियों के दृष्टिकोण को प्रभावित करने लगे। सांसारिक जीवन-तत्वों पर धार्मिक-तत्वों का अनुशासन होने लगा। इस युग में सम्पूर्ण महाभारत, रामायण, भागवत पुराण तथा अन्य वैष्णव पुराणों का अध्यायों के अनुसार अनुवाद तो हुआ ही इसके अतिरिक्त ऐसे अनेक स्वतन्त्र काव्यों की रचना हुई जिनकी रूप रेखा पौराणिक कथा सूत्रों के अनुसार खड़ी हुई थी।

सोलहवीं शती और उसके बाद के कथात्मक काव्यों में विषय-वस्तु दो प्रकार की दीखती है अपहरण और युद्धों के वर्णनों से युक्त रोमांटिक प्रेम तथा ऐसे वीरता पूर्ण कार्य जिनमें सद्वृत्तियों की असद्वृत्तियों पर विजय प्रकट होती है। शंकरदेव का रुक्मिणीहरण काव्य, अनन्त कंदली का कुमार हरण-काव्य तथा रामसरस्वती का बधासुर वध कुलाचल वध खटासुर वध आदि दूसरे प्रकार की विषय वस्तु का प्रतिनिधित्व करते है। रुक्मिणीहरण में कृष्ण द्वारा रुक्मिणी के अपहरण का कथा है यद्यपि उसके भाई रुक्म ने शिशुपाल के साथ रुक्मिणी के विवाह का वचन पक्का कर दिया था। इस कथा का ढाँचा हरिवंश से लिया गया है। किन्तु दृश्य परिस्थिति तथा पात्रों का चित्रण आसामी कवि ने अपने ढंग से किया है। अनन्त कंदली के 'कुमारहरण' में उषा अनिरुद्ध के प्रेम का चित्रण मिलता है। इसका परिणामस्वरूप अन्त में उषा के पिता बाणासुर और अनिरुद्ध के बाबा कृष्ण का युद्ध होता है। अतिरिक्त दृश्यों धार्मिक अनुष्ठानों, मानसिक संघर्षों तथा व्यवहारों का विशद चित्रण दोनों काव्यों में मिलता है। नाना नायकों का कथोपकथन पारस्परिक कटूक्तियों का प्रयोग आदि यथार्थवादी है और उनपर स्पष्ट सामाजिक छाप है। मध्यकालीन आसाम के रीति रिवाज व्यक्तिगत पोशाक तथा आभूषण भोजन तथा पेय सबका उचित और यथार्थ वर्णन इन काव्यों में मिलता है। इसी स्थानीय रंगत के कारण ये दोनों काव्य आज भी पाठकों के एक विशेष वर्ग में लोकप्रिय है। दूसरे प्रकार के काव्य वध काव्य है। इनमें दानवों का नाश और मरण चित्रित है। दानव प्रथम के खोतक है। इनको मारने वाले वनवासी पांडव है। पाण्डव और द्रौपदी यद्यपि निर्बल लिये पराजित होते हुए दिखाये गये हैं पर अपनी विष्णु के प्रति अटल आस्था के कारण अन्त में विजयी होते है। स्व० डा० कांकती इन काव्यों की तुलना यारप और यूनान के मध्यकालीन रोमांसों से करते है। यहाँ के नायक अपने को योद्धत्व के कार्यों में लगाते है।

इन वैष्णव काव्यो मे एक गम्भीर दोष भी है । ये सभी कवि उत्साही वैष्णव थे । वैष्णव आदर्शो और उपदेशो को पाठको पर आरोपित करने का उनका उद्देश्य दीखता है । इस प्रयत्न में कथानक की एक सूत्रता भी यदि भग होती है तो इन कवियो को विशेष चिन्ता नही है ।

अठारहवी शती के आरम्भ मे कथात्मक काव्य के प्रवाह में कुछ परिवर्तन होते हैं । कामुकता का भाव भक्ति भाव मे अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है । विभिन्न स्रोतो से कहानियाँ जुटाई जाने लगती है । इन्ही को काव्य में बाँधा गया है । कविराज चक्रवर्ती का शकुन्तला तथा शखचूडवध, तथा दीन द्विज का 'माधव सुलोचना' १८वी शती की महत्वपूर्ण कृतियाँ है । शकुन्तला के कथानक का ढाँचा तो महाभारत मे लिया गया है । किन्तु आसामी कवि ने नवीन स्थितियो के समावेश और मूल कथानक में एक नवीन कहानी जोड कर उस ढाँचे पर रक्त और मास अपना चढाया है । अनुसूया प्रियम्वदा तथा दुर्वासा का शाप आदि तत्व कालिदास की अमर कृति शकुन्तला मे लिये गये हैं । इससे रचना का सौष्ठव बढा है । 'माधव सुलोचना,' माधव और सुलोचना के उत्कट प्रेम की कहानी है । अनेक कठिनाइयो और उतार-चढाव के पश्चात् दोनो मिल जाते हैं ।

१८वी शती में कुछ सूफी काव्यो को भी आसामी मे रूपातरित किया गया । सूफी भावो के स्थान पर वैष्णव भाव रख दिये गये है । कुतुवन के मृगावती-चरित, तथा मझन के 'मधु मालती' का आसामी भाषा में रूपान्तर किया गया, पर उसके सूफी तत्वो को निकाल दिया गया । सूफी कवि ईश्वर को प्रेमास्पद तथा भक्त की आत्मा को प्रेमिक के रूप में चित्रित करते है । सूफियो का यह दृष्टिकोण उक्त काव्यो में स्पष्ट है जहाँ प्रेमी अपनी प्रेमिका की प्राप्ति की साधना मे अनेक बाधाओ का सामना करता है । एक और रूपकात्मक काव्य इस युग में बना . महामोह काव्य । इसका आधार कृष्ण मिश्र रचित प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक है । सद् और असद् का आन्तरिक सघर्ष चित्रित किया गया है । पहले का प्रतिनिधि 'विवेक' है और 'दूसरे' का 'महामोह' (अविद्या) । अन्त में विवेक की विजय दिखलाई गई है ।

१९वी शती के मध्य में ब्रिटिश सत्ता आसाम में आरुढ हुई । आधुनिक आसामी साहित्य का यहाँ से आरम्भ होता है । ब्रिटिश सत्ता के आरभिक ५० वर्षो में कोई उल्लेखनीय कथा-काव्य नही लिखा गया । विद्यालयो मे बगला का अध्यापन आरम्भ हुआ । अदालतो में बंगला ने असमिया का स्थान लिया । शासको की इस भ्रमपूर्ण नीति का परिणाम यह हुआ कि असमिया साहित्य की वृद्धि और विकास रुक गया । ब्रिटिश शासको की इस दुर्नीति को सौभाग्यवश अमेरिका के बैप्टिस्ट मिशन ने अनुभव किया । कुछ शिक्षित आसामी नवयुवको की सहायता से इसने असमिया में 'अरुणोदय' नामक एक पत्रिका आरम्भ की । व्याकरण और कोशो के रूप में इस सस्था ने आसामी पुस्तको का भी प्रकाशन आरम्भ किया । इस प्रकार ये लोग अन्तत. असमिया को उसके न्याय्य स्थान पर प्रतिष्ठित करने में सफल हुये । ईसाई पादरियो के माध्यम से पाश्चात्य विचार, आदर्श और साहित्यिक रूपो का असमिया में प्रवेश होने लगा । योरुपीय साहित्य के नाटक, उपन्यास, लघु-कथा, प्रगीतिकाएँ, कथात्मक काव्य तथा निबध आसाम के साहित्यिको को प्रभावित करने लगे ।

फलत ये सभी साहित्य रूप असमिया साहित्य में अपना स्थान बनाने लगे। सन् १८७५ में आधुनिक असमिया साहित्य का प्रथम कथाकाव्य अभिमन्यु-बध रचा गया। इसके रचयिता रमाकान्त चौधरी थे। इसके कुछ वर्ष बाद भोलानाथ दास का सीताहरण-काव्य प्रकाशित हुआ। इन दोनों काव्यों की शैली और उनका छंद विधान बंगाली माइकेल मधुसूदन दत्त की पद्धति पर है। माइकेल मधुसूदन दत्त केवल बंगाल के कथा-काव्य में ही क्रांति प्रस्तुत करने वाले नहीं थे वरन् अपने आसपास के प्रदेशों में इनका गहरा प्रभाव पड़ा। सीताहरण काव्य में जहां परिस्थिति और कार्य का प्रवहमान वर्णन है वहां बीच-बीच में जहां तहां सुन्दर कार्यात्मक अंश भी हैं। किन्तु संस्कृत के अप्रचलित शब्दों तथा क्रियात्मक संज्ञाओं के प्रयोग ने इसकी रूपरेखा को जटिल कर दिया है। माइकेल मधुसूदन दत्त ने अमित्राक्षर (Blank Verse) का आरम्भ किया था। उसी शैली को रमाकान्त तथा भोलानाथ ने अपनाया तथा तब से अब तक लम्बे कथात्मक-काव्यों का यह नियमित माध्यम बना हुआ है।

बीसवीं शती के आरम्भिक चार दशकों में कुछ और कथाकाव्य रचे गये। ऐसे पौराणिक उपाख्यान जिनमें परा प्राकृतिक और धार्मिक तत्व प्रबल थे, समाप्त हुए। इनके स्थान पर ऐतिहासिक तत्व प्रधान हुए। यह वर्तमान शताब्दी की विशेषता कही जा सकती है। आधुनिक युगीन काव्य का इस शाखा का प्रतिनिधित्व हितेश्वर बरबरुआ करते हैं। बरबरुआ के कमतापुर ध्वस, (१९००) तिरोतार आत्मदान (१९१३) युद्धक्षेत्र आहोम रमना (१९१५) देसदेमन (१९१७) असमिया के काव्य साहित्य को अनूठी देन हैं। इनमें से अन्तिम में तुकान्त पद्य है। अन्य सभी अतुकान्त छंद में लिखे गये हैं। इनके पूर्ववर्ती रमाकान्त तथा भोलानाथ के अतुकान्त छंदों में मौलिकता कम और अनुकरण अधिक है। इसके विपरीत हितेश्वर बरबरुआ ने रचना को सरल और पद्य को स्वाभाविक बनाने का प्रयत्न किया है। कमतापुर ध्वस में कमतापुर के पतन की कथा है। कमतापुर खेनवंश के नीलाम्बर राजा की राजधानी थी। इसने १५वीं शती के अन्तिम भाग में पश्चिमी आसाम पर राज्य किया था। इस नगर का मुसलमानों के सम्मुख दयनीय पतन दो कारणों से हुआ बताया गया है मुस्लिम नेताओं की धोखेबाजी और अन्यायपूर्ण युद्ध नीति तथा ब्राह्मण मंत्रियों की प्रतिशोध भावना। ब्राह्मण मंत्री का लड़का राजा ने मार दिया था। उसका बदला लेने के लिये ब्राह्मण मंत्री आक्रामक सेना का साथ देने लगा।

तिरोतार आत्मदान में एक दुःखद किन्तु वीरतापूर्ण बलिदान की कथा है। राजकुमारी जयमती ने अपने पति राजकुमार गदाधर को तत्कालीन राजा छुलिक्फा (१६८१) के द्वारा पकड़े जाने और मारे जाने से बचाने के लिये अपने प्राणों की बाजी लगादी थी। यही कथा इस काव्य में ग्रथित है। तीसरा काव्य युद्ध-क्षेत्र आहोम रमनी है। इसमें एक अहोम नारी मूलागाभरु के वीरत्वपूर्ण कार्य का वर्णन है। इनके पति को मुस्लिम सेनापति तुरबक ने धोखे से मार डाला था। इस कृत्य का बदला लेने के लिये उक्त नारी स्वयं युद्ध में आई और मानस्त्र सैनिकों से लड़ती हुई समाप्त हो गयी। यद्यपि बरबरुआ उचित ऐतिहासिक वातावरण प्रस्तुत करने में अधिक सफल नहीं हैं और उनके काव्य में आधुनिकता का स्पर्श जहां-तहां दीखता है फिर भी चरित्रों का चित्रण और विशेषत

नारी-पात्रों का चरित्र-चित्रण बड़ी योग्यता और सहानुभूति के साथ किया गया है। प्रवहमान वर्णनों के बीच बीच में मधुर और सुन्दर काव्यात्मक चित्रण भी मिलते हैं। ये ऐसे स्थल हैं जहाँ युद्ध-भेरियों की ध्वनि के बीच में पाठक कोमल और मधुर ध्वनि सुन सकता है।

देगदेमन के प्रकाशन के लगभग १५ वर्ष बाद तक असमिया साहित्य में कोई उल्लेखनीय काव्य प्रकाश में नहीं आया। इस शती के चतुर्थ दशक के मध्य में कर्बला में घटित हुसेन के दर्दनाक इतिहास को लेकर रघुनाथ चौधरी ने काव्य-रचना की। किन्तु हिन्दू होने के नाते रेगिस्तान में घटित दुःखद घटना का स्पष्ट चित्र कवि प्रस्तुत नहीं कर सका है। मासिक पत्रिका आवाहन (१९३९—१९४०) के अंकों में चन्द्रधर बरुआ के 'कामरूप-त्रियारी' तथा 'विद्युत-विकास' दो काव्य प्रकाशित हुये। पहले में बेउला की कथा है। स्थानीय अनुश्रुतियों के अनुसार बेउला आसामी नारी थी। अतः उसे 'कामरूप की पुत्री' कहा गया है। विद्युत-विकास में वृत्रासुर की कथा है। इन्द्र ने इस राक्षस पर वज्र से आघात किया था। इन दो काव्यों ने ही अपने रचयिता को एक उच्चकोटि के कवि के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। अनेक भावों और घटनाओं के चित्रण और उचित वातावरण की प्रस्तुति बरुआ की काव्य-प्रतिभा के सबल प्रमाण हैं। इनका पद्य-विधान बड़ा सरल और सरस है। शैली भावानुकूल रहती है। अन्तिम उल्लेखनीय कथा-काव्य दंडीनाथ कलिता का असम सन्ध्या है। उसमें कवि ने पिछली शती के आरम्भ में हुये आसाम की अहोम-सत्ता के दयनीय पतन की कहानी कही है। इसके ही परिणामस्वरूप स्वतंत्रता का अन्त हुआ।

ऊपर जिन काव्यों की चर्चा की गई है उनके कथानक अतीत से लिये गये हैं, चाहे उनका स्रोत इतिहास हो चाहे पुराण। इन सभी कथानकों में वीरता, युद्ध, जोखिम और प्रेम के चित्र मिलते हैं। यद्यपि आरंभिक काव्यों में धार्मिक भाव प्रधान था किन्तु महाकाव्य की समस्त विशेषताएँ उनमें भी मिलती हैं तथा रोमांस-काव्यों में भी मिलती हैं। किन्तु इस प्रकार के कथा-काव्य अब समाप्त होते जा रहे हैं। जिस प्रकार लघु-कथा आधुनिक साहित्य में महत्त्वपूर्ण हो गई है, उसी प्रकार आधुनिक कवियों की झुकान छोटे कथा-काव्यों की ओर हो गई है जिसकी विस्तार-सीमाएँ संकुचित हों। आधुनिक जीवन की द्रुतता ही इसका कारण है। पूर्व के अवकाश-प्राप्त युगों में पाठक लंबे काव्यों में भी रमता था। पर आज न तो वैसा अवकाश है और न सुविधा। आज के छोटे कथा-काव्यों के पठन में १५ मिनट से लेकर १ घंटे तक का समय लगता है। ये काव्य अपनी सामग्री इतिहास से, या परम्परा से अथवा सामान्य जन जीवन और उनकी परिस्थितियों से लेते हैं। विनन्द बरुवा के 'नजना वीरार मूर' (अज्ञात वीर का सिर) 'रंगामुआ वीर' (रक्त-मुख योद्धा), शैलधर राजखोवा का 'पाषाण प्रतिमा' (प्रस्तर की मूर्ति), अतुलचन्द्र हजारिका का 'सोहराब रुस्तम', थानेश्वर हजारिका का 'गोहाइन-नभरु' तथा अन्य अनेक ऐतिहासिक काव्य लघु-पीठिका पर चित्रित हैं। अतुलचन्द्र हजारिका का 'कौमुदी' तथा नीलमनि हजारिका के 'गतिमालो' में संगृहीत अधिकांश रचनाओं में दीन के जीवन का सरल और सहानुभूति पूर्ण लेखा-जोखा मिलता है। नवीन पीढी के नवयुवक कवि

गीति काव्य की ओर विशेष रूप से झुके हुये ह । फलत प्रबन्ध-काव्य का उन्नति रुक गयी है। आज के समय में गीति-काव्य की एक सवेग बाढ आ गई है। उसने कथा-काव्य के विकास को धक्का पहुँचाया है।

अन्त में कुछ शब्द वीर गीतो के साहित्य के सबध में भी कह देना आवश्यक है, क्योंकि यह भी कथात्मक गीता का एक शाखा है। अनेक लब वीर गीत ह जिनमें परम्परित, या पौराणिक पात्र ह । उन पात्रा का वीरता और कार्यों की कहानी शताब्दिया से चली आई है । शैला की दृष्टि स, उनमें वणन की स्पष्टता और द्रुतता है और नाटकीय शक्ति स ये सम्पन्न हैं । फूल-कुवरार गीत', 'मनी कुँवरार-गीत' 'जना गाभरुर गात' 'बरफुकनर गीत, 'चिकन सरियहर गीत' तथा कुछ और वारगीत आसाम के गावा में आज भा प्रचलित ह । प्रत्यक गीत में नायक या नायिका क द्वारा किय गय प्रम और वीरता के काय चित्रित ह । वार भावा क साथ-साथ दु खद तत्त्व भी इनमें सम्मिलित ह । इन परम्परामुक्त वार गीता के अनुकरण पर आधुनिक कविया ने भा जस लक्ष्मानाथ बेजबरुआ तथा चन्द्रकुमार अग्रवाल ने अनेक साहित्यिक वीरगीता का रचना का है । बेजबरुआ का 'धनवर रतना 'मालती' निमाती-कन्या' तथा चन्द्रकुमार की तेजिमला' वन कुँवरि,' (वनदेवी) जलकुँवरि' (पानी की परा) आदि रचनाए इस शैली के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जा सकती ह ।

श्री कृष्ण चरण बेहेरा

उडिया कथा-काव्य

ग्यारहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होने वाले उडिया साहित्य के इतिहास में कथा काव्य की एक लम्बी और उज्ज्वल परम्परा दृष्टिगत होती है। वच्छा दास का 'कलसा चौतीसा' उडिया का प्रथम कथा काव्य है जो १३वी शती में लिखा गया। इस में शिव और गौरी के विवाह का विनोदपूर्ण वर्णन है। उडीसा की वैवाहिक रीति रस्मों का इसमें सच्चाई के साथ अंकित किया गया है। 'चौतीसा' काव्य उडिया में बहुत लिखे गए हैं। इनमें ३४ पंक्तियाँ या छन्द होते हैं और प्रत्येक पंक्ति या छन्द के आरंभ में 'क' से लेकर क्ष तक के वर्णमाला के अक्षरों का क्रमशः प्रयोग होता है। कलसा चौतीसा इतना लोकप्रिय काव्य था कि पन्द्रहवीं शताब्दी में सारला दास ने अपनी विख्यात रचना 'महाभारत' में इसका उल्लेख किया।

प्राचीन और मध्ययुगीन उडीसा सभी भारतीय धर्मों की क्रीडाभूमि रहा है। इतिहास के विभिन्न कालों में जैन, बौद्ध, शैव, शाक्त, वैष्णव तथा अन्य धर्मों ने इस प्रदेश पर अपना प्रभुत्व रखा। इसके अतिरिक्त पुरी के भगवान् जगन्नाथ के आश्रय भूत 'जगन्नाथ धर्म' ने भी उडीसा के राष्ट्रीय जीवन पर शक्तिशाली प्रभाव डाला। इस जगन्नाथ धर्म ने एक मैत्री और सामञ्जस्यपूर्ण ढंग से सभी धर्मों का स्वायत्तीकरण कर लिया। इस लिए हमें जगन्नाथ के मन्दिर और उडीसा के साहित्य में इन सब धर्मों के चिह्न मिलते हैं। इस धार्मिक पृष्ठभूमि पर ही प्राचीन और मध्ययुगीन साहित्य का विवेचन समीचीन है।

प्राचीन उडिया-साहित्य के कथा-काव्य अधिकतर साम्प्रदायिक या पौराणिक हैं। शिव, राम, कृष्ण और जगन्नाथ की गाथाओं को लेकर खण्ड काव्य, काव्य और महाकाव्य प्रचुरता से लिखे गए। ऊपर उल्लिखित 'कलसा चौतीसा' का विषय-वस्तु शैव-सम्प्रदाय से सम्बंध रखता है और भुवनेश्वर तथा अन्य उडिया प्रदेशों में शिव की आराधना की तत्कालीन लोकप्रियता की ओर इंगित करती है। उडिया के प्रथम महाकाव्य 'महाभारत' के रचयिता सारला दास कटक प्रान्त की सारला चण्डी के भक्त थे। पन्द्रहवीं शताब्दी का यह सारला महाभारत संस्कृत महाभारत का तनिष्ठ अनुवाद नहीं है, क्योंकि सारला दास ने संस्कृत नहीं सीखी थी। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि वे जन्म से एक मतिहर थे और शास्त्र

की परम्पराओं से अनभिज्ञ थे। महाभारत की कथा उन्होंने अपने मित्रों और पड़ोसियों से सुनी थी और उसे उन्होंने अपने ढंग से लिखा। उन्होंने अपने 'महाभारत' में उन्होंने बहुत से ऐसे नये विषयों, दृश्यों और स्थितियों का उल्लेख किया है जो मूल में नहीं है। महाभारत की विषय-वस्तु को उन्होंने जो स्थानीय परिवेश दिया है वह ध्यान देने योग्य है। तत्कालीन सामाजिक जीवन, द्वन्द्वों और युद्धों का सजीव वर्णन, विभिन्न पात्रों का प्राणवन्त चरित्रांकन तथा कवि की सरल पर सशक्त शैली, ये 'सारला महाभारत' की कुछ विशिष्ट विशेषताएं हैं। 'सारला महाभारत' उस समय इतना लोकप्रिय था कि उसका अनुवाद बंगाली में किया गया और उसके कवि को बंगाल में प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इस महाकाव्य की बहुत सी पंक्तियाँ लोकोक्तियों का रूप धारण कर चुकी है और वे युगों से उड़िया जनता के अधरों पर रही है। उनमें से दो का उल्लेख हम नीचे कर रहे हैं --

"गंगा बोइले विधि, गांगी बोइलि विधि" (यह कहावत गंगा और शान्तनु की कथा पर आधारित है। गंगा ने जब शान्तनु से विवाह किया तो यह समझौता कर लिया कि वे उसे हमेशा 'गंगा' कह कर ही पुकारेंगे। जब कभी वे उसे 'गांगी' कहेंगे वह भाग जाएगी। यह कहावत उस समय कही जाती है जब कोई पत्नी अपने अनुकूल पति को जरा सी त्रुटि पर ही त्याग देती है।)

"झिंमिटि खेनरु महाभारत"

(इसका भाव बहुत कुछ अंग्रेजी कहावत 'स्टार्म ओवर ए टी कप' से मिलता है। कहानी यह है कि कौरव और पाण्डव एक ही आश्रम में शिक्षा पा रहे थे। एक दिन वे 'डू डू' खेल रहे थे जिसके परिणाम स्वरूप द्वेष और संघर्ष का प्रादुर्भाव हुआ और वह अन्त में महाभारत के प्रसिद्ध संग्राम में समाप्त हुआ।)

'सारला महाभारत' के अट्ठारहों पर्व 'दाण्डि' छंद में लिखे गए हैं जिनमें लय के रहते हुए भी पंक्तियाँ अनियमित हैं। यह वृत्त या छन्द उड़ीसा के लोक गीतों से अपनाया गया है। कुछ लोगों का कहना है कि यह संस्कृत के 'दण्डक' वृत्त से विकसित हुआ है। सोलहवीं शती के बलराम दास ने भी अपनी रामायण, जिसे 'दाण्डि' या 'जगमोहन रामायण' कहते हैं, इसी छन्द में लिखी। वह और कवि जगन्नाथ दास, जो उड़िया भागवत के कर्त्ता हैं, दोनों ही श्री चैतन्य के शिष्य थे, जो १५१० ईसवी में उड़ीसा में वैष्णव धर्म का प्रचार करने के लिए आए थे। पर ये दोनों कवि भगवान् जगन्नाथ के भक्त थे। बलरामदास ने जगन्नाथ का राम से तादात्म्य स्थापित किया है और जगन्नाथ दास ने कृष्ण से।

बलराम की 'दाण्डि रामायण' और जगन्नाथ दास की 'भागवत' सारे उड़ीसा में अत्यन्त लोकप्रिय है। सारला दास की तरह बलराम दास ने भी संस्कृत रामायण का शब्दानुवाद नहीं किया है। उन्होंने दृश्यों और परिस्थितियों के चित्रण तथा विषय-वस्तु के निर्वाह में मौलिकता प्रदर्शित की है। पर जगन्नाथ दास ने वस्तुतः संस्कृत भागवत का ही, सहज, सरल और आकर्षक शैली में अनुवाद किया है।

सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध उड़िया साहित्य के कवि-सम्राट् उपेन्द्र भञ्ज का समय है। अब तक का उड़िया-साहित्य किसी न किसी धार्मिक सम्प्रदाय से सम्बद्ध था।

राम या कृष्ण, सीता या राधा, उस समय के उड़िया काव्यों की नायक-नायिकायें थीं। पर उपेंद्र भञ्ज ने हमारे वास्तविक समाज से चरित्रों का आकलन करके निरी कल्पना के आधार पर गढ़ी हुई विषय वस्तु पर जब अपने कथा काव्यों की रचना प्रारम्भ की तो उड़िया साहित्य में एक क्रान्ति उपस्थित हो गई। 'लावण्यवती' 'कोटि ब्रह्माण्ड सुन्दरी' और 'प्रेम सुधानिधि' उनके प्रसिद्ध कवि-कल्पनात्मक कथाकाव्य हैं। इन सब कथा-काव्यों में कथानक का निरूपण और घटनाओं का आकलन बंधी हुई लीकों पर ही हुआ। उपेन्द्र भञ्ज ने पौराणिक और साम्प्रदायिक विषय-वस्तु लेकर भी कुछ कथा काव्य लिखे हैं, जैसे 'सुभद्रा परिणय', 'वदेहीश विलास', 'कला-कौतुक' आदि।

संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित होने के कारण उपेन्द्र भञ्ज ने अपने कथाकाव्यों में संस्कृत की तमाम काव्यशास्त्रीय पद्धतियों और अलंकारों का आश्रय लिया और इस कारण से वे जन साधारण के लिए दुर्बोध हो गए। संस्कृत साहित्य के कालिदास और श्रीहर्ष के पद चिह्नों पर चलकर उन्होंने प्रेम प्रसंगों तथा अन्य ऐसी ही बातों को बहुत प्रधानता दी। उस समय ब्राह्मण पंडितों तथा उड़ीसा के सामन्तवादी राजाओं के दरबार में संस्कृत साहित्य का बड़ा मान था। ब्राह्मण पंडित उड़िया भाषा तथा साहित्य की ओर आत्मदम्भ से पूर्ण, हीन दृष्टि के साथ देखते थे। अतः उपेन्द्र भञ्ज ने उड़िया काव्यों को संस्कृत काव्यों की कोटि तक उठा देने का भरसक प्रयत्न किया।

उड़िया साहित्य पर उपेन्द्र भञ्ज का जो प्रभाव पड़ा है उसे धोया नहीं जा सकता। उनके गीत और उनके कथाकाव्यों के अंश कहीं-कहीं अश्लील और दुरूह होते हुए भी अनेकों के द्वारा गाए और पढ़े जाते हैं। अभिमन्यु सामंत सिंहार, कविसूर्य बलदेव रथ जैसे बाद के बहुत से कवि उनकी रचनाओं से प्रभावित हुए थे।

सोलहवीं शताब्दी के मध्य में उड़ीसा ने अपनी स्वतन्त्रता खो दी और वह क्रमशः अफगान, मुगल और मराठों के शासन में रहा। पर इस पराधीनता में भी उड़िया साहित्य की प्रगति अवरुद्ध नहीं हुई। कुछ कवियों ने उपेन्द्र भञ्ज के अनुकरण पर कवि कल्पनात्मक कथाकाव्य लिखे और कुछ ने वैष्णव धर्म पर प्रधानतः राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं को आश्रय बना कर अपने कथा काव्यों की रचना की। पर अठारहवीं शती के उत्तरार्ध में कवि ब्रजनाथ बदजेना ने अपने 'समर तरंग' की रचना की जो प्राचीन और मध्ययुगीन उड़िया साहित्य का एकमात्र ऐतिहासिक कथा काव्य है। समर तरंग' में उड़ीसा की उस समय की सामन्तवादी रियासत ढेंकानाल के राजा और मराठा सूबेदार शिवाराम पंडित के युद्ध का विस्तृत वर्णन है। उड़िया पायकों (सिपाहियों) के साहस और वीरता का इसमें बड़ा यथार्थ चित्रण है। कवि की भाषा और शैली भी कथा काव्य की विषय-वस्तु के अनुकूल है।

उड़िया साहित्य का आधुनिक काल ब्रिटिश शासन में, उन्नीसवीं शती के मध्य से प्रारम्भ होता है। अंग्रेजी में शिक्षित होने तथा पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होने के कारण राधानाथ राय ने उड़िया साहित्य में आधुनिकता का समावेश किया। पर फिर भी उन्होंने परम्परा को नहीं तोड़ा। उन्होंने लगभग एक दर्जन कथा-काव्य लिखे हैं और

उनमें से बहुतों की कथा वस्तु परम्परा और पुराण-गाथा से ली गई है। इसके अतिरिक्त उन्होंने पुराने उड़िया छन्दों का भी पूर्ण बहिष्कार नहीं किया। उनकी मौलिकता उड़ीसा की प्राकृतिक रूपराशि के सजीव उद्वेलन में तथा उस समय के अफसरों के समाज के व्यङ्ग्यात्मक और यथार्थ निरूपण में है। इन विशेषताओं के कारण उनके 'चिलिका' और 'दरबार' (तत्कालीन भारत सम्राट का अभिषेकोत्सव) नामक खण्डकाव्य बहुत प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त उनके 'महायात्रा' (पाण्डवों की अन्तिम यात्रा) नामक कथा काव्य में राष्ट्रीय चेतना का भी परिपोष हुआ है। अतुकान्त छन्द में लिखी हुई उनकी यह कृति अपने काव्य-रूप में उड़िया साहित्य के लिए बिल्कुल नवीन है। बाद में गंगाधर मेहर, चिन्तामणि महान्ति तथा अन्य कुछ कवियों ने राधानाथ राय का अनुसरण करते हुये पौराणिक, ऐतिहासिक तथा काल्पनिक विषय वस्तु लेकर कथा काव्यों की रचना की।

पर उड़िया साहित्य का आधुनिक युग कथा काव्यों का युग नहीं है। यह गीतों और छोटी कविताओं का युग है। राधानाथ और उनके अनुयायियों ने कथा काव्य के अतिरिक्त बहुत से गीत लिखे हैं। पर इस समय उड़िया में कोई कथा काव्य नहीं लिखा जाता। यद्यपि पंडित नीलकंठ दास के 'कोणार्क' (कोणार्क पर), डा० हरेकृष्ण महताब के 'पलासी अवसाने', डा० मायाधर मानसिंह के 'कमलायन' जैसे कुछ कथा-काव्य लिखे गए हैं, परन्तु उनकी लोकप्रियता आज के पाठकों के बीच बहुत अधिक नहीं है।

श्री शान्ति आँकड़ियाकर

गुजराती में कथा-काव्य

कथा काव्यों का संक्षिप्त इतिहास

बारहवीं शताब्दी

गुजराती भाषा में प्रथम कथा काव्य सन् ११८५ में लिखा हुआ पाया जाता है। कथा काव्य का नाम है 'भरतेश्वर-बाहुबलि रास'। यों तो वह रास काव्य है किन्तु उसमें कथा काव्य के तत्व भी काफी संख्या में नजर आते हैं इसलिए हम उसे यहाँ उल्लिखित करते हैं। उसके रचयिता हैं जैन कवि श्री शालिभद्र सूरि। कथा काव्य का प्रकार ऐतिहासिक है दासों तीन कड़ियों का यह कथा काव्य वीर रस प्रधान और तेजस्वी शैली का एक उत्तम बृहद् काव्य है। काव्य की वस्तु है ऋषभदेव नामक तीर्थंकर के पुत्रद्वय भरत और बाहुबलि के बीच सेना के राज्य और धन के लिए हुई लड़ाई।

तेरहवीं शताब्दी

सन् १२१० में महेंद्रसूरि नामक जैन कवि और मुनि के धर्म नामक शिष्य ने जंबू स्वामि चरित्र नामक चरित्रात्मक कथा काव्य लिखा। धर्म जी ने उस काव्य में अपने गुरु के गुणों का वर्णन किया है। सन् १२३१ के करीब विजयसेन सूरि नामक एक जैन मुनि ने 'रेवतगिरि रासो' नामक कथा-काव्य लिखा। उस काव्य में गिरनार (जूनागढ़ सौराष्ट्र) पर्वत पर के जैन मंदिरों का वर्णन और उन मंदिरों के जीर्णोद्धार के लिए 'अपील' है। कथा काव्य धार्मिक प्रकार व प्रसार का है।

चौदहवीं शताब्दी

सन् १३१५ में अंबदेवसूरि नामक एक जैन मुनि ने 'समरा रासो' नामक एक कथा काव्य लिखा। इस कथा काव्य में संघपति और स्तवनकार समरसिंह का जीवन वर्णित है। कथा काव्य का प्रकार है चरित्रात्मक। सन् १३५६ में विनयप्रभ नामक जैन मुनि ने 'गौतम स्वामी रासो' नामक कथा काव्य लिखकर रासनायक गणधर गौतम के गुणों का वर्णन किया है। उस कथा काव्य में सर्व प्रथम गुजराती प्रकृति वर्णन नजर आता है। सन् १३६१ में असाईत नामक एक कवि का 'हंसाउली' नामक एक कथा काव्य मिलता है जो प्रायः विरह का एक अद्भुत एवम् रसिक काव्य रचा है। विरह के कथा काव्यों की सूची में 'हंसाउली' का नंबर प्रथम आता है।

पंद्रहवीं शताब्दी:

भक्त नरसी मेहेता के समकालीन भीम (१४१०) ने 'सदय वत्स चरित्र' नामक एक लोकप्रिय प्रणय कथा-काव्य लिखा। गुजराती भाषा मे 'सदय वत्सचरित्र' प्रणय कथा का प्रथम काव्य माना जाता है। उसमे सदेवत्–सावलिंगा नामक दो प्रेमी-प्रेमिका की प्रणय-क्रीडाए वर्णित हे। अब्दुर रहमान (१४२०) ने 'सदेशक रास' नामक एक वर्णनात्मक कथा-काव्य लिखा था। उस काल के इर्द गिर्द हीरानद नामक एक जैनेतर कवि ने 'विद्याविलासनो पवाडो' नामक एक पद्य वार्ता लिखी। जयशेखर नामक एक ओर जैनेतर कवि ने 'प्रबोध चिंतामणि' नामक सस्कृत ग्रथ के आधार पर 'त्रिभुवन दीपक प्रबध' नामक एक कथा काव्य लिखा। जयशेखर जी का यह काव्य लोकप्रिय रहा। अब तक के कथा काव्यों ने प्रजा और उसकी इन विविध भूतियो को अपनी तरफ उतना नहीं खीचा जितना कि भक्त नरसी (सन् १४१४ से १४८० तक) मेहेता लिखित कथा काव्य 'शामल शाना विवाह' जो भक्त नरसी का यह कथा-काव्य आत्मचरित्रात्मक काव्य है। भक्तश्री ने उसमें अपने पुत्र शामलशा की लग्न का वर्णन किया है। तत्कालीन समाज व्यवस्था की पार्श्वभूमिका पर यह काव्य आधारित है। भक्त नरसी की 'हारमाला' नामक काव्य धारा भी कथा काव्य के अन्तर्गत ही आ सकती है। सन् १४५६ में इतिहास प्रधान बृहत् काव्य (एपिक) कथा–'कान्हडदे प्रबध' की रचना हुई। उसके रचयिता है प्रसिद्ध पद्मनाभ। विसल नगर का नागर ब्राह्मण पद्मनाभ मारवाड के जाहलोरपति अखे राज का राज कवि था। 'कान्हडदे प्रबध' नामक कथा काव्य, अखे राज मे पूर्व के राजा कान्हडदे की पराक्रम गाया है। 'कान्हडदे प्रबंध' की वस्तु थोडे में यह है

पाटण में उस जमाने मे करणवाघेला नामक एक राजा राज्य करता था। उसका माधव नामक एक मंत्री था। किसी कारण वश माधव करणवाघेला मे नाराज हो गया और क्रुद्ध होकर दिल्ली के मुस्लिम बादशाह अलाउद्दीन खिलजी के पास जा पहुँचा। माधव खिलजी बादशाह से फरियाद करता है हे बादशाह! करणवाघेला ने मेरे भाई की पत्नी का हरण करके राज-पद का लोप कर दिया है। इसलिए आप अपने लश्कर को, कृपया मेरे साथ भेजिए। मै गुजरात को जीत कर आपके सुपुर्द करूगा। बादशाह ने माधव के साथ लश्कर भेजा। लश्कर को गुजरात में जाने के लिए कान्हडदे के राज को पार करना पडता था। इसलिए माधव ने कान्हडदे को सदेश भेजा कि बादशाह सलामत के लश्कर को अपने राज से होकर गुजरने की इजाजत दे। परन्तु हिन्दू धर्माभिमानी राजा कान्हडदे ने मुस्लिम सेना के सिपाहियो को अपने राज-पथ से होकर गुजरने की मजूरी नही दी। फलत यह सेना चुपचाप अन्य रास्ते से होकर गुजरात में मोडासा शहर की ओर चल पडी। मोडासा के उस वक्त के भूप राउत वतडे की यवन सेना से किसी कारण वश दुश्मनी थी। उसी मुस्लिम सेना को अपने राज पथ से होकर गुजरती देख राउत वतडे ने अपनी सेना के साथ उन सिपाहियो पर हमला किया। खूखार लडाई हुई। उस लडाई में राउत वतडे भी काम आया। राउत वतडे की मृत्यु के बाद मुस्लिम सेना, प्रजा पर घोर अत्याचार करती हुई पाटण की ओर आगे बढी। पाटण में इतनी बड़ी मुस्लिम सेना देखकर करण-वाघेला गुप्त रीति से चुपचाप भाग गया, उसकी रानी भी उसके साथ भाग गई। मुस्लिम

सेना ने पाटण एवं समस्त गुजरात पर अपना अधिकार कर लिया। गुजरात की प्रजा पर उन सिपाहियों ने घोर अत्याचार भी किये। फिर चांपानेर का अजेय गढ़ जीता। सौराष्ट्र के ऊपर भी अपना शासन जमा लिया। किन्तु सौराष्ट्र के राजपूत यों हार मानने वाले नहीं थे। सोमनाथ मंदिर के पास पुनः राजपूत और यवन सेना के बीच भीषण युद्ध हुआ। उस लड़ाई में माधव का मृत्यु हो गई। सौराष्ट्र के बाल वृद्ध और ठठ सिपा तक मुस्लिम सेना ने लोगों पर अत्याचार किये। दिल्ली लौटते वक्त उन सिपाहियों ने कान्हडदे के ऊपर भी हमला किया। किन्तु कान्हडदे की वीर राजपूत सेना ने अभिमानी मुस्लिम सिपाहियों को बुरी तरह पराजित किया। मुस्लिम सेना के सेनापति अलूखा के पास से कान्हडदे विख्यात सोमनाथ महादेव का लिंग, जो कि अलूखा ने सोमनाथ की लड़ाई के वक्त सोमनाथ का पुराना मंदिर तोड़कर निकाल लिया था, छीन लिया। कान्हडदे ने उस लिंग के पाँच भाग किये और उन्हें क्रमशः सौराष्ट्र के सोमनाथ में, बागड़ (बड़ौदा के इर्दगिर्द वाला प्रदेश) में आबू पर्वत पर, जालूर में और अपने राज महालय की वाड़ी में पुनः स्थापित किया।

'कान्हडदे प्रबंध' के दूसरे भाग में जालूरदुर्ग के रक्षक ममियाणा की शौर्य गाथा है। मुस्लिम सेना का पराजय के बाद अलाउद्दीन खिलजी ने स्वयं जालूर के दुर्ग के आजू बाजू अपने बाकी के लश्कर को जमा किया। किन्तु कान्हडदे के भतीजे सातल और उसके वीर साथी सिपाहियों ने अलाउद्दीन तथा उसके सिपाहियों की जरा भी परवाह न की और न दुर्ग को पराजित होने दिया। आखिर अलाउद्दीन ने एक युक्ति निकाली। अलाउद्दीन ने अपनी उस युक्ति में हिंदुत्व की अनुभूति की निर्बलता का सहारा लिया। उसने दुर्ग से बाहर से ही दुर्ग के अंदर आए हुए तालाब में गौ मांस के टुकड़े डलवाये। दुर्ग के अंदर वह तालाब ही एकमात्र जलाशय था। गौ मांस के कारण वह दूषित हो गया। किले के अंदर के लोगों को तथा बचाने का कोई भी साधन न रहा। फलतः राजपूतानियों ने जौहर किया। राजपूतों ने दुर्ग के द्वार खोल दिये और यवन सेना के साथ मठभेड़ शुरू की। तीन प्रहर की खूंखार लड़ाई के बाद सातल की मृत्यु हो गई

'शाह लोही सातल तणु
बाधु परवाणी वीरातन घणु।'

आगे चलकर 'कान्हडदे प्रबंध' विग्रह के बाद बारह साल की घटनाओं का वर्णन करता है। मुख्य वर्णन तो है कान्हडदे के पुत्र वीरमदे और अलाउद्दीन की शहजादी पिरोजा के बीच प्रणय का। पिरोजा ने संधि के लिए भी यत्न किये थे। वीरमदे की मृत्यु के बाद पिरोजा जीवन की नीरसता का स्वीकार करती हुई यमुना के जल में कूद पड़ी, और वीरमदे से स्वर्ग में मिलने के लिए फानी दुनिया छोड़ गई। सारी कथा अद्भुत रस और करुण रस से भरपूर है। सारी कथा में कई छंद और कई राग रागिनियाँ इस्तेमाल हुई हैं। गुजराती के प्रसिद्ध आलोचक स्व० के० ह० ध्रुव ने साहित्य अने विवेचन नामक अपनी पुस्तक में कान्हडदे प्रबंध के विषय में लिखा है "पात्र निरूपण और रसोल्लासन उत्तम प्रकार से किया गया है। पद्मनाभ का काव्य उच्च देशाभिमान

और प्रबल धर्माभिमान के आवेश से ज्वाज्वल्यमान है।..... पढ़ते पढ़ते हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।' आख्यान काव्यों के जनक भालण (१४५९—१५१४) ने कई कथा काव्य लिखे उन्होंने इतिहास पुराण वगैरह संस्कृत ग्रंथों की सहायता से रचनायें की। उन्होंने कई एक कथाकाव्य लिखे हैं नलाख्यान, दशमस्कंध, रामबालचरित, हरसंवाद, सप्तशती मृगी आख्यान, दुर्वासाख्यान, ध्रुवाख्यान, कृष्ण विष्टि, जालंधराख्यान, कादंबरी। भालण के कथाकाव्य करुण, शृंगार और वात्सल्य रस के उत्कृष्ट काव्य हैं। शैली का सर्जन मोहा है। भालण ने आख्यान काव्यों के सर्जन के लिए एक नई दिशा का अंगुलिनिर्देश किया। केशवदास (१४७३) ने भी 'श्रीकृष्ण लीला' नामक एक कथा काव्य लिखा। माउण (१४८०) ने 'रामायण' और 'रसमाग कथा' नामक दो कथाकाव्य लिखे। 'दूसरे' भीम (१४८५) ने 'हरिलीला षोडशकला' नामक एक कथा काव्य लिखा। भालण के पुत्र द्वय उद्धव तथा विष्णुदास ने भी रामायण की घटनाओं के आधार पर कथा काव्य लिखे।

सोलहवीं शताब्दी:

सोलहवीं शताब्दी तो कथा काव्यों की, गुजराती भाषा और साहित्य के विकास की उत्तम शताब्दी है। इसी शताब्दी में गुजराती भाषा स्थिर और विकसित हुई। नाकर (१५१६६८) ने भी कुछ कथाकाव्य लिखे, जो इस प्रकार हैं दस महाभारत पर्व, नलाख्यान, ध्रुवाख्यान, हरिश्चन्द्राख्यान, अभिमन्यु आख्यान, चन्द्रहासाख्यान, लवकुशाख्यान, मोरध्वजाख्यान, वगैरह। 'नाकर के कथाकाव्यों की शैली सरल, लाघवयुक्त, और वेधक है।' मुख्य बात तो यह है कि वह जाति से बनिया था, इसलिए उसने अपने आख्यानों को गाने और उपजीविका पाने के लिए एक नागर ब्राह्मण को अपना साथी बनाया था। उन सब कवियों के कथाकाव्य पौराणिक प्रकार के हैं; और उनका मुख्य हेतु धार्मिकता का प्रचार व प्रसार, अथवा शौर्य गाथा गाने का है। किन्तु सन् १५५० में मधुसूदन नामक एक कवि सांसारिक विषय को लेकर एक कथा काव्य लिखता है। पुरानी लोककथा के आधार पर उसने 'हंसावती-विक्रमकुमार चरित्र' नामक एक लोक कथा काव्य लिखा। इसी अरसे में गणपति नामक एक कवि ने 'माधवानल कामकंदला दोग्धक' नामक प्रेम संबंधी काव्य लिखा। नरपति ने 'नंदबत्रीशी' नामक, तथा वासु नामक एक कवि ने 'सगालशाख्यान' नाम से एक कथा काव्य लिखा।

सत्रहवीं शताब्दी:

सोलहवीं शताब्दी के विकास के आधार पर गुजराती भाषा में सूक्ष्म-भाव-निरूपण होने लगा। इस शताब्दी को 'प्रेमानंद शताब्दी' भी कह जा सकता है—चूंकि प्रेमानंद ने इसी शताब्दी में ही गूर्जर साहित्य को भारतीय साहित्य के समक्ष रखा। विष्णुदास (१५६८—१६१२) ने कुल मिलाकर करीब चालीस कथा काव्य लिखे। उनमें मुख्य हैं 'मामेरु' और 'हुंडी'। दोनों कथा काव्य भक्त नरसी के जीवन की घटनाओं पर आधारित हैं। पार्श्व भूमिका है भक्तों के जीवन में अलौकिक चमत्कार। शिवदास (१६११) ने 'जालंधराख्यान' वगैरह दस पौराणिक आख्यान तथा 'कामावती' और 'हंसा' की लोककथात्मक पद-कथाएँ लिखीं। प्रथम समय ही 'गूर्जर भाषा' का प्रयोग करने वाले' विश्वनाथ जानी (१६५२)

ने प्रेम पच्चीसी', 'ओखालु', 'सगालशा चरित्र' नामक कथा काव्य लिखे। गुजराती कथा काव्य के कवि शिरोमणि तो हैं प्रेमानद (१६३६—१७३४)। उन्होंने कई एक कथा काव्य लिखे दशमस्कध नलाख्यान ओखाहरण, मदालसाख्यान, सुदामा चरित्र रणयज्ञ दाणलीला, अभिमन्यु आख्यान, वामनचरित्र, प्रह्लादाख्यान, सुधन्वाख्यान मामेरु, नरसी मेहता के बाप का श्राद्ध, नरसिंह मेहता की हुडी, हारमाला, डागपाख्यान, सपूर्ण भागवत, रामायण, रेवाख्यान महाभारत, अश्वमेध वल्लभझगडा, अष्टपक्षाख्यान, नागदमन, द्रौपदीहरण। उन्होंने ये सभी कथाकाव्य गुजरात प्रदेश की सामाजिक पार्श्व भूमिका को ध्यान में रखते हुए लिखे हैं। सभी के पीछे गुजरात के नर-नारियो को परितृप्त करने वाली अनुभूति है। आज भी गुजरातियो पर प्रेमानद का प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। मगल मालिक प्रसग, श्राद्ध आदि पर्वों पर प्रेमानद के ही कथा काव्य या कथा काव्यो का कुछ अश गुजरात के हर छोटे-बडे शहरो और गाँवो में गाया जाता है। पौराणिक पात्रो का गुजरातीकरण करना प्रेमानद के काव्यो का विशेषता है। प्रमाण विवेक और सुरुचि का क्षति भी जगह जगह उनके कथा काव्यो में नजर आता है। किन्तु उनके काव्यो की माहकता, चिनशक्ति आदि विशेषताए उन दोषो को अपने में पूरा तरह से छिपा लेती है। और लोगो को ऊबने नहीं देता। प्रेमानद के बड़े शिष्य थे। उनमें स्त्री शिष्याये भी शामिल था। वे सभी आख्यान के रचयिता थे। प्रेमानद खुद उच्च कोटि के कवि थे, और कवि के पिता भी। अपने सभी शिष्यो को उन्होंने ही कवि बनाया। कवि वल्लभ जो कि प्रेमानद का पुत्र थे प्रेमानद के शिष्यो के सबध में कहते हैं —

छे नव दास अने भई चार ज
रत्न भला द्वय शिष्य कहावे
छे भव राश अने थई वाज
रत्न मत्या कय दिव्य वहावे
छे वीर पचम जो त्रिणये अण
नद चथुरथ नाम सुहाव
छे वीर वल्लभ शे भणिये गण
एक ज प्रेमनु नाम पुहावे।

प्रेमानद के शिष्य द्वारकादास (१६२४) ने बारमासा 'वनलाला 'दाणलीला' आदि कथा काव्य लिखे। प्रेमानद के शिष्य हरिदास न विवाह (१६६०) तथा भारतसार (१६८१) नामक ना कथा काव्य लिखे। वीरजा नामक एक प्रेमानद के शिष्य ने कामावती कथा (१६८६) आदि कथा काव्य लिखे। प्रेमानद के कावी क ई शिष्य थे, और सभी ने कथा काव्य लिखे। किन्तु सामग्री के अभाव में म उनके नामोल्लेख करने में असमर्थ हूँ।

प्रेमानद के शिष्यो के सिवा मुकुन्द गुग्गो (१६६५) न भी 'मकरामान और ईश्वर विवाह नामक कथा काव्य लिखा। नाकर (१६६६—१७६६) न भी पौराणिक वस्तुओ के आधार पर शिव पुराण खड, 'धर्म दृष्टि', सिहासन बत्तीसी' वगैरह कथा

काव्य लिखे । 'सिंहासन बत्तीसी' को हम अलौकिक कथा काव्य भी कह सकते हैं। 'मदन मोहन', 'दिन चरनी वार्ता' वगैरह उनके शृंगारिक श्रेणी के कथा काव्य हैं ।

अठारहवीं शताब्दी :—

अठारहवी शताब्दी का सबसे अधिक प्रकाशित कवि प्रेमानंद का पुत्र कवि वल्लभ है । उसने 'कुन्ती प्रसन्नाख्यान' (१७२१) तथा 'यक्ष प्रश्नोत्तर' (१७२५) आदि बड़े-बड़े कथाकाव्य लिखे । अपने पिता की तरह यह भी बड़े रसज्ञ और पहुंचे हुए कवि थे । उनका हर कथा काव्य अलग अलग रस के प्रकार पर रचित है । जितने रस-प्रकार हैं उतने उसके कथा काव्य है । हम उसके कथा काव्य 'कुंती प्रसन्नाख्यान' के कुछ पृष्ठों को परिशिष्ट में देखेंगे । उस आख्यान के मंगलाचरण में उन्होंने 'पृथ्वीराज-रासो' के प्रसिद्ध शाश्वत कवि 'चंदवरदाई' के ऊपर साहित्यिक प्रहार किये हैं । उस प्रहार का साहित्यिक मूल्यांकन हो सकता है । इसलिए मैं उसे पीछे उद्धृत कर रहा हूं । काठियावाड़ के भोजा भगत (१७८५) ने 'चेलैयाख्यान' 'छोटा भक्तिमाल' आदि कथा काव्य लिखे ।

उन्नीसवीं शताब्दी

गिरधर (१७८७–१८५२) ने 'रामायण' और 'राजसूय यज्ञ' नामक दो बड़े कथा-काव्य लिखे । महा काल के अंतिम कवि भक्त श्री दयाराम (१७७७–१८५२) ने 'अनुभव मंजरी', 'रसिक वल्लभ' नामक कथा काव्य लिखे ।

बीसवी शताब्दी:

दलपतराम डाह्याभाई त्रवाडी (हिंदी तिवारी) (१८२०–१८९८) ने 'फार्बस-विरह' 'वेनचरित्र' आदि कथा काव्य लिखे । केशवलाल ह० ध्रुव (१८५९–१९३८) ने 'मेघदूत' का कथा काव्य में भाषान्तर किया। नानालाल दलपतराम कवि (१८७७) ने 'वसन्तोत्सव', 'जया-जयंत' नामक कथा काव्य लिखे । उमाशंकर ने 'उत्तर रामचरित्र' नामक एक कथा काव्य का भाषान्तर संस्कृत से किया है ।

इसके सिवा गुजराती साहित्य की एक शाखा चारणी साहित्य भी है। चारणी साहित्य को आज तक साहित्य की पुस्तकों की सूची में स्थान नहीं मिला । स्व० मेघाणीभाई ने पुराने चारणी साहित्य को इकट्ठा किया और उसे साहित्यकारो के समक्ष रखा। तभी से लोग और विद्वान चारणी साहित्य की ओर मुड़े हुए है किन्तु अभी तक चारणी साहित्य के अध्ययन को युनिवर्सिटी और कालेजों में स्थान नहीं मिला है—यह खेद की बात है । राजाओ के आश्रित रहते हुए चारणो ने साहित्य सेवा की है । उनकी यह एक पुरानी परंपरा है । खास करके यह साहित्य शौर्य का साहित्य है, फिर भी उस में कला के उच्च तत्त्वो के दर्शन होते हैं । चारणी साहित्य का प्रकृति-वर्णन उम्दा होता है। चारणी साहित्य का वाहन है दोहा । दो लाइनो के छंदबद्ध दोहो में भाव और भाषा की सूक्ष्मता हम देख सकते है । दोहे बोलने की भी प्रकार विशेष की एक रीति है जिसे चारणादि के मुँह से सुनने में मजा आता है । और उसके उच्चारण हमारे हृदय को बेधते हुए निश्चित ध्येय तक पहुँच जाते हैं । भविष्य में मैं गुजराती चारणी साहित्य के बारहमासा काव्यो का परिचय' नामक एक लेख लिखूँगा जिससे कि पाठक उस साहित्य का उचित रस पान

कर सकें। चारणी साहित्य में भी दोहाबद्ध कथाकाव्य पाये जाते हैं। यहाँ मैं चारणी साहित्य के सिर्फ प्रणय कथा काव्यों का सूची देता हूँ 'सती उजली मेह जेठवो', 'वीणी दिजाणद', 'लाखणसिंह माणेक दे', 'ऐमन वालो अने सती साई', जेसल—तोरवत्त', 'रा० नवघण', ढोला मारु', 'नागवाला—नागमती, 'हलामण जहेवो—सती सोन', 'जगदेव परमार', 'मालो अने नाग दे 'देवल-देवरो 'खोमरा अने खमानण, और विल्वमगल—सूरदास' वगैरह।

परिशिष्ट

प्रथम हम गुजराती के तीन विद्वानों की कथाकाव्य की व्याख्या देखेंगे

१ स्वाभावोक्तिमय काव्य।

—मणिलाल न० द्विवेदी।

२ वर्णन काव्य।

—ब० क० ठाकार।

३ आख्यानात्मक कविता।

—रजितलाल हरिलाल पंडया।

अब हम वल्लभ कवि के 'कुंती प्रसन्नाख्यान' के मंगलाचरण और आख्यान के कुछ अंशों को देखेंगे —

श्री जगदीश्वराय नम

वल्लभकृत

कुंती प्रसन्नाख्यान

प्रणम्य प्रतिघजित।

कवित्त

चदे छदबद्ध रच्यो, रास आश आणी उर,
प्रेमानद आगे मद, गति तेनो लेखिए,
भारत समु प्रमाण, रासाना तमासा भाला,
करयां भारत बे-त्रण, आरत उवेखिये,
पृथ्वीश प्रशसा कयी, मान शेनु मोछु तेमा ?
प्रेमानदनी कविता, सविता शी पेखिये,
ब्राह्मणथी भाट थया, वशज विधिना आतो,
कविश्वरना पिताथी, चद मद देखिये ॥१॥

भारती भक्त

विचारो वर दियो जे, देवीभक्त दुनिया के,
भोग आपे अजाकेरो, डरे शार्दूल थी;
मदिरामा मस्त बन्या, जो जो चर्चा चतुर,
लाछन लगाड़ी लई, रीझ्या रक्त फूल थी;
आड करी अदो कह्यु, देवीए सरष्ट दद्यु,
प्रसन्न थं पूरेपूरी, वेधी अंग मूल था;
पतराखी बानाकेरी, वंदियो त्यारे बनाव्यो,
भारतीना भक्तने ते, भग्ने किया मूल था?
पूजा करता परोढे, चतुरानी चूक पडी,
यत्न उपाया आई, भजी गया भक्त ने;
चडी डडी पडी नरि, मटी खडी मारवा थी,
आर्यावर्त नर्त तोडयो, जाहेर छे जक्त ने,
भारतीए भक्त पेलो, जाणीने लीछो जीवाडी,
आरती अतिशे पूरी, बनी अनुरक्त ने;
चद थई गयो मंद, अर्थे राख्यो जीवतो ते,
भारतीना भक्त आगे, कोण लेखे शक्त ने ॥३॥
प्रेमानंद पिता मारा, भारतीना पूरा भक्त,
वंदियाने वाघी घंटु, लखे रासा लाखने,
प्रेम ने आनद बन्ने, लांछन विनानां लब्ज,
कहो मोटा कोण त्यारे, साची दई साखने !
सरस्वती सूत थया, पछे नव पूज्या कोई,
देव देवी रह्या सूई, वली थया राखने;
स्वधर्म ए साचो मान्यो, परधर्म पूज्यो नहीं,
भारतीना भक्त थतां, माखी न माखने ॥४॥

रसिका रसिक

कवि जेनी कविता, निकंदन तेनु करान्यु,
पांच सात नारी भेली नर निपजावीयो;
तोड्या शब्द छोड्या नहि, जोड्या कर तोय भूड्या,
रूड़ा रसिके न जोयु, भाव शो भजावियो ?

पेट काजे वेड करी, डेढ तेय पोची नहि,
भट भूडी मणकाले, देश आ तजाविओ,
भवरी झवेर जाण, करु दा मुक्ते वखाण,
मद चद लची चद-छद थी सजावियो ।।५।।
मारे भार भाट केरो, वधतो पधारी दीधा,
चदना ता छद भाव्या, छन्द छे रसिकने,
अवगुण नव आण्यो, एक गुण शुद्ध जाण्यो,
वखाण्यो पछार्यो पथ, मानी नहि छावने,
रत्ननी परीक्षा करी, जल्न थकी जालवीने,
एव जेज जोई नहि, ठाठ कह्यो ठीकने,
एव देश जन्म देजे, रसिकनो पास ज्याही ।
कथीर कचन कर, नाली मूक बीकने ।।६।।
छि क गूजर ! छे छि क, रसिक न साथ रास्यो,
प्रतापी प्रभाकर ने, पिछाण्यो न कोईए,
छद प्रेमकेरा छणा, पदमा तो शेनी मणा,
दुहा ने चापाई छणी, सारा बध जोइए,
चार जणे जेह कर्यु, एक जणे कयु आ तो,
एवु नव जुओ कोई खाते खरु खोइए,
मगा मूढ निलज सो, पेटे पडिया पाषाण,
गूजरात शुन्य थयो, शु रसाल वोइये ? ।।७।।
एक निस्ठावान नर, एक नारी पूज्य धारी,
ते वडे नीपाव्या मोटा, लक्षावधि देवत्ता,
कयु रूडु सव फेरू, निम्नतु न नाम सुण्यु,
तार्या राय ना वूराडया ग्रथ पेंथ सवता,
दुखियाना दुख टाल्यॉ, सुखियाने कीधा सुख,
कविनॉ मुकाव्या मान, चनोडी ने देवता,
अरसिक जाणे कशु, रत्न पड्यु रक हाथ,
नि शकी ने नाखी सर्वे, मृत्तिकाथी रवता !! ।।८।।
चदे एक रासो लख्यो, सवा नदा पूर करो,
एक पुस ना हिसाबे ? दुनियानो गह छे !
रासा जेपड़ा बृहत पूरमॉ गयी प्रधिक,
अण ग्रथ लख्या प्रेमे, कोनी वाह वाह छे ?

मुत मारा जेवो कवि, रवि जोई झांखो पड़े ।
चंदनो ते छंद कगो ? मद सौ उजाह छे !
ठामी ठोकी ढाले वाई, कवीश्वर वल्लभ के'
मंद चद, प्रेम पूर, ग्रानद ग्रनाह छे । ॥९॥

प्रतिबंध

एवे ग्रवनवो एक, शब्द त्यां ग्रुत्पन्न थया,
बोलीश मा, बोलीश मा, बूरी वात चंदनी;
शब्द समजाग्रो मने, दिदार न दर्ग्यो कने,
जोयु ग्राम तेम झत् वारं गी बुलंदनी;
सविता शी कविता त्यां, करमाने लाग्यो कवि,
वली पाछो शब्द थयो, छन झाझी छंदनी;
निदंक पणु नकामु, कामनु न रज ए तो,
कवीश्वर ! चेतो चित्त, मागति ल्यो मंदनी ! ॥१०॥
सारू तमे धारो तेने, मन गम्यु मान ग्रापो,
निंदा करो बीजा केरी, ए ते कोनो रीत छे ?
तमारे कत्छे न सारुं, कोई कदी मानवानु,
न सारू संताई रहे, न्याय शास्त्र नीत छे;
कारमी करामत ए रूड़ा थई, राखो रहदे,
जुग्रो मारा वेण केरी, केपी तो प्रतीत छे;
जगत छे झत्रेरी, वेरी नथी सारा केरू कोई,
नकली ग्रावे जो पय दधि नवनीत छे । ॥११॥

कवीश्पर कोप

कोण एवो बांध करे, प्रति बंध करवानो ?
ग्रंध ! जाणनो नथी शु, कविराज राज छे !
प्रेमानंदना प्रतापी, सुत सलक्षणा ग्रमे !
बोध कोण करे तेने ? मानवानी ना ज छे !
शु ग्रमो नव समजु ? गत वतावानु गजु !
भजु नव भली वाणी, ग्रारंभायु काज छे !
महान मतीश ग्रमे, कपीशना कान कापु,
शीख दे तेने तो सत्य, लाज लाज लाज छे ! ॥१२॥

दर्शन दे आवा आंही, जोयु माल के तो माँही ?
वाद वदी जीतो, जाय, लड़वा हु आखडो।
विचारी जो वान मन, लाछन धारी छे चद,
प्रेमानद प्रभाकर, बादुर दिसे वडा,
चदनी छे सोल कला, ते पूर्णिमा होय ज्यारे,
सहस्र वन्दि छे कला, सूय सामा शे अडो ?
आत्मा जीवतर केरी, कमाई तो छे एक रासो,
आसो नासो वालवायी, कदी ना पूरा पडो !! ॥१३॥

पत्र पतन

कथ कवीश्वरे एम, रज रक्षो वर्मे नव,
तदा पड्यो पत्र एक, आकाश था आवीने,
वडवा वाणीश्वरशु, कोण आवी ऊभो रहे,
फेरवे फगावे फट, भला वेश भाविने,
पास आवा पडयो पत्र, कवीश्वरे लीधा तत्र,
तत कर साही वाच्यो, हप उपजावीने,
वाच तामा वीरों थया, (नव) प्रत लखनार केरा,
फेरा फरे काल तेने कोण जुमे तावीने। ॥१४॥

पत्रार्थ

आगम विरुध्य आशो, मंगला चारज करे ?
आचारज तारा कोण ? अविधा अर्वी तने।
मगलमा दगल छु, जगल जटिल जवा।
तिमगल जेवा गव, व्यथ धारवो मने,
वधे विश्वमध्य चद निधनाम तेनु भणे,
मद मति मूढ थने, नासतो न शे थने ?
शोम माने मारी नहीं, भीख मांगो भटकोश,
रीसता न भटकोश, रासे नव का थने ? ॥१५॥

पत्रोत्तर

गानाना षडानन, पचानन त्रयानन,
चतुरानन जाण न, कविराज राज छु।

सहस्त्रानन लेखक, उवेखक वल्लभनो,
दुल्लभ न दाव मम, दीठे पतराज छे;
व्याघ्रानन, अजानन, वक्र वक्त्र करी नांखु,
साखु नरि साची वात, लेखकने लाज छे!!
विष्णु जिस्णु रूपधारी पाखा आवे कदापि,
तदापि छेडु न टेक, विवेकनु काज छे! ॥१६॥
चंद मद, प्रेमानंद, उपरि तदुपरि छे,
करी ज करी ते वात, विश्वमां विख्यात छे;
तुलनाए तुला करो, कविता कवीश्वरोनी,
सविताशी शुद्ध दर्श, कोनो काली रात छे?
मंद चंद चढे कदी, प्रेमानंद पूर्ण आगे,
बने वल्लभ गुलाम, जोवा कोनी मात छे?
बोवड़ाव्ये बोए, नही, छलाव्याथी छले नहि,
डराव्याथी डरे नहि, अडग आ गात छे। ॥१७॥
मुओ पृथ्वीराज अरिहाथ, ए प्रख्यात वात,
कर्ण केरी एवी ख्यात, जगतजन जाण छे!
पृथीराज रासो सुने, कर्णनु चरित्र वांचो,
(जो) रासान्ते तमासो चढे,(तो)कवि व्यर्थ वाण छे;
कर्यु लाबु पिंगल, अमगलनी वात जेमां,
एमा कवित्व कशु छे? अन्न तेना प्राण छे;
भूली जैशु ए शु अमे, देवना डराव्या थकी?
छिःक पत्ररेखकने, वल्लभ प्रमाण छे! ॥१८॥
पचायतन पूजु हु, तेनु फल आज मल्यु,
पूज किये काज त्यारे, तोडु फोडु देवने;
जूठी पान दे जणावी, मान्य करावाने काजे,
कवीश्वरने कपावे, साधवी शी सेव ?
एक कही ऊठयो आप, प्रेमनो पूरो प्रताप,
देव कर्या टोले तर्त, भागी नाखी भेवने;
प्राणीमां पाषाण ग्रही, वाणीमा विरोध कही,
पाणीमा पलाली दई, शिर अभो एवने।

पिता दर्शन

बालार्कसम सुखद, दुखद अरिगण के--
रो, हेरो हरो हेलामा, सहस्त्र किर्णाल आ,
कविकुल कुमुद बिडाई गया बावरा शा,
पडी गया भाखा थया, दरश्यो रसाल आ,
कवीश्वर ईश्वर रूपी, स्वरूपी कमल जे,
निमल निशक खिल्यु, हरख्यो मराल आ,
प्रभाकर पूण जोई, नमे पद्य एक वार,
(पद्म)
कवीश्वर नम्यो तम, जाणे नम्यु नाल आ। ॥२०॥

पिता प्रश्न

कवीश्वर कोना पर, कोपनो आरोप कर्यो,
पाणिमा पाषाण कशो, देव दीन शे दीसे ?
क्षमा नव लाधे खोली, रमाए रमाड्या, नहि,
तमा तेनी नथी तारे, जाणु हु वशा वीश,
सेव साधो देवकरी, धन्य धन्य हे धीमान !
धारण धारी जे भावी, कवि की किये भिषे ?
पूज्यनी आ पेर थाशे, कप काया मध्य व्यापे,
कारण कहो धो मुन, आपी चूक्या छु रीसे ! ॥२१॥

कवीश्वरोत्तर

'प्रेमानद पिता आगे, चद मद चातुरीमा,'
एवु वेण सुरा देण, सुणी देव कोपिया,
आकाशवाणी करावी, पत्र आ पठाव्यो पछे,
देव के छे वध चद, विश्वमा ए ओपिया !
कारण बताव्या कक, तारणवाला ते नहि,
धारण कराय केम, निभर आरोपिया,
एकना अनेक आप्या, उत्तर उठावदार,
मद थया चदशा ते जोई भार लोपिया। ॥२२॥

समाधान

प्राचीन पडितने न, अर्वाचीन पोची गणे,
प्राचीन ते प्राचीन छे, अर्वाचीन नामना;
प्राचीनो गया जे पथ, विघ्न नड्या तेमने जे,
अर्वाचीनोने न नडे, तेणे तेनी नामना;
मार्गदर्शी थाय जहे, नि:शंक वडेरा तेह,
चद मान्य नि:सदेह, व्यर्थ तारी कामना;
रसाला रसिला वेण, श्रोता वक्ता सुखदेण,
रासाकेशं जेह केण, थी नथी दामना ।२३।।

पूज्य प्रेम

अंतर अनेक आप्या, प्रश्नोत्तर पूरे पूरां,
तोय अमुझाय अग मानी मान राखवा;
केवु नथी काई हवा, बोलवु बाढम कयु,
रह्यो दतमा तो कोप, चपशीने चाखवा;
पेरे पेर प्रणमु हुं, जाव जाव जाव तमे,
मानवानो काई नथी भंडू लाग्या भाखवा;
तमे ने तमारा देव, कुशला रो मारी कृपा,
वठावो न वल्लभने, खोता दाव दाखवा ! ।।२४।।
प्राचीन वासुदेव जे, कारागृह कोही रह्यो,
नवीन वासुदेव ते, काढियो कृपा करी;
कहोडने डूबाडयो तो, जो जनके जलमांय,
अष्टावक्र शक्र समो, नवल गयो डरी ?
कुंजर छे वृद्ध ने अ, नूतन जन्मे छे हरि,
कीर्तिवंत कोणतेनी, तुलना करो जरां ?
थोथा जेवां पोथां भाली प्राचीनोतणां हुँ वंदु,
कचरी कवीश जीभ, शोणे जाउंना मरी ? ।।२५।।

।।इति मगलोचार।।

× × × ×

अजात अरिस्तब्धावस्था

दु:ख दिल धारी भूप, बदलायो स्वरूपथी,
जड़ता सजड जाते, व्यापी अंगोअंगमां;

प्रस्वेदना बिंदु-सिंधु-सम व्याप्या विश्व अंगे,
डूब्या अनारु ज तेमा, जबदस्त जगमा,
अवनवु थयु एक, सुकोमल देहे दर्शा,
रोम कतक समान, वागिया अमअमा,
कोक माने ए रोमाच, आच अद्भूत केरी,
साच नव माने कोक जात धारी घ्यानमा ॥२६॥
बोलता बोलाय नहि, बोले त्यारे बाध करे,
गद् गद् वाणी वेगे, देवी रूप धारीने,
हर्षडाट अगोअगे, गभडाट गणे कोण ?
चभडाट चित्त विषे, कष्ट दे सभारीने,
दु खना प्रकाश थकी, नेत्रनो विकास हवो,
अवकाशे अनुभाव, रह्या ना विचारीने,
जोई एवी मोई सारी, दु ख देवाकेरी वारी
करवा सचार थयु, मन ता मचारी ने ॥२७॥
तक मे विनक करे, घर थके ध्रूजे वली,
अतर न स्थिर थाय, अलभ्यता आनता,
आम क्रु कार्य थाय, तक त्वरा करे अति,
टाल भ्राति शाति सव, सुखने तजावता,
सभारी उत्कप हृप थाय जाय विसराय,
हाय हाय ! वदी, नमे, भू डरु भगावता,
हाव भाव एवा करी, त्या सचारी भाव दाख,
लेवा लाग्यो देवा लाग्यो, अद्भुत सजावता । ॥२८॥
पिडमध्य पेशी गयो, प्रति क्षण साथी साथ,
सपूर्ण थया त्यारे, स्मरी आव्यो देवता,
तक सिद्ध थयो तत, युधिष्ठिर वधा वगे,
पाथ ! सरजा तेत्र तारो, गधव जे सेवता,
वलो वदी स्पष्ट थया, कृष्णा छरे कष्ट अति,
चार बधुनणो गति, अरेरी अवेवता,
पार्थे तु रक्षनु स्मण, थयु य ते आवी क्रमा,
उपज्यो अद्भूत लहा, ज गधव देवता । ॥२६॥

× × ×

ग्रंथ गुण

ग्रंथ पंथ दक्ष पड्या, ते तो तरी जाय निश्चे,
एक वर्ण अद्भूतनो, तारनार तार छे;
रसज्ञना धरी वाँचो, आधि व्याधि वाधा नासे,
अरसज्ञ लोकने आ, मारनार मार छे!
पीयूषनुं पान करे, झाझु जीवे जन तेह,
ग्रंथामृते प्राशे कदी, सारनार सार छे;
गुणवान् ग्रंथ एवो, सेवो शांत पणे सर्व,
गर्व कविकेरो गले, वारनार वार छे। ॥२१५॥

सवैयो

वल्लव ग्रंथतणो पथ वल्लभ, वल्लभ साल रसाल वखाणुं,
सत्तर सात अने वली सात ज, शात सुख्यात प्रभा हुं प्रमाणुं;
अद्भूत अब्धि अखंडित मंडित, क्षार कलंकित वारि न जाणुं,
वल्लभ एह रसज्ञ तणे उर, दुल्लभ अज्ञ, न सुल्लभ आणुं ॥२१६॥

॥ इति संपूर्णम ॥

श्री पल्लेकोण्डा वेंकट सुब्बय्या

तेलुगु साहित्य में कथा-काव्य

भारतीय साहित्य में ही नहीं, बल्कि विश्व-साहित्य में भी, कथा काव्य का स्थान महान् माना जाता है। इसकी इतनी विशिष्टता और विलक्षणता क्या है? इस पर हम यहाँ विचार करेंगे। एक ओर तो इसकी उपयोगिता प्रसिद्ध ही है। मन की सुकुमार भावनाओं को सुगमता के साथ व्यक्त करने की इसकी उत्तमता किसी से छिपी नहीं। अतः सब देशों और भाषाओं के साहित्य के प्राचीन एवं नवीन आचार्यों ने इसे प्रेमपूर्वक अपनाया और इसका यथेष्ट आदर किया। रमणीयता भी इसकी लोकप्रियता का एक और कारण है। चाहे जो हो, अल्प समय में स्वल्प मूल्य पर अगर कोई मनोविनोद का समुचित साधन बन सकता है तो एक मात्र मनोहर कथा-काव्य ही है।

नवीन वस्त्र पर जिस प्रकार रंग गहरा चढ़ता है, उसी प्रकार बालक के निर्मल चित्त पर भी संस्कारों का प्रभाव अधिक पड़ता है। इसीलिये कहानियों के बहाने बच्चों को नीति शास्त्र का पाठ पढ़ाना भी और उनको जीवन की शिक्षायें देना भी एक रिवाज सा हो गया है। क्रीड़ासक्त और भोग लिप्त राजपूत बालकों का मन बहलाते हुए शिक्षित बनाने के वास्ते संस्कृत साहित्य के आचार्यों ने इसी मार्ग का अनुसरण किया। जिस तरह निपुण वैद्य गुड़ या शक्कर जैसी मीठी चीज में दवा मिलाकर सुस्वादु बनाकर रोगियों से कड़वी औषधियों का सेवन कराता है उसी तरह पुराने साहित्यकारों ने कथा-काव्य को धर्मोपदेश के लिए अपने हाथ का साधन बना लिया और इस प्रकार अपनी बुद्धि चातुरी दिखलाई। उन लोगों ने कौरव-पांडवों की कथा बनाकर अथवा हरिश्चंद्र की गाथा लिखकर सत्यधर्म की उत्कृष्टता लोगों पर प्रकट की। परमार्थ-तत्व विचार भी, कथा-काव्य के द्वारा ही बताये गये। Pilgrim's Progress और प्रबोध चंद्रोदय इस कथा के उत्तम उदाहरण हैं। प्रबंध काव्यों में भी कथा-काव्य का सहारा लिया गया। शौवानकनायक ग्रंथ इसका प्रमाण है। 'देश भाषलन्दु तेलुगु लेस्सा' यानी सब प्रांतीय भाषाओं में जो तेलुगु हर तरह से बेहतर (अधिक प्रभावशाली) समझी जाती है और जिसको विदेशी विद्वान् भी "Italian of the east" कहकर प्रशंसा करते हैं, उसमें भी कथा काव्य को प्रमुख स्थान दिया गया। तेलुगु साहित्य के आचार्यों ने इसे एकान्त

उन्नति के उच्च शिखर पर बिठाकर अपनी बुद्धि कुशलता का परिचय दिया। स्वयं भी अमर हो गये और इसे भी अमरता प्रदान कर दी। 'हितोपदेश' और 'पचतत्र' इसी के नमूने है। यहाँ तक कहा जा सकता है कि वेद-वेदागो और उपनिषदों ने भी इस कथा-काव्य को अपने लिये उपयुक्त समझा। इसमें सूक्ष्म रूप से ही नही, कहानी ही सूत्रप्राय दृष्टिगोचर होती है। पुराण एव इतिहास में कहानी का स्थान प्रमुख है ही।

जिस प्रकार ससार परिवर्तनशील है, उसी प्रकार साहित्य भी लोगो की परिवर्तित रुचि के अनुसार बदलता रहता है। देश, काल और परिस्थितियो के कारण परिवर्तित होना साहित्य का विशेष गुण है। कथा-काव्य का अस्तित्व और आधिपत्य भी इसी पर निर्भर है। कुछ साहित्यकारो ने इसे अल्पाश में अपनाया तो कुछ लोगो ने इसे अधिक प्रधानता दी। यह युग विशेष का लक्षण कहा जा सकता है। समय रूपी प्रवाह को कोई रोक नही सकता। इसी तरह भारतीय साहित्य के आचार्यो ने जो किया, पश्चिम के साहित्याचार्यो ने भी उसी पद्धति का अनुकरण किया यानी उसी कथा-काव्य को अपनाकर अपने अपने देशो और अपनी अपनी भाषाओ में इसका अधिक सम्मान किया। सुना जाता है कि इग्लैड, फ्रास और इटली के साहित्यो की भी यही बात है। Aesope's Fables, Decemeron, Arabian Nights, W-Morris stories of Earthly Paradise (Stories in beautiful English Verse) and Short Story (A notable form of Litearary art)—ये सब अंग्रेजी के उदाहरण है। शृगार और वीर रस भरी 'पल्नाटि वीर चरित्र', 'काटमराज की कहानियाँ,' 'कामम्मा कथा' आदि ग्रन्थो को कौन आंध्र भूल सकता है! 'आल्हा और ऊदल' के गाने दिल को हिलाकर झकझोर कर मुर्दो में भी जान फूँकने वाले वीरगीत है (Ballads)। छद भी उनके लिए अनुकूल चुना गया और गाने का ढंग भी उनका एकदम निराला है। उन वीर गीतो को गाते सुनकर शरीर एक साथ रोमाचित हो जाता है और ताल, लय और स्वर के साथ दिल बल्लियो उछलने लगता है। मगर अफसोस आजकल वे कही सुनाई नही देते। एकदम अदृश्य से हो गये है। यह भी समय का प्रभाव है।

तेलुगु साहित्य में कथा काव्य—अब इस पर विचार करें। साहित्य शिल्प या कला के तीन भाग किये जा सकते है। एक तो कथनात्मक (Narrative) दूसरा वर्णनात्मक (Descriptive) और तीसरा नाटकीय (Dramatic)। हर एक कवि या काव्य में ये तीनो गुण या लक्षण, अल्पाश या अधिकाश में मिले हुये होते है। जो काव्य केवल कथा-प्रधान हो और पात्र एवं वर्णन अप्रधान यानी अगागी भाव जहाँ हो, हम उनको कथा-काव्य कहते है। इस दृष्टि से सब देशो और भाषाओ का प्राचीन साहित्य देखा जा सकता है जैसे 'पृथ्वीराज रासो', 'बीसलदेव रासो' आदि हिन्दी भाषा के काव्य माने जा सकते है, तेलुगु में 'पल्नाटि वीर चरित्र', बोब्बिलि राजाओ की कहानियाँ देसिंग राजा की गाथायें आदि है। अब तेलुगु भाषा मे कथा साहित्य पर नजर डालिये। नन्नय्या से लेकर श्रीनाथ तक, तब से लेकर अब तक, तेलुगु साहित्य में कथा-काव्य का स्थान बना हुआ है। महाभारत जिसको हम पंचमवेद कहते है, कथा-काव्य

का खजाना कहा जा सकता है (Mine or Treasure House of great story or storeis)। ग्यारहवीं तरहवा और चौदहवा सदियों में 'नन्नय्या" 'तिक्कय्या" और एरय्या" नामक तान महान् कवियो के द्वारा यह लिखा गया। सरस्वती देवी क इन तीन वरदपुत्रा ने सफलता के साथ इसे पूरा कर तलुगु भाषा का साहित्य में स्थान दिलवाया। सुना जाता है कि विदेश भाषाओं में जसे रूसी भाषा में (Russia) इसका अनुवाद किया जा रहा है।

यह ग्रथ कब लिखा गया, कसे लिखा गया और क्या लिखा गया—इन बाता पर अब विचार करेंगे। यद्यपि यह सस्कृत महाभारत का अनुवाद है फिर भी इसको हम स्वतन्त्र काव्य कह सकते ह क्योंकि स्वतन्त्र महाकाव्य के सभी गुण इसमें पूर्णत विद्यमान ह। आध्र देश के नरेशों में अग्रगण्य पूर्वचालुक्य वश के राजराजनरेंद्र थ। उन्होंने पहल पहल वैदिक धर्म का उद्धार करना चाहा और 'भारतीय विज्ञान सर्वस्व (Encyclopedia of Indian culture) लिखवाया 'बृहत्कथा' 'शुकसप्तति', हस विंशति आदि कथायें उसी समय का प्रधान लक्ष्य या लक्षण रहा। तब समय ऐसा था कि एक ओर वैष्णव धर्म अपना तांडवनृत्य कर रहा था तो दूसरी ओर जन धर्म लोगो पर अपना आधिपत्य जमाने में तत्पर था। ये दोनो वास्तव में वदिक धर्म के प्रत्यक्ष रूप स प्रबल शत्रु निकले। ऐसे समय ग्रथ राज महाभारत का तलुगु साहित्य में आगमन हुआ जिसे धर्मतत्व क ज्ञाता धर्म शास्त्र कहते ह तो दार्शनिक लोग दर्शनशास्त्र मानते ह। नीतिशास्त्र क जानकार नीतिशास्त्र बताते ह तो कविश्रेष्ठ महाकाव्य कहते ह। लाक्षणिक लोग इसको सर्वलक्ष्य-सग्रह बताते ह तो इतिहासकार इस इतिहास कहते ह। पौराणिक गण इसको सब पुस्तकों का समुदाय समझते ह। इस प्रकार धर्म दर्शन नीतिशास्त्र कविता इतिहास पुराण आदि सब बातो का समावेश ही आध्र महाभारत है।

पडित पामर जनो के उपयोगार्थ भारत की रचना उस शैली में हुई जिसे दोनो समझ सकें। इस में कई तरह की शिक्षाओं का उल्लेख है जो लोगो क लिये आदर्श स्वरूप एव अनुकरणीय ह। आगे आने वाले कविजनो के लिये यह प्रमाण-ग्रथ (Standard) बन गया है। कविता के प्रयोगों के औचित्य या अनौचित्य का निर्णय इसी ग्रथराज क आधार पर होने लगा है। रसोचित वृत्त रचना तथा मानव मनोतत्व परिशीलन की निपुणता इस महाकाव्य के विशेष गुण हैं। बाणशय्या पर अलकृत भीष्म पितामह के द्वारा धर्मराज युधिष्ठिर को धर्मोपदेश दिलाने का सदर्भ वास्तव में सराहनीय है और बारबार सराहनीय है। पाँचों पाँडवों के बनवास क समय विदुर ने धृतराष्ट्र को जो उपदेश दिये, वे पढते ही बनते हैं। राजनीतिविशारद श्रीकृष्ण का दूत बनकर कौरव सभा में जाना भरे दरबार में उनकी वचन चातुरी, स्वामिभक्ति कर्ण को अपने कौशल और बुद्धिबल से पाँडव-पक्ष में खींच लेने की चेष्टा—इन सब बातो का सुदर वर्णन भारत में पाया जाता है। उत्तर गोग्रहण सदर्भ और कीचक-वध के वर्णन में तो कविवर ने मानो कमाल ही कर दिखाया है। इसीलिये तेलुगु साहित्य में यह कहावत प्रचलित हो गई कि 'विंटे भारतम् विनवले तिंटे गारेलु तिनवले' अर्थात सुनना हो तो भारत सुनो और खाना हो तो बडे खाओ (जो उदद और घी स तयार किये जाते ह जो आंध्र जाति का स्वादिष्ट या रुचिकर

आहार है।) ये हैं भारत की कथा साहित्य संबंधी विशेषतायें। रामायण और भागवत की तरह भारत भी नीतिप्रधान ग्रंथ माना जा सकता है।

इसके रचना-शिल्प या कथा वस्तु पर अब एक और दृष्टि से विचारें। इसके दो विभाग किये जा सकते हैं। एक तो आख्यान है (Development of the main story) और दूसरा उपाख्यान (Episodes or small stories) कौरव-पाडवों का चरित्र, नलोपाख्यान तथा सावित्र्युपाख्यान आदि आख्यान के उदाहरण हैं। इसके भी दो भाग हैं। पहला पुरातन ऐतिहासिक (Historical narrations) और स्वर्गीय राजाओं की कथायें जो प्रधान नहीं। 'कपोतोपाख्यान', 'मूषक-मार्जाल-संवाद' आदि उपाख्यान के उदाहरण कहे जा सकते हैं। जो नीति-प्रधान कथाएँ हैं।

अब कवित्रय की कविता-शक्ति पर विचार करें। आदि कवि 'नन्नय्या' ने आदिपर्व, सभापर्व और अरण्यपर्व का अर्ध भाग लिखा। उनको वहीं छोड़कर विराट्पर्व से लेकर बाकी सब पंद्रह पर्वों की रचना 'कविब्रह्मा' 'तिक्कन्ना' ने की। कहा जाता है कि नन्नय्या से विरचित अरण्यपर्व का अर्धभाग किसी तरह अदृश्य हो गया। तब चौदहवीं सदी में प्रबंध परमेश्वर कार्यक्षेत्र में आये और अरण्यपर्व की रचना करके तेलुगु महाभारत की रचना पूर्ति की। इस तरह तीन सौ वर्षों में तीन महान् कवियों के द्वारा उस भारत की रचना हुई जिसे लोग तेलुगु साहित्य सरस्वती का अमूल्य आभरण समझते हैं। यों कहें तो शायद अत्युक्ति न होगी कि सरल साहित्यज्ञ के जीवन की सार्थकता तेलुगु महाभारत के अध्ययन में ही है। नन्नय्या की रचना कथा-प्रधान ही है। कहानी को अकुंठित रूप से चलाते हुए इस 'वागनुशासन' या 'शब्दानुशासन' ने आख्यानों का मनोहर वर्णन किया है। प्रसन्नता (Effective Simplicity) एवं अक्षर-रम्यता (Melodious Style) रचना के विशेष गुण हैं। उदाहरण के लिये लीजिये, यह पद पर्याप्त है—

> निंडु मनेपु नव्य नवनीत समानम, पल्कु दारुणा
> खडल शस्त्र, तुल्यमु जगन्नुत विप्रुलयंदु निक्कमी
> रेंडुनु राजुलेंदु विपरीतमु गाडना विप्रुडोपु नो
> पंडति शातुडय्यु नरपालुडु शापमु ग्रम्मरिंपगान्।

अर्थात् ब्राह्मण का पूरा मन नव्य नवनीत (मक्खन) के समान है और वचन देवराज इंद्र के वज्रायुध के बराबर। नरेशों के गुण बिलकुल इसके उलटे या विपरीत हैं। इसलिये ब्राह्मण पुन. शाप को लौटा ले सकता है परंतु शांत चित्त होने पर भी राजा या नरपाल वैसा नहीं कर सकता। इस प्रकार कथा-प्रधान कवि के रूप में नन्नय्या केवल तेलुगु साहित्य में ही नहीं, अपितु भारतीय साहित्य में भी अग्र-गौरव के पात्र बन गये।

कहानी ठीक चलाते हुए कविब्रह्मा तिक्कन्ना ने पात्रों के वार्तालाप को अधिक प्रधानता दी और भाषा में, संस्कृत से ज्यादा देशीय शब्दों का प्रयोग किया। उत्तर-रामायण को इन्होंने कथा काव्य के रूप में लिखा। इनके प्रिय शिष्य केतन्ना ने तेलुगु में,

संस्कृत में दंडि प्रणीत दशकुमार चरित्र नामक कथा-काव्य की रचना की। तिक्कन्ना की कविता-शक्ति बताने के लिये यह एक उदाहरण लीजिये —आचार्य द्रोण का कथन है,

"सिगबाकटितो गुहांतरमुनजेटपाटु मैंतु डि मा
तग स्फूर्जित यूथ दर्शन समुद्यत्क्रोधमै वच्चु नो
ज गातारनिवासखिन्न मति नस्मतयेत पैं वीडे व
"च्चें गु तीसुतमध्यमु डु समरस्थेनाभिरामाकृतिन्"—

अर्थात क्षुधार्त सिंह जिस प्रकार अपनी गुफा के अंदर दीन रह कर फिर उन्मत्त मातंगों के दर्शन मात्र से अत्यंत क्रोधित होकर उन पर झपट पड़ता है, उसी प्रकार वनवास के अनंतर खिन्न-मन भीमसेन मेरी सेना पर भीमाकार से चढ़ा आ रहा है। इस पद्य की पूरी विशेषता समझने के लिये और उसके आनंद का अनुभव करने के लिये तेलुगु भाषा के अध्ययन की आवश्यकता है। विराट और उद्योगपर्व दोनों इनका कविता में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कविता को अधिक सहृदय हृदय रंजक कहें तो शायद अतिशयोक्ति न होगा।

एर्रना वर्णन प्रधान कवि है। इन्होंने कहानी को एक दम तिलांजलि नहीं दी। अपनी रचना में कहानी भी ठीक चलाई तथा कथा साहित्य-जगत् के सामने एक नया आदर्श रखा। एक नवीन मार्ग का अनुसरण किया। पुराणों में जो उपाख्यान रहे उन्हें स्वतन्त्र महाकाव्यों के रूप में लिखने की पद्धति बताई। 'नृसिंह पुराण', 'प्रह्लाद चरित्र' और हरिवंश' इसके उत्तम उदाहरण हैं। इनकी कविता शैली की प्रतिभा बताने के लिये लीजिये, यह पद्य —

निलचेन्दालसमुच्छ्रितागुडु महानिर्घोषसतर्जिता
खिलभूतप्रकरुडु दीर्घविपुलग्रीड्डु दंष्ट्रासमु
ज्ज्वलवक्त्र तु डु विरूपलोचनुडु तीव्रस्फारते जोधनु
डलघु डा सरसी तटाग्रमुन नय्यनु डु घोराकृतिन्।

अर्थात् ताड़ के पेड़ों के समान जिसके अंग प्रत्यंग हैं, सारा भूत-समूह जिसके गर्जन के कारण व्याकुल हो जाता है नितांत लंबी चौड़ी जिसकी ग्रीवा है (कंठ-बाहुल्य) प्रकाशमान दंष्ट्रा से युक्त जिसकी मुखाकृति है, जिसके विलोचन विकृत हैं अधिक उज्ज्वल तेज से जो महान् है भलामानस है, सरोवर तीर के अग्रभाग पर बसा यक्षराज खड़ा हुआ है।

यक्षराज का वर्णन यहाँ अद्भुत है। अरण्य पर्व के अंतिमभाग का यह संदर्भ है। रसोचित-वर्णन, पात्रोचित भाषा, उपयुक्त छंद का चयन, अद्वितीय रम्यता आदि प्रबंध परमेश्वर की कविता का विशेषतायें हैं। 'देशीय साहित्य में कथा-काव्य' अब इस पर विचार करें। आरंभ में यह बताना अनुचित न होगा कि केवल संस्कृत छंदों में ही नहीं बल्कि देशीय छंदों में और देशीय शब्द जाल से कथायें लिखने का मन प्रवृत्ति लोगों में आ गई। तिक्कन्ना के पूर्व ही कारणीय काव्यों का आविर्भाव हुआ। पालकुरिकि सोमनाथ का 'बसव पुराण' 'पंडिताराध्य चरित्रा' और गोना बुद्धा रेड्डि की रंगनाथ रामायण आज जो द्विपद काव्य के रूप में (Classical Poetry) में प्रबंध के नाम से ये प्रख्यात हैं।

एर्राप्रेग्गता के अनंतर, प्रबंध युग का आरम्भ कहा जा सकता है। तेलुगु साहित्य के आचार्यों में आत्मशक्ति अथवा आत्मनिर्भरता नहीं है और वे सदा सर्वदा संस्कृत भाषा के दास हैं— इस प्रकार वे संसार में बदनाम हो गये हैं। अपनी इस बदनामी को दूर करने के लिये तेलुगु भाषा के कवियों ने प्रबंधों की रचना की, किसी पुराण या इतिहास के उपाख्यान को लेकर अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा उसको बढा कर, उस मे अष्टादश वर्णनों का उज्ज्वल रूप दिखाया। रसाभिव्यक्ति एवं पात्र-चित्रणा को अधिक प्रधानता देकर शब्दार्थालंकार सहित जो रचना की जाती है, उसका नाम पडा प्रबंध। कहा जाता है एर्रना ने प्रबंध-युग का बीज बोया; श्रीनाथ ने उसे बढाया और अल्लसानी 'पेद्दना' ने उसकी साधना में पूरी सफलता प्राप्त की। चौदहवीं सदी में प्रबंध का बीज फूट कर पौदा बना काल पाकर वृक्ष का रूप धारण करके श्रीकृष्णदेव राय के समय फलान्वित होकर विराजमान हुआ। इन्हीं मधुर फलों में कुछ 'स्वारोचिष मनुसभव', 'वसुचरित्रा', 'आमुक्त मालयदा', 'पारिजातापहरण' आदि हैं। अठारहवीं सदी के अंत तक ये प्रबंध फल अदृश्य होने लगे किन्तु इसके अपवाद स्वरूप ककटि पापराजकृत 'उत्तर रामायण' नामक एक दिव्य फल तेलुगु साहित्य धरती पर गिरा। प्रबंधों के भी दो विभाग हैं। एक तो अनुकरण-प्रधान और दूसरे कथा-वैचित्र्य-प्रधान। श्रीनाथ कवि का शृगार नैषध और पिल्ललमर्री पिनवीरभद्र कवि का 'शृगार शाकुतल' पहले विभाग के अंतर्गत आते हैं। श्रीनाथ कवि के वीरगीत साधारण प्रजा के लिये, उन्हीं की भाषा में लिखे गये द्विपद काव्य हैं। ये (Popular Ballads) 'पलनाटि वीर चरित्र', 'काटम राजु कथा', 'कामम्मा कथा'' बोब्बिलि कथा', 'देसिंगु राजु कथा' आदि हैं। इसके बाद चित्रकथाओं का अवतरण हुआ। जक्कन्ना 'विक्रमार्क चरित्र' और अनत कवि का 'भोजराजीय' इसी के अंतर्गत हैं। कथा-वैचित्र्य-प्रधान कवियों में सब से पहले और सब से प्रसिद्ध पिंगलि सूरन्ना का नाम आता है।

तेलुगु साहित्य में कृष्णदेव राय का काल परम पवित्र है। उस घाट पर जो आता है। उसे कई तरह के निनाद सुन पडते हैं। कहीं आठ ऋषियों के दर्शन होते हैं (अष्ट दिग्गज नाम के कवियों को उल्लेख)। एक ओर वरूथिनी-प्रवराख्य का प्रणय-प्रबन्ध हम देख सकते हैं दूसरी ओर उस श्रीकृष्ण के दर्शन कर सकते हैं जो अपनी प्रिय-पत्नी सत्यभामा को समझाते रहते हैं। एक और जगह गिरिका-वसुराज का मुग्ध मोहन प्रणय, हम जान सकते हैं। सब बातों से बढकर कलभाषिणी के कलाभाषणों को एवं उसके प्रणय-प्रज्ञाविशेषों को हम पहचानते हैं। सूरनार्य की कविता-प्रतिभा इसी एक पात्र-पोषण में है। तेलुगु साहित्य की यह अपूर्ण सृष्टि है। कलभाषिणी सुन्दरी, सुकुमारी, वाक्चातुर्य में निपुणा और कार्यसाधन मे प्रवीणा है। तेलुगु साहित्य के प्रेमीजन सूरनार्य जी के इस सृष्टि कार्य को सराहे बिना नहीं रह सकते। कलभाषिणी जाति की वेश्या होने पर भी कलापूर्णोदय की प्रधान नायिका है। उसमें बाण कवि की 'कादबरी' का अनुकरण है। पहले कलभाषिणी ब्रह्माजी के यहाँ रहती है। दूसरे जन्म में श्रीकृष्ण का आदर पाकर उस नाटक का पात्र बनती है जो कलहभोजन नारद के द्वारा चलाया जाता है। फिर मणिकधर को प्यार करके परोक्ष रूप से उसका फल पाती है। तीसरे जन्म में कलापूर्ण के द्वारा अपनी मनोकामना पूरी कर लेती है। तीन जन्मों का वृत्तांत, एक साथ

मिलाकर चतुरता से कहानी की कल्पना करते हैं। कलभाषिणी का अत्यंत सुन्दर तथा मनोहर चित्र खींचा। उस सूरनाय की कविता प्रतिभा को प्रणाम है। साहित्य जगत् में इस कवि की यद्यपि इतनी प्रतिष्ठा है फिर भी कथावस्तु की नवीनता तथा जटिलता के कारण साधारण जनता तक काव्य नहीं पहुँचा। केवल पंडितों की संपत्ति रह गई।

इसके अनंतर तँजाऊर कथा काव्यों की बारी आती है। यही समय था जब कि कथा काव्य नाजुक बन गया था। रघुनाथ नायक का वाल्मीकि चरित्र रघुनाथ रामायण (पद्यात्मक) छोटी छोटी कथाओं के रूप में चमकूटि वेंकटकवि के 'विजयविलास और सारंगधर चरित्र इसी शैली के कथा काव्य हैं। इसी प्रसिद्ध कथा को लेकर बिना जटिलता के कहना, वर्णनौचित्य नाति प्रौढ़ शैली आदि इस कथा के विशेष लक्षण हैं। इनके बाद के कविगणों ने शृंगार प्रधान कथा काव्य की रचना की। अल्पसंख्यक पात्र और स्वल्पसन्निवेश—इन कथा-काव्यों की विशेषता है। मुद्दु, पलनि का राधिका सांत्वन, इस कथा-काव्य का एक उदाहरण है। इसकी शैली मधुर मानी जा सकती है।

अब आधुनिक युग पर दृष्टिपात कीजिए। उन्नीसवीं सदी का अंतिमकाल ही नवीन तेलुगु साहित्य का प्रारंभिक काल माना जा सकता है। जिस युग के कथा-काव्य के अधिकतर साहित्यिकों पर अंग्रेजी का कुछ न कुछ असर पड़ा हुआ है। जिस प्रकार प्राचीन समय में आंध्र कवि संस्कृत भाषा भावों को अपना कर काव्य निर्माण करते आये उसी प्रकार ये लोग अंग्रेजी से प्रभावित होकर अपनी रचनाएँ करते हैं। प्रकृति-माता के आराधन में—प्रणय संबंधी भावनाओं में—आत्मशक्ति के प्रबोध में इन लोगों ने विशेष प्रतिष्ठा पाई। स्त्री पात्रों को अपनी रचनाओं में अधिक आदरणीय स्थान दिया। शृंगार रस की अपेक्षा वीर और करुण रस के प्रति अत्यंत ममता दिखाई। नित्य जीवन में दृष्टिगोचर होने वाले साधारण पात्रों को देखकर ये द्रवीभूत हो गये। और उन्हीं को अपनी रचनाओं में प्रधानता दी। कहा जा सकता है कि इनकी कथा-वस्तु अधिकतर विषादांत ही हो गई। चाहे जो हो ये लोग साधारण प्रजा के अत्यंत निकट आने लगे और अधिक लोकप्रिय बनने लगे। इन लोगों में आंध्र यूनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर स्वर्गीय श्री कट्टमंचि रामलिंगारेड्डिजी का नाम सादर लिया जा सकता है जिन्होंने 'मुसलम्मा मरणमु' नामक कथा-काव्य की रचना की। इस में एक ऐसी ग्रामीण युवती की कहानी दी गयी है जो अपने गाँव वालों की भलाई के लिए आत्मार्पण कर जाता है। पिंगलि लक्ष्मीकांतम जी और काटूरि वेंकटेश्वर राव जी का 'सौंदर नंदमु' का उल्लेख भी यहाँ अनुचित न होगा। इस प्रसिद्ध रचना में सुन्दरी और नंद की कथा है। रायप्रोलु सुब्बा राव जी का कथा-काव्य 'स्नेहलतादेवी'' का नाम उल्लेखनीय है। इस में एक ऐसी धनहीन कन्या की त्याग की कथा है जो दहेज से दुष्परिणाम से अपने परिवार को बचाने के लिये अग्निप्रवेश कर के अपने कन्यात्व की रक्षा कर लेती है और वह है स्नेहलतादेवी। आधुनिक कथा-काव्य के रचयिताओं में अग्रगण्य जाषुवा कविवरेण्य का नाम यहाँ न लें तो आधुनिक कथा-साहित्य के प्रति जरूर अन्याय होगा।

कहानी कहने की रीति उनकी चित्ताकर्षक होती है और उनकी रचना पंडित और पामर जनो को लोकोत्तरआनंद प्रदान करती है। 'फिरदौसी' और 'मुमताजमहल' उनके प्रसिद्ध कथा-काव्य है। गडियारमु वेंकटशेषशास्त्रीजी की रचना 'शिवभारत' (शिवाजी का चरित्र) का नाम प्रसिद्ध है ही। मगर इसे एतिहासिक कथा-काव्य कहना उचित होगा। भाव-प्रधान रचनाओ में, दुव्वूरि रामिरेड्डिजी की 'वनकुमारी', 'पानशाला', तथा रायप्रोलु सुब्बारायजी का तण ककणमु 'जडकुच्चुलु' आदि है जिन में कथा केवल सूत्रप्राय दिखाई देती है।

अब जापुआ कवि की कविता शक्ति पर सरसरी दृष्टि डालिये, यहाँ यह कहना अनुचित तथा अप्रासंगिक न होगा कि वाणी के कटाक्ष तीक्ष्ण किन्तु पक्षपात-रहित होते हैं। पूर्व-जन्म के पुण्य फल के अनुसार प्रत्येक प्राणी को उसका साक्षात्कार मिलता है परन्तु जीवन भर उसकी उपासना और आराधना की योग्यता कमा लेना उस भाग्यवान् मनुष्य का पवित्र कर्तव्य हो जाता है और शारदा देवी को नित-निरंतर नवीन आभरणो से अलंकृत करना उसका धर्म बनता है। साहित्य जाति पाँति का भेद भाव नही रखता। इसी भाव को श्री जापुआ कवि यो बताते हैं.—

"कललु मोहिचु टोक कुलीनुलम गाटु
कुलमु लेदन्न वानिनि गूड वलयु"

अर्थात् कला केवल उच्च कुलवालो को ही प्यार नही करती, बल्कि उन लोगों को भी प्यार करती है जिनको उच्च जाति के लोग अधम समझते हैं। (ऊपर की पँक्तियों मे कविता की जातीयता झलकती है।) जापुआ के यहाँ रसमय हृदय है। संसार भर मे प्रसिद्ध ताजमहल का दृश्य किस पाषाण हृदय पर अधिकार करके उसे द्रवीभूत नही बनाता? ताजमहल के दर्शनो से एकदम मुग्ध जापुआ कवि के सुकुमार हृदय का व्यक्तीकरण ही 'मुमताज महल' है। इसमें मुगल बादशाह शाहजहाँ का राज्यपालन, मुमताज महल के साथ उनका दांपत्य-जीवन, प्रसिद्ध ताज का निर्माण आदि बातो का इस खंड काव्य में वर्णन है। छंद रचना भाषा और भावो में आँध्रत्व को अपना कर इस कवि ने काव्य गौरव बढा दिया। काव्य भर में यथा स्थान मनोहर वर्णनो का सहारा लिया। सन्ध्या समय का वर्णन वास्तव में सराहनीय है।

"मणु लल्ला कवि मीदुर्गट्टि पतिपेन मक्का मदीनालकुत" यहाँ सच्ची कविता है। "मीदुट्टगा" आँध्र जाति का पुरातन संप्रदाय है। इसका अर्थ है—अपनी गाय या भैंस का दही एक जगह जमाकर रखना, इष्टदेव के भेंट के लिये।)

वलपुटिल्लालु पल्लेति पलुकटिप
तुरक रायुहु तिलुवुन करगि पोये॥

अर्थात् प्रिय पत्नी मुमताज बोलने के लिये जब अपना मुह खोलती है, तो बादशाह शाहजहाँ सिर से पैर तक द्रवीभूत हो जाता है। (पानी पानी हो जाता है।) उत्तम प्रणय की सूचना देनेवाली ये तेलुगु कविता की अमर पक्तियाँ हैं। भूमाता की रत्नगर्भा—इस उपाधि को ले

कवि जापुआ ने अपनी कविता में कमाल कर दिखलाया। देखिये —

निन्नु नुदरवुलो दाचुकोन्न महिकि
रत्नगर्भाख्य नेडु सार्थक्यमरये ॥

अर्थात् स्वर्गीय मुमताज का सबोधित करके कवि कहता है जिस धरती ने अपने उदर में तुझे समा लिया 'रत्नगर्भा नामक इसका नाम आज सार्थक हो गया। ताजमहल का पाढिया तक शान के साथ खडा होने की भावना करके इस कविवर का कहना है कि—

"राणि विडचि पोये राजु नोटरि जेसि
राजु विडचि पोये राज्य रमनु
राज्य रमयु विड़चे राजुन वेवकड़
ताजि विडुव लेडु राजसबु"—

अर्थात राजा का एकाकी बना कर रानी चली गई और राजा तो राज्य रमा का छोड गया। राज्य रमा भी अनेक राजाओ को त्याग कर चली। परन्तु ताज न अपनी शान-शौकत को नही छोडा (वैभव) कसा अनमाल पद है यह ! शब्दालकार स भरी कसी सुन्दर कविता ! पद्य का भाव कितना मनोहर और गभीर है। 'फिरदौसा' कवि का दूसरा प्रसिद्ध खडकाव्य है। इसमें एक सत्कवि के द्वारा जिस प्रकार मूल्य चुकाने का वचन देकर रात दिन के परिश्रम के अनतर फिर वचन भग करके बादशाह गजनी मुहम्मद ने अत्याचार किया, परिणामस्वरूप उस कवि का असमय मत्यु कसे हुई, दु खद समाचार पाकर बादशाह का दिल कस बदला आदि बाता का अद्भुत वणन इस खड काव्य में है। एक बार नही बार बार अध्ययन करने और मनन करने योग्य खड काव्य है फिरदौसी'।

लोगा की रुचि क्रमश बदलती जाती है। पद्य की अपेक्षा गद्य कथा काव्य के लिये अधिक उपयुक्त समझा जाता ह। फिर भी काव्य जगत में पद्य-साहित्य का महत्व कभी कम नही होगा। विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि आगे चल कर दोना तरह के कथा काव्य पद्यात्मक और गद्यात्मक साहित्याकाश क सूर्य और चद्र क समान सुस्थिर यथा स्थान और यथासमय, शाभायमान होंगे।

प्रो० विष्णुपद भट्टाचार्य

बंगला कथाकाव्यों का संक्षिप्त परिचय

बंगला कथाकाव्यों की आलोचना की सुविधा के लिये हम समग्र बंग साहित्य को प्राचीन और आधुनिक दो कालों में विभाजित कर लेते हैं—(१) दसवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक प्राचीन काल की व्याप्ति (२) उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से आधुनिक काल का सूत्रपात।

प्राचीन काल

पांचाली काव्य—

प्राचीन बंग साहित्य के कथाकाव्यों को पांचाली काव्य या आख्यान काव्य कहते हैं। प्राचीन काल में एक श्रेणी का काव्य 'पंचालिका' अथवा कठपुतली के नाच के साथ गाये जाने के कारण पांचाली नाम से प्रसिद्ध हो गया। बाद को बंगला कथा काव्य या आख्यान-काव्य का साधारण नाम 'पांचाली' ही रह गया। यह काव्य मंजीरे, मृदंग और चामर के साथ गाया जाता था।

प्रथम कथाकाव्य का रचना काल—

यद्यपि ईसा की दसवीं शताब्दी से बंगला भाषा ने अपभ्रंश से पृथक् होकर स्वतंत्र भाषा के रूप में स्थान ग्रहण किया फिर भी पंचदश शताब्दी के पहले के कथाकाव्य का कोई निदर्शन हमें उपलब्ध नहीं। इसका एक मुख्य कारण यह है कि १२वीं सदी के अंतिम दशक में बंगला देश पर तुर्कों का आक्रमण हुआ और देश में अशांति रहा। अतएव साहित्य चर्चा हो ही नहीं सकती थी। जो कुछ भी हुआ उसका निदर्शन नहीं मिलता। बंगला भाषा में पहला कथा काव्य पन्द्रहवीं शताब्दी में रचा गया। तब से यह धारा अष्टादश शतक तक जारी रही।

सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि

विषय वस्तु (Matter) और संस्कृति की दृष्टि से बंगला कथाकाव्यों में तीन धाराएं पायी जाती हैं —(क) ब्राह्मण्य संस्कृति या संस्कृत का विषय वस्तु (ख) अब्राह्मण्य संस्कृति या बंगाल की निजी विषय वस्तु (ग) मुसलिम संस्कृति या अरबी फारसी विषय

वस्तु । इससे यह धारणा नहीं होनी चाहिये कि ये तीन विषय वस्तुएँ सर्वथा स्वतंत्र रूप में साहित्य में प्रकट हुई । परन्तु अनेक स्थलों पर इन तीन धाराओं का एक विचित्र मिश्रण भी पाया जाता है । आगे चलकर इसका परिचय मिलेगा ।

आर्य-अनार्य संस्कृति——

उत्तर पश्चिम भारत से आर्यगण ईसा से पूर्व तीसरी शताब्दी में मौर्य सम्राटों के समय मे बगाल देश मे आने लगे और लगभग पचम शताब्दी के मध्य में ही वे लोग इस प्रान्त में सब जगह बस गये । बगाल देश मे आर्यों के आने मे पहले जो लोग रहते थे उनकी भाषा, आर्य भाषा और साहित्य के प्रभाव से लुप्त हो गई । यहाँ के अनार्य लोगो ने भी आर्य भाषा को अपना लिया । उस समय आर्यों की घरेलू भाषा प्राकृत होने पर भी उनकी शिक्षा और विद्याचर्चा की भाषा सस्कृत थी । धीरे-धीरे प्राकृत से अपभ्रश, फिर अपभ्रश से बगला की उत्पत्ति हुई । पर उच्च वर्ग के लोगो अथवा विद्वत् गोष्ठी में सस्कृत का ही समादर था । उधर निम्नवर्ग एव साधारण जनता में बंगला जारी रही । इस प्रकार एक ही प्रान्त में उच्च और निम्न इन दो वर्गों में भिन्न भाषा और सस्कृति की चर्चा चलती रही । ब्राह्मण्यवादी अथवा उच्चवर्ग के हिन्दू समाज मे पौराणिक धारा अर्थात् सस्कृत शास्त्र-काव्य व पौराणिक प्रवृतियो का समादर रहा । अनार्य अथवा निम्न वर्ग के समाज मे अपौराणिक स्थानीय देव देवियो की पूजा प्रचलित थी ।

तुर्की आक्रमण——

इतने में बारहवी और तेरहवी शताब्दियो के सधिकाल में बगाल देश पर तुर्को के आक्रमण शुरू हुए । उसके फलस्वरूप यहाँ के आर्य-अनार्यो का वैमनस्य घट गया और ब्राह्मण-अब्राह्मण्य सस्कृति मे मेल जोल होने लगा, जो साहित्य के लिये विशेष लाभप्रद हुआ । एक तरफ आर्य समाज मे अपौराणिक स्थानीय देवताओ के प्रचार के लिये देव-माहात्म्य सूचक नाना काव्य रचे जाने लगे, दूसरी ओर ब्राह्मण्यवादी समाज सस्कृत को छोडकर आम जनता की भाषा बगला में अपनी सस्कृति और साहित्य का प्रचार करने लगा ।

मुस्लिम संस्कृति——

तुर्की आक्रमण के बाद शिक्षा और सस्कृति के क्षेत्र में हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष छिड़ गया । तुर्क शासको की निगाह में हिन्दुओ के धर्म-कर्म, देव-देवी, शास्त्र, शिल्प, कला साहित्य संस्कृति सब कुछ 'कुफ्र' माने गये । इस तरह पहले पहल कट्टर विरोधी होने पर भी धीरे-धीरे यहाँ रहते हुए वे बंगाली बन गये । तीन शताब्दियो के बाद मुसलमान शासक बगला भाषा व साहित्य की पृष्ठपोषकता करने लगे और अरबी फारसी छोडकर बगाली मुसलमान बगला भाषा की चर्चा मे जुट गये। इस तरह हिन्दू सस्कृति के साथ थोड़ी-बहुत मुसलिम संस्कृति भी बगला साहित्य में आ गई । पर उसका प्रभाव अधिक नही रहा । हाँ, आजकल पूर्व पाकिस्तान में बगाली मुसलमानो के द्वारा जो साहित्य रचा जा रहा है उसकी बात दूसरी है ।

कथा-काव्यों के प्रकार भेद

प्राचीन बग साहित्य के कथाकाव्या को हम निम्नलिखित रूप में विभाजित कर सकते ह —

(अ) धर्म सम्बन्धी (Religious)

(क) पौराणिक (या सस्कृत की) कथा वस्तु, जसे भागवत, रामायण, महाभारत इत्यादि ।

(ख) सम्प्रदायवादी (या अपौराणिक अथात बगाल की) कथा वस्तु, जस मगल काव्य नाम साहित्य इत्यादि ।

(ग) चरित सम्बधी (Biographical) कथा वस्तु जैसे चैतयदेव के जीवन-सम्बधी कथाकाव्य ।

(आ) धर्म-सम्बन्ध रहित (Secular) या लौकिक

(घ) प्रणय सम्बधी कथा वस्तु । जसे विद्यासुदर, हिदी, उदू फारसी से अनूदित काव्य, ग्राम गाथा इत्यादि ।

(ङ) ऐतिहासिक (Historical)

(अ) धर्म सम्बधीकथाकाव्य

(क) पौराणिक

भागवत, रामायण और महाभारत की कहानिया के आधार पर जा कथाकाव्य लिखे गये उन्ही को पौराणिक कयाकाव्य कहत ह । ये ग्रय सस्कृत ग्रथा का अक्षरश अनुवाद नहीं है। ये भी एक प्रकार स स्वतत्र रचनायें हैं। इनमें से भागवत और रामायण पद्रहवा शताब्दी में रचे गये, महाभारत का रचना सोलहवी शताब्दी के पहले भाग में हुई ।

१ भागवत श्री कृष्ण कीत्तन

बगला भाषा का प्रथम कथाकाव्य है 'श्री कृष्ण कीत्तन ।' बडू चडीदास ने इसका रचना की । कवि के जीवन के सम्बध में हमें बहुत कम जानकारी प्राप्त है। आप वीरभूमि जिले के अन्तगत नानूर गांव के रहने वाले थे । पचदश शतक के पहले भाग में उन्होंने अपने काव्य की रचना की । आपके काव्य स मालूम होता है कि आप सस्कृत भाषा और साहित्य क जानकार थे । आप वासली देवी के सवक थे। चडीदास के सम्बध में ऐसा एक प्रवाद प्रचलित है कि रामी नाम की एक धोबिन आपकी साधना सगिनी थी जिसके कारण कवि को ब्राह्मण समाज से अलग कर दिया गया था ।

राधाकृष्ण की प्रमलीला लेकर इस कथाकाव्य की रचना हुई । राधाकृष्ण लीला प्राचीन बगला और बगालियों का एक परम आदरणीय विषय है । यद्यपि भागवत में श्रीकृष्ण का जीवन-वृत्तात वर्णित हुआ फिर भी उसमें राधा का कोई प्रसग नहीं है । राधाकृष्ण कहानी बहुत दिनों स बगाल के लोक समाज में प्रचलित थी। इसी लौकिक

कहानी के आधार पर बारहवी शताब्दी मे बगाल के प्रसिद्ध कवि जयदेव ने संस्कृत में 'गीतगोविन्दम्' काव्य की रचना की। वड़ चण्डीदास ने भी उसी कहानी को लेकर पन्द्रहवी शताब्दी मे 'श्रीकृष्ण कीर्तन' लिखा। इस काव्य में श्रीकृष्ण और बलराम का जन्म, उनका गोकुल लाया जाना तथा कालियादहन—केवल यही दो विषय पुराण से लिये गये हैं। अत हम 'श्रीकृष्ण कीर्तन' काव्य को पौराणिक तथा अपौराणिक लीलाओं, धर्म साहित्य और प्रेम साहित्य का एक सुन्दर मिश्रण कह सकते हैं।

'श्री कृष्ण कीर्तन' की कहानी इस प्रकार है —

कस के निधन के लिये श्री हरि ने कृष्ण के रूप मे और लक्ष्मी ने राधा के रूप में जन्म लिया। नपु सक आइहन के साथ राधा की शादी हुई। पत्नी का उदीयमान रूप यौवन देखकर आइहन ने राधा को अपनी फूफी बडायि की देख रेख में रख दिया। राधा और उनकी सहेलियाँ बडायि के साथ दही दूध बेचने के लिये वन-पथ से होकर हर रोज मथुरा जाती थी। एक दिन बुढिया बडायि पिछड गई। राधा को ढूँढते ढूँढते उसने गायें चराते हुए कृष्ण को देखकर उससे राधा की बात पूछी। बडायि के मुँह से राधा के रूप यौवन का वर्णन सुनकर कृष्ण मुग्ध हुआ और कहा कि मुझे राधा से एक बार मिला दो। पर राधा इससे नाराज हुई, वह बडायि को भला बुरा कहने लगी। फिर भी एक दिन राधा ने निरुपाय होकर दैव का निर्बन्ध समझकर अनिच्छुक होने पर भी कृष्ण को आत्म-समर्पण किया। राधा से पुर्नमिलन की आशा से कृष्ण एक नाव बनाकर यमुना घाट पर घाटवाल बना। नदी के बीच में कृष्ण की शरारत से नाव डगमगाने लगी और डर के मारे राधा ने कृष्ण को आलिंगन किया। नाव डूब गई, राधाकृष्ण एक साथ यमुना में उतराने लगे। इस तरह नाना परिस्थितियो में राधाकृष्ण का मिलन होने लगा। अन्त में कृष्ण-विरागी राधा, कृष्ण-प्रेमिका बन गई। एक दिन मुरलीधर की बाँसुरी की मीठी आवाज ने राधा को बेचैन कर दिया। पर अब कृष्ण दिखाई नही देता। राधा रोने लगी। बडायि की चेष्टा से राधाकृष्ण का मिलन हुआ। रति सुख से थकी हुई राधा कृष्ण की गोद में सिर रख कर सो गई। तब कृष्ण ने बडायि को बुलाकर कहा—मेरा विशेष अनुरोध है कि तुम राधा को आदर से रखना, अब मैं मथुरा चला। यह कह कर कृष्ण अपनी गोद से राधा का सिर उतार कर मथुरा की ओर चले। नींद टूटने पर राधा ने देखा—कृष्ण नही है। दिन पर दिन, माह पर माह बीतने लगे, पर कृष्ण नही लौटा। इस तरह राधा के विरह मे ग्रन्थ की समाप्ति हुई।

'श्री कृष्ण कीर्तन' बंगला भाषा का प्राचीनतम कथाकाव्य ही नही, एक श्रेष्ठ कथाकाव्य भी है। इसकी भाषा बहुत पुरानी और दुर्बोध है। इसलिये साधारण पाठक इसमें रस नहीं पाते। किन्तु थोडी बहुत मेहनत करके जो पाठक इसमें प्रवेश करेंगे उन्हे कष्ट के अनुरूप पारितोषिक अवश्य मिलेगा।

इस ग्रन्थ में सिर्फ तीन चरित्र हैं—कृष्ण, राधा और बडायि। तीनो चरित्र अपनी अपनी विशेषता से सुस्पष्ट हैं। राधा चरित्र के विकास साधन में कवि ने जिस तरह के कौशल का परिचय दिया प्राचीन वंग साहित्य में वह विरला है। इस ग्रन्थ में राधा कृष्ण

कोई आध्यात्मिक जगत के नरनारी नही हैं हम जस साधारण प्राणी ह । इसलिये हमारे विचार से *श्रीकृष्ण कीतन' देव लीला का नहीं, मानव लीला का काव्य ह ।*

स्वय श्री चैतन्य देव चडीदास के काव्य का रसास्वादन करते थे। आज कल की दृष्टि से *'श्री कृष्ण कीतन कहीं-कहीं रुचिविगर्हित प्रतीत होता है* पर काव्य में कुछ ग्राम्यता दोष होते हुए भी यह स्वीकार करना पडेगा कि इसका रचयिता बडू चडीदास बगाल के श्रेष्ठ कविया में स एक है ।

भागवत श्री कृष्ण मगल

बगला में भागवत के आधार पर रचित काव्य 'श्री कृष्ण मगल' या 'श्री कृष्ण विजय' नाम मे परिचित है। इसके पहले जिन कथा काव्य के बारे में आलोचना की गई है वह श्री कृष्ण कीतन' मचमुच भागवत के आधार पर नहा रचा गया, वह एक स्वतन्त्र काव्य है। भागवत की कहानी के आधार पर लिखे हुए काव्या में से सब प्रथम है मालाधर वसु का 'श्री कृष्ण विजय' रचना काल १४७३ स १४८० ई० तक। ग्रन्थ की भाषा सरल है । साहित्य की दृष्टि से इसका स्थान ऊँचा न होने पर भी भागवत का पहला बगला अनुवाद तथा पौराणिक साहित्य का एक पुराना निदर्शन होने के कारण साहित्य के इतिहास में इसका एक *निराला स्थान* है। *श्री चतन्यदेव भी इस काव्य का रसास्वादन* करते थे ।

श्री कृष्ण विजय के बाद भागवत का अवलम्बन लेकर कथा काव्य रचना को एक नई प्रेरणा मिली। वह प्रेरणा है स्वय भक्ति रत्नाकर कृष्ण प्रेमोन्मत्त श्री चतन्य देव, (जन्म १४८६, मृत्यु १५३३ ई०)। षोडश, सप्तदश और अष्टादश शताब्दिया में बगला भाषा में भागवत रचना की धूम मच गई। एसे काव्या और कविया में निम्नलिखिता की गणना की जाती है —

ई० शताब्दी	कवि का नाम	काव्य का नाम
षोडश	भागवताचाय रघुपडित	कृष्ण प्रेम तरगिनी
	यह काव्य यथा सम्भव मूल पाठ से मिलता है। श्री चतन्य देव ने रघु पडित का भागवत पाठ सुन कर खुशी से उन्हें भागवताचार्य की उपाधि दी था ।	
षोडश	देवकी नन्दन सिंह	गोपाल विजय
षोडश	माधवाचार्य	कृष्ण मगल
षोडश	श्याम दास	गोविन्द मगल
षोडश	कृष्ण दास	कृष्ण मगल
सप्तदश	भवानन्द	हरिवश
अष्टादश	शकर चक्रवर्ती	गोविन्द मगल

२ रामायण

बगला रामायण के सब प्रथम कवि कृत्तिवास ओझा १५वी शताब्दी में जीवित थे। इनकी रामायण बगला साहित्य का एक प्रधान काव्य है। बगला में दो ग्रन्थ सबसे जनप्रिय

हैं, उनमे से एक है काशीराम दास का (सत्रहवी शताब्दी) 'महाभारत' और दूसरा कृत्तिवास की 'रामायण'। इन दो ग्रंथो को जैसा सम्मान मिला वैसा आदर किसी तीसरे बगला काव्य को प्राप्त नही हुआ। इस जनप्रियता के फलस्वरूप वह रामायण अपने मूल रूप मे नही मिलती, खासकर भाषा की दृष्टि मे उसमे बहुत परिवर्तन आ चुके हैं। लोगो के मुँह से बदलते-बदलते इसकी भाषा बिलकुल आधुनिक हो गई है।

कृत्तिवास ने वाल्मीकि रामायण का ठीक अनुवाद नही किया, उनकी रामायण एक नई सी रचना है। इसके बारे में विश्व कवि रवीन्द्रनाथ का कहना है—"मूल आख्यान का अवलम्बन लेकर बगाली कवि की लेखनी से रामायण एक स्वतंत्र काव्य-रचना बनी है। इस बगला काव्य मे कवि वाल्मीकि के समाज का आदर्श अंकित नही हुआ, इसमें पुरातन बगाली समाज प्रकट हुआ। कृत्तिवास के राम भक्तवत्सल हैं। ··· यहाँ तक कि विभीषण भी उनका भक्त है। उनके हाथ से मारे जाने के कारण रावण को भी वैकुंठ लोक मिला। कृत्तिवास की रामायण भक्ति की ही लीला है।" फिर भी साहित्यरस या भक्ति-रस की दृष्टि से कृत्तिवासी रामायण तुलसी रामायण के सामने ठहर नही सकती। सन् १८०३ ई० मे कृत्तिवास का काव्य सबसे पहले छपा था।

अन्यान्य रामायण

षोड़श शताब्दी में किसी रामायणकार का पता नही मिलता। सप्तदश शताब्दी में भी रामायणकारो की संख्या बहुत कम है। उनमें से उल्लेखनीय हैं:—

(१) बड़् नित्यानन्द आचार्य
(२) रामशकर दत्त
(३) चन्द्रावती

चद्रावती बगला साहित्य की पहली कवयित्री हैं। उनके पिता वशीदास चक्रवर्ती भी कवि थे। चन्द्रावती का कारुण्यमय जीवन लेकर ग्राम गाथा रची गई जिसका परिचय बाद को मिलेगा।

अष्टादश शताब्दी के रामायणकार:—

(४) फकिर राम कवि भूषण
(५) शकर चक्रवती
(६) रामानन्द यति
(७) रामानन्द घोष
(८) जगतराम राय

उन्नीसवी सदी के प्रथमार्ध मे कई रामायण ग्रन्थ लिखे गये जिनमे से सन् १८३१ ई० मे रघुनन्दन गोस्वामी की 'राम रसायन' विशेष उल्लेखनीय है। प्राचीन रामायण धारा के यही शेष प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। इसके बाद भी पद्य या गद्य मे रामायण का अनुवाद या स्वतत्र रचना हुई पर वे हमारी आलोचना के बाहर हैं।

३ महाभारत

बगला भाषा मे महाभारत की कहानी सबसे पहले सोलहवी शताब्दी के पहले पाद मे लिखी गई है। रचयिता हैं 'कवीन्द्र' परमेश्वर। बगला साहित्य के प्रख्यात विद्वान् डा०

सुकुमार सेन का कहना है कि आर्यावर्त के किसी दूसरे प्रादेशिक साहित्य में इतना पुराना महाभारत काव्य नहीं मिलता। चट्टग्राम के मुसलमान शासन-कर्ता परागल खां के आदेश से लिखे जाने के कारण यह महाभारत 'परागली महाभारत' नाम से भी विख्यात है। मूल महाभारत की तरह यह काव्य भी १८ पर्वों में विभाजित है। हां, परमेश्वर ने यह कहानी संक्षेप में लिखी। कवित्व की दृष्टि से ऊंचा न होने पर भी सर्व प्रथम महाभारत काव्य होने के कारण यह ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है।

अन्यान्य महाभारतकार

षोडश शताब्दी के अन्यान्य कवियों में इनका नामोल्लेख किया जाता है —

(१) श्रीकर नन्दी (२) रामचन्द्र खान
(३) पीताम्बर (४) द्विज रघुनाथ
(५) अनिरुद्ध राम सरस्वती।

सप्तदश शताब्दी —बंगला रामायण के प्रधान कवि कृत्तिवास पंचदश शताब्दी के थे। बंगला महाभारत के प्रधान कवि काशीराम दास षोडश शताब्दी के तीसरे पाद में पैदा हुए। सत्रहवीं शताब्दी के पहले दशक में (१६०२—१६१० ई० के बीच) उन्होंने महाभारत की रचना की। कृत्तिवास का रामायण की तरह काशीराम दास का महाभारत भी बंगालियों का जातीय काव्य है। रचना काल से लेकर वर्तमान काल तक यह समान आदर पाता आ रहा है। यह काव्य सबसे पहले सन १८०३ ई० में छपा।

सप्तदश और अष्टादश शताब्दियों के प्रमुख कवि यह हैं।

(१) कवीन्द्र नित्यानन्द घोष
(२) शंकर चक्रवर्ती
(३) राजेन्द्र दास

इनके अलावा महाभारत के छोटे बड़े आख्यानों के बहुत से कवि हुए हैं। पर किसी की रचना में ऐसी कोई विशेषता नहीं पायी जाती है जिससे उनका नामोल्लेख किया जाय।

(ख) अपौराणिक

उत्पत्ति की पृष्ठ भूमि—बंगाल के इतिहास में तेरहवीं शताब्दी के शुरू में ही मुसलमानों का राज्य स्थापित होगया। इसके पहले बंगाल के उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के लोगों के बीच एक बड़ा व्यवधान था। उच्च वर्ग के लोग आर्य या ब्राह्मण्यवादी थे, फिर निम्न वर्ग के लोग अनार्य या अब्राह्मण्यवादी। शिक्षा-संस्कृति धर्म उपासना भाषा और साहित्य में इन दोनों के बीच एक बड़ा अन्तर था। तुर्की मुसलमान मानो इस विवाद को मिटाने के लिये ही बंगाल में आये थे। विधर्मी विदेशी शक्ति को राजसिंहासन पर अधिकार करते देखकर ब्राह्मण्यवादी उच्च वर्ग को सुधि आ गई। वे समझ गये कि निम्न वर्ग से नफरत करने से काम नहीं चलेगा। इसी अवसर पर निम्न वर्ग के अपौराणिक देव देवियों की महिमा प्रचार के लिये आग्रह दिखाई दिया और उसी के फलस्वरूप मनसा,

चडी, धर्म ठाकुर प्रभृति अपौराणिक अनार्य देवताओ के माहात्म्य को प्रकट करने वाले कथा काव्य रचे जाने लगे। ये काव्य 'मगल काव्य' नाम से प्रसिद्ध हैं।

स्वरूप और प्रकार भेद—

जिन देवताओ को लेकर मगल काव्यो की कहानी वनी उनमे से मुख्य हैं मनसा, चडी और धर्म ठाकुर। ये सब निम्न वर्ग के देवता थे, उच्च वर्ग के लोग इन देवताओ को विशेप महत्व नही देते थे। ऐतिहासिक पडितो का कथन है कि वगाल देश मे तुर्की आक्रमण के पश्चात् तेरहवी शताब्दी में ही इन कहानियो ने जन्म लिया। समाज की सभी श्रेणियो में विशेपत· उच्च श्रेणी में अपने अपने देवताओ की पूजा प्रचार के लिये भक्त सम्प्रदाय ने जो कहानियाँ वनाई उन्ही के आधार पर मंगल काव्य रचे गये। ये कहानियाँ किसी सस्कृत पुराण मे नही थी, ये वंगाल की निजी कथाएँ हैं।

ऊपर की आलोचना से यह स्पष्ट है कि ये देवता सम्प्रदायवादी (Sectarian) थे और साम्प्रदायिक वोध से ही पहले पहल मंगल काव्य रचे गये। किन्तु आगे चलकर साम्प्रदायिक बधन टूट गया और सम्प्रदाय के वाहर के कविगण भी अपनी अपनी कवित्व-स्फूर्ति के लिये इन कहानियो का अवलम्ब लेने लगे। इसी तरह मगल-काव्य धीरे धीरे सम्प्रदायवादी काव्य न रहकर वगालियो का जातीय काव्य वन गया।

मगल काव्य प्रधानत. तीन प्रकार के हैं—मनसा मगल, चडी मगल और धर्म मंगल। बाद को इन काव्यो का समादर देखकर उनकी देखा देखी और भी कई पौराणिक तथा अपौराणिक देवताओ को लेकर मगल काव्य रचे जाने लगे। वंगला मे सस्कृत पुराणो का अनुवाद करने की प्रवृत्ति दिखाई दी पर साहित्य की दृष्टि से ये सब रचनाएँ उल्लेखनीय नही हैं।

१ मनसा मंगल कथा काव्य—

शिव भक्त चन्द्रधर या चाँद सौदागर मनसा के विरोधी थे। उन्होने मनसा की पूजा करने से इनकार कर दिया था। उस देवी के कोप से सौदागर के छ पुत्र समुद्र में डूव गये। सातवें पुत्र लखिन्दर के वड़े होने पर वेहुला के साथ उसका विवाह हुआ। फिर लखिन्दर भी साँप के काटने से मर गया। वेहुला एक वेडे पर स्वामी की मृतदेह लेकर स्वर्ग को गई और वहाँ सगीत और नृत्य कला से उसने देवताओ को सतुष्ट किया। देवताओ के अनुरोध और वहुला की कातरोक्ति से मनसा का क्रोव शान्त हुआ। वेहुला ने मनसा से प्रतिज्ञा की कि वह अपने ससुर चाँद सौदागर से मनसा की पूजा करायेगी। मनसा ने लखिन्दर और उसके छ. भाइयो को जीवित कर दिया। चाँद सौदागर ने पुत्र वधू के अनुरोध से वाये हाथ से मनसा की पूजा की।

मनसा मंगल के कवि—

मनसा मगल के प्रथम कवि हरिदत्त का सिर्फ नाम पाया जाता है, उन के काव्य का कोई पता नही। पूर्वी वगाल के विजय गुप्त और पश्चिमी वगाल के विप्रदास पिपिलाइ

थे। ये दा कवि पद्रहवी शताब्दी के अतिम दशक में मनसा मगल काव्य की रचना कर चुके थे। साहित्य की दृष्टि म इन की रचनाएँ उच्च कोटिकी नहीं हैं।

सोलहवीं शताब्दी में मनसा मगल के उल्लेखनीय कवि हैं वशीदास चक्रवर्ती और नारायण देव। मनसा मगल के कविया में वशीदास ही सवश्रेष्ठ ह। सस्कृतन पडित होते हुए भी कवि ने कही अनावश्यक पाडित्य का प्रदशन नही किया है। बगला साहित्य में वशीदास की ख्याति अपनी कन्या चन्द्रावती के कारण और भी बढ़ गई। चन्द्रावती ने पिता की कवित्व शक्ति पाई था और उन्हाने स्वय रामायण रचना के अलावा मनमा मगल की रचना में पिता की सहायता की। चन्द्रावता की जीवन कथा भी रोमाटिक है। (पीछे देखिये)। मनसा मगल के और एक श्रेष्ठ कवि ह दसवा शताब्दी के कवि क्षमानद। सन् १८४४ ई० में उनका काव्य मुद्रित हुआ।

२ चडी मगल कथा काव्य

चडी मगल कथा काव्य की चडी, शिकारी और पशुआ का देवी है। आगे चलकर इसके साथ प्रसिद्ध पौराणिक दवा दुर्गा (अार चडी) एकीभूत हो गई। इस तरह बगला चडी मगल में पौराणिक तथा अपौराणिक धाराआ का मिश्रण हुआ।

कहानी

चडी मगल कथा काव्य में दा स्वतत्र कहानियाँ मिलती ह—कालकेतु फुल्लरा कहानी और धनपति-खुल्लना कहानी।

कालकतु फुल्लरा कहानी—

एक दरिद्र व्याध की सतान कालकेतु न एक दिन मृगया के लिये जाकर कुछ न पाया, आखिर एक स्वण-कान्ति गोह का जीवित अवस्था में पकड कर घर ले आया। स्त्री फुल्लरा का खाजने के लिये कालकेतु बाहर निकला। इधर यह गोह एक सुदर तरुणी बन गई। फुल्लरा यह दृश्य दखकर विस्मय से अवाक रह गई। फुल्लरा ने भाँति भाँति से उस समझाया पर उस देवी ने चले जाने का भाव प्रदर्शित नहीं किया। आखिर वह तुष्ट हाकर व्याध-दम्पति का एक मूल्यवान अगूठी देकर अतध्यान हा गई। अगूठी बेचकर कालकेतु ने बहुत धन पाया और एक नये राज्य का स्थापना की। उस राज्य में एक धूर्त प्रवचक भाँडूदत्त भी आ बसा। उसने कालकेतु के विरुद्ध एक पडोसी राजा का उत्तेजित किया। कालकेतु क राज्य पर आक्रमण हुआ और वह पराजित हाकर बन्दी बनाया गया। अत में देवा चडी की कृपा से कालकतु का मुक्ति हुई और सारे देश भर में चडी पूजा का प्रचार हुआ।

धनपति-खुल्लना कहानी—

वणिक धनपति ने प्रथम पत्नी लहना के निःसतान होने के कारण खुल्लना स शादी का। थाड दिना बाद वाणिज्य के लिय धनपति का सिंहल जाना पड़ा। उस समय खुल्लना गभवती थी। धनपति न समुद्र में एक अपूर्व दृश्य देखा—कमल पर बैठी हुई एक तरुणी एक हाथी का खा रही थी और दूसरे ही क्षण उसे उगल रही थी।

धनपति ने यह कहानी सिंहल राजा को सुनाई, पर राजा ने जब वह दृश्य देखना चाहा तो धनपति राजा को दिखाने मे असमर्थ हुआ। अतः धनपति कैदी बनाया गया। बहुत दिनो बाद खुल्लना का पुत्र श्रीमत भी पिता की खोज मे सिंहल की ओर चला और समुद्र में श्रीमंत ने भी वही 'कमल में कामिनी' वाला अपूर्व दृश्य देखा। फिर पिता के समान वह भी राजा को दृश्य नही दिखा सका। श्रीमत को प्राणदंड की आज्ञा हुई। उधर पुत्र की विपत्ति की आशका से खुल्लना देवी चडी की उपासना करने लगी। अन्त मे देवी की कृपा से पिता पुत्र मुक्त हो गये। सिंहल राजा ने अपनी कन्या श्रीमत को व्याह दी, पिता पुत्र सुखी होकर स्वदेश लौट आये।

कवि परिचय

चडी मगल कथा-काव्य के प्रथम कवि है माणिकदत्त। इनकी रचना उच्च-कोटि की नही है। अनुमान किया जाता है कि ये पन्द्रहवी शताब्दी के कवि थे। चडी मंगल के द्वितीय कवि माधवाचार्य का काव्य (रचना काल सन् १५८० ई०) माणिक दत्त की रचना से कही अच्छा है।

चडी मगल के श्रेष्ठ कवि मुकुन्दराम चक्रवर्ती प्राचीन बग साहित्य के श्रेष्ठ कवियो में से एक है। उनके काव्य का रचना काल सोलहवी सदी का अन्तिम दशक है। तब से दूसरे किसी का चडी मगल अपना प्रभाव नही जमा सका। बंगला साहित्य के मध्य युग में मुकुन्दराम, मानवीय रूचि (human interest) और वास्तविकता (realism) के एकमात्र कलाकार है। चरित्राकन में वे अद्वितीय है। इन सब गुणो के कारण सभी समालोचक मुक्त कठ से स्वीकार करते है कि प्राचीन बगला साहित्य के कवियो में सिर्फ मुकुन्दराम में उपन्यास रचना की प्रतिभा थी। उन का चडी मगल काव्य सन् १८२३ ई० में मुद्रित हुआ। सत्रहवी और अठारहवी शताब्दियो में चडी मगल के बहुत से कवियो के नाम मिलते है पर मुकुन्दराम के काव्य का प्रचार हो जाने के पश्चात् दूसरे किसी का काव्य उल्लेखनीय नही रहा।

३. धर्म मंगल कथा काव्य

कवित्व की दृष्टि से धर्म मगल काव्य का स्थान मनसा मगल या चडी मगल से नीचा है।

धर्म ठाकुर की पूजा बगाल मे बहुत दिनो से प्रचलित है। तान्त्रिक सहजयान के साथ नाथपथी शैवयोगियो का धर्ममत और कुछ अनार्य धर्मविश्वास मिलकर धर्म पूजा का उद्भव हुआ। धर्म ठाकुर की पूजा समाज के निम्न जाति के लोगो में ही प्रचलित थी। ब्राह्मणादि उच्च वर्णो में धर्म पूजा नितान्त गर्हित थी। सत्रहवी सदी से धर्म ठाकुर ने शिव अथवा विष्णु अथवा दोनों के साथ एकीभूत होना आरम्भ किया और धीरे धीरे धर्म पूजा ब्राह्मण्य धर्म में गुप्त रूप से अपना स्थान अधिकृत कर बैठी। धर्म ठाकुर की कोई प्रतिमा नही है। कछुए के आकार का पत्थर ही उनका प्रतीक है।

कहानी

गौड़ेश्वर के अधीन सामन्तराज कर्णसेन के छ पुत्र इच्छाई घोष के साथ युद्ध में

मारे गये। तब कर्णसेन ने गौडेश्वर की साली रंजावती से विवाह किया और धर्म के अनुग्रह से रंजावती को लाउसेन नामक एक पुत्र मिला। इसी लाउसेन की करामात और 'ऐडवेंचर' लेकर बहुत सी उपकथाएँ रची गयीं, जो आधुनिक दृष्टि से बिलकुल अलौकिक और असंभव हैं। इसीलिये मनसामंगल और चंडीमंगल की कहानियों के समान धर्म मंगल की कहानी जनप्रिय नहीं है। फिर भी वीररसाश्रित काव्य होने के कारण बंगला साहित्य में धर्म मंगल का एक अनोखा स्थान है। किसी किसी का कहना है कि धर्म मंगल पश्चिम बंग का जातीय काव्य है। यह सच है कि अलौकिक कहानियों की समष्टि होते हुए भी धर्ममंगल काव्य में कई चरित्र विकसित हुए हैं। इस उपाख्यान के मूल में कई उपकथाएँ और शायद थोड़ी बहुत ऐतिहासिक घटनाओं का आभास है। पर इसको ऐतिहासिक काव्य नहीं माना जा सकता।

कवि परिचय

धर्म मंगल कहानी का प्रथम कवि मयूर भट्ट है, पर इस का काव्य नहीं मिलता। मयूर भट्ट के बाद खेलाराम और श्री श्याम पंडित के नाम लिये जाते हैं किन्तु इनके काव्यों का भी कोई पता नहीं। जिन कवियों के धर्म मंगल काव्य मिले हैं उनमें से सब प्रथम हैं रूपराम चक्रवर्ती। आप सत्रहवीं सदी के कवि थे। रूपराम ने आत्म परिचय और काव्य रचना का जो इतिहास दिया वह जितना सरल है उतना ही हृदयग्राही। रूपराम की देखा देखी परवर्ती काल के सभी कवियों ने अपनी अपनी काव्य रचना का इतिहास और आत्म परिचय दिया उनमें तत्कालीन बंगाली सामाजिक जीवन का सुंदर परिचय मिलता है।

रूपराम के अलावा सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में रामदास आदक सीताराम दास घनराम चक्रवर्ती नरसिंह बसु, माणिक राम गांगुली रामकांत राय प्रमुख और भी कई कवि पैदा हुए थे। उनमें से घनराम चक्रवर्ती का काव्य ही सबसे जनप्रिय रहा।

४ शिवायन या शिवमंगल काव्य

पंचदश और षोडश शताब्दियों के विभिन्न मंगलकाव्यों में शिव का प्रसंग मिलता है। ऐसा एक भी मंगल काव्य नहीं है जिसमें शिव का प्रकरण नहीं दिया गया। पर सप्तदश शताब्दी के पहले कोई स्वतंत्र शिवमंगल काव्य नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि शिव जी असाम्प्रदायिक देवता थे ऊँच नीच सभी समाजों में सम्मान पाते थे। अत किसी सम्प्रदाय में शिव महात्म्य का प्रचार करने का आग्रह नहीं था। अन्त में वैचित्र्यहीन मंगल काव्यों की धारा में थोड़ा नयापन लाने के लिये कवियों ने शिवायन या शिवमंगल की ओर दृष्टिपात किया।

बंगला साहित्य में शिव दो रूपों में दिखाई देते हैं—पौराणिक तथा अपौराणिक। धर्ममंगल चंडीमंगल, मनसामंगल प्रभृति काव्यों में अपौराणिक शिव का परिचय मिलता है। जब कि शिवमंगल में पौराणिक और अपौराणिक दोनों का मिश्रण हुआ।

शिवमंगल काव्य के प्रथम रचयिता द्विज रतिदेव सत्रहवीं सदी के कवि थे। इस धारा के श्रेष्ठ कवि रामेश्वर भट्टाचार्य ने १८वीं शताब्दी के पहले भाग में (सन् १७११ ई० में)

अपने काव्य की रचना की। इन के काव्य में साधारण मनुष्यों की घर-गृहस्थी के व्यापार अत्यन्त सहृदयता से वर्णित हुए हैं।

५. अन्यान्य मंगल काव्य

ऊपर लिखे हुए मगल काव्यों के अतिरिक्त सप्तदश और विशेष रूप से अष्टादश शताब्दी में पौराणिक तथा अपौराणिक बहुत से अप्रसिद्ध देवताओं को लेकर छोटे-मोटे मगल काव्य रचे गये, जैसे—षष्ठीमगल, शीतलामगल, गौरीमंगल, दुर्गामगल, सूर्यमगल, गगामगल, सरस्वती या सारदामगल, रायमगल।

इन देवताओं के अलावा सत्यनारायण अथवा सत्यपीर नामक एक नवीन देवता का आविर्भाव हुआ। मध्य युग में पीर एव फकीर हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सम्प्रदाय के लोगों से श्रद्धाभक्ति पाते थे। इसी कारण से पीर की उपासना दोनों धर्मों के मेल के लिये सेतुस्वरूप हुई। पीर और विष्णु एक हो गये। सत्यपीर की कहानी लेकर जो काव्य लिखे गये वे सब अष्टादश शताब्दी के हैं। घनराम चक्रवर्ती, रामेश्वर भट्टाचार्य, भारतचन्द्र राय जैसे प्रसिद्ध कवियों ने भी इस काव्य की रचना में हाथ लगाया था।

६ नाथ साहित्य

दसवीं शताब्दी से बगाल में नाथ सम्प्रदाय के एक शिवोपासक योगी सम्प्रदाय का परिचय पाया जाता है। इस सम्प्रदाय के आदि गुरु श्री मत्स्येन्द्रनाथ या मीननाथ के नाम से यह धर्म, नाथ धर्म से परिचित है। मीननाथ और उनके शिष्य-प्रशिष्यों के माहात्म्य को प्रकट करके जो अलौकिक कहानियाँ रची गयी थी वे नाथ साहित्य के नाम से प्रसिद्ध हुईं। यह साहित्य भी एक प्रकार से मगल काव्य है। क्योंकि इसमें साम्प्रदायिक देवताओं की तरह सम्प्रदायवादी गुरुओं की महिमा प्रकट की गई है।

नाथ साहित्य में दो कहानियाँ उपलब्ध हैं—(१) गोरक्ष विजय अथवा मीननाथ गोरक्ष नाथ की कहानी, (२) गोपीचद (गोविन्द चन्द्र) का गान अथवा गोपीचद-मैनामती की कहानी।

कहानी

पहली कहानी में देवी दुर्गा के छल से मीननाथ का मोह को प्राप्त होना और तत्पश्चात् उनके शिष्य गोरक्षनाथ द्वारा उनका उद्धार वर्णित है। गौरी देवी ने एक दिन मीननाथ को शाप दिया कि तुम जाकर कदली नारी के देश में राजा बनो। देवी के शाप से कदली देश में साधारण लोगों के समान मीननाथ के दिन कटने लगे। गुरु का यह हाल सुनकर गोरक्षनाथ ने नर्तकी का वेश धारण कर राजान्त पुर में प्रवेश किया। गोरक्षनाथ की चेतावनी से मीननाथ को सुध आ गयी। गोरक्षनाथ ने गुरु मीननाथ और उनके पुत्र बिन्दुनाथ को लेकर अपने स्थान को प्रस्थान किया।

दूसरी कहानी इस प्रकार है—राजा मणिकचन्द्र की विधवा पत्नी मैनामती सिद्ध हाडिपा (नामान्तर जालन्धरिपाथ) के माहात्म्य से मुग्ध होकर उनकी शिष्या बन गई एव अपने पुत्र गोविन्द चन्द्र से भी हाडिपा का शिष्य बनने के लिये उन्होंने अनुरोध किया। पुत्र ने अनेक आपत्तियाँ की पर अन्त में हाड़िपा की करामात देख कर वह राजी हो गया।

ाडिपा ने गाविन्दचन्द्र को शिष्य बना कर योगी सन्यासी बना दिया। नाना देशो में भ्रमण करके विशेष कष्ट पाकर राजा अपने देश को लौट आया एव गुरु की आज्ञा से सन्यास छोड़ कर उसने पुन गृहस्थ धर्म का अवलम्बन किया।

ये कहानियाँ बगाल में बहुत दिनो से प्रचलित थी। पर अष्टादश शताब्दी के पहले का कोई काव्य नही मिलता। गोरक्ष विजय के तीनो कवि—फजुल्ला भीमसेन और श्याम दास—अठारहवी सदी के थे। मनामता कहानी' के जिन तीन कवियो का नाम मिलता है—दुर्लभ मल्लिक भवानीदास सुकुर मुहम्मद—ये भी अठारहवीं शताब्दी के कवि है।

(ग) जीवनी-विषयक कथाकाव्य
श्री चैतन्य देव (१४८६ ई०—१५३३ ई०)

यह निर्विवाद है कि साहित्य रचना की दृष्टि से बगाल के इतिहास में श्री चैतन्य देव का आविर्भाव सर्वश्रेष्ठ घटना है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सिवा दूसरा कोई भी बगला साहित्य को इतना प्रेरणामय नही कर सका। इसीलिये एक पक्ति न लिखने पर भी श्री चैतन्य प्राचीन बग साहित्य के इतिहास में प्रधान पुरुष माने जाते है। उनके अलौकिक चरित्र और व्यक्तित्व ने केवल उनके भक्तो में ही नहीं साधारण जनता में भी विस्मयपूर्ण श्रद्धा और असीम भक्ति का उद्रेक किया। अपने तिरोधान के पूर्व ही वे ईश्वर मान कर पूजे जाने लगे थे और मृत्यु के बाद जीवनी काव्य में उनकी लीलाकथा परिकीर्तित होने लगी। इस तरह समसामयिक व्यक्ति के जीवनी काव्यो ने बगला साहित्य में एक नया रास्ता खोल दिया। श्री चैतन्य के जीवनी-काव्यो की देखा देखी उनके शिष्य प्रशिष्यो के जीवन लेकर काव्य रचे गये। पर यहाँ केवल चैतन्य जीवनी काव्यो का उल्लेख किया जाता है। ध्यान रहे कि ये काव्य भक्ति काव्य है और वे धर्म के प्रभाव से मुक्त नहीं है।

बगला में श्री चैतन्य की जीवनी से सबध रखने वाला प्रथम कथा काव्य वृन्दावन दास का 'चैतन्य भागवत' है। यह ग्रथ चैतन्य के जीवन काल में या उनके तिरोधान के थोड़े ही वर्षो बाद रचा गया। इस पुस्तक में श्री चैतन्य के आरम्भिक जीवन की कहानी सुन्दर भाव से वर्णित हुई है। दूसरे कवियो और काव्यों के नाम नीचे दिये जाते है—

कवि	काव्य
लोचनदास	चैतन्य मगल
कृष्णदास कविराज	चैतन्य चरितामृत
जयानन्द	चैतन्य मगल

ये सभी काव्य षोडश शताब्दी के बीच रचे गये थे। इनमें से कृष्णदास कविराज का 'चैतन्य चरितामृत' श्रेष्ठ है। इस का प्रथम मुद्रण हुआ सन् १८२७ ई० में।

(अ) धर्म-निरपेक्ष (Secular) कथा-काव्य

(घ) प्रणय विषयक काव्य

प्रणय विषयक कथाकाव्य की तीन धाराएँ हैं —

(१) हिन्दी-उर्दू-फारसी साहित्य से अनुवादित काव्य

(२) विद्या सुन्दर कहानी काव्य

(३) ग्राम गाथा काव्य

(१) हिन्दी-उर्दू-फारसी से अनुवाद

वंग भाषा में धर्म संस्कार मुक्त काव्य सबसे पहले सत्रहवीं सदी में रचा गया था। इसके पहले जो प्रणय सम्बन्धी कथा काव्य (जैसे बडू चण्डीदास का 'श्री कृष्ण कीर्तन') मिलते हैं वे धर्म संस्कार से मुक्त नहीं, युक्त हैं। उन कथा काव्यों के नायक-नायिका साधारण कोटि के नरनारी नहीं हैं, वे राधाकृष्ण, हर गौरी जैसे देव-देवी अथवा देवताओं के अनुगृहीत मनुष्य हैं।

धर्म निरपेक्ष कथा काव्य की चर्चा सबसे पहले शुरू हुई चट्टग्राम-अराकान अंचल में। अराकान की राजधानी रोसांग के राजा की मातृ भाषा मघी होने पर भी बंगला उनके लिये दूसरी मातृ भाषा थी। उनकी राजसभा के आश्रय में रहते हुए जिन्होंने मानवीय प्रणय सम्बन्धी कथा काव्यों की रचना की वे सब मुसलमान थे। इन मुसलमान कवियों में दो कवि—दौलत काजी और अलावल वंग साहित्य में सुप्रसिद्ध हैं।

दौलत काजी, अलावल और उनके अनुगामियों के प्रणय काव्य मौलिक नहीं हैं, हिन्दू, उर्दू, फारसी कहानियों पर आधारित हैं। इन काव्यों में से सबसे पहले उल्लेखनीय है दौलत काजी का 'सती मैना' (या लोर चन्द्रानी)। कहानी इस प्रकार है —

गोहारी देश के राजा विवाहित होने पर भी (उनकी पत्नी का नाम मैनामती है) मोहरा देश की राजकुमारी चन्द्रानी की तसवीर देखकर मुग्ध हो गये। चन्द्रानी भी विवाहिता थी। फिर भी चन्द्रानी के पति को मारकर लोर ने उससे शादी की और दोनों मोहरा देश में पति पत्नी के रूप में रहने लगे। इधर विरहिणी मैना ने एक ब्राह्मण की सहायता से अपने पति को पूर्वी बातों की याद दिलाई। लोर चन्द्रानी को लेते हुए मैनामती के पास पहुँचे।

दौलत काजी अपने काव्य में कहते हैं कि उन्होंने यह कहानी एक हिन्दी काव्य से ली है। यह काव्य समाप्त होने के पहले ही दौलत काजी चल बसे (सन् १६३८ ई० में)। उसके बीस वर्ष बाद सन् १६५८ ई० में इस अधूरे काव्य को अलावल ने पूरा किया।

अलावल का जीवन बहुत विचित्र है। वे दौलत काजी से भी बड़े कवि थे। अरबी, फारसी, हिन्दी, संस्कृत तथा बंगला इन पाँच भाषाओं में उनका अच्छा अधिकार था। संगीत और नाट्य कला में भी वे माहिर थे। उन्होंने कई ग्रन्थों का बंगला में अनुवाद किया जिन में से सब से अच्छा है 'पद्मावती'। हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध कवि मलिक

मुहम्मद जायसी के 'पद्मावत' के आधार पर रची गई यह पुस्तक (रचना काल १६४२—मूल काव्य के लगभग सौ वर्ष पश्चात्) अलावल की पहली और श्रेष्ठ कृति है। अलावल की दूसरी रचनाएँ ये हैं—'सफुल् मुल्क', वदी उज्जमाल, 'हफ्त पैकर, सिकन्दर नामा' वगैरह।

दौलत काजी और अलावल के अनुकरण पर बहुत मुसलमान और कुछ हिन्दू कवि अनुवाद काव्य रचने लगे। कुतबन ने हिन्दी में १५१२ ई० में मृगावती काव्य लिखा था। बंगाली कवि द्विज पशुपति ने उस कहानी को लेकर सत्रहवीं सदी में 'चन्द्रावली' काव्य लिखा। अठारहवीं शताब्दी में यह धारा बहुत जोरदार हुई और उन्नीसवीं सदी के मध्य भाग तक चलती रही। हिन्दी-उर्दू फारसी से जो कहानियाँ उस काल में बंगला भाषा में आई उनमें से निम्नलिखित कहानियाँ सुप्रसिद्ध हैं—मनोहर-मालती आख्यान, विक्रमादित्य की कहानी, द्वात्रिंशत पुत्तलिका, तुतिनामा उपाख्यान, बेताल पंचविंशति, आरब्य उपन्यास, गुल बकावली, हातिमताई, लैला मजनू, युसुफ जुलेखा इत्यादि।

२ विद्यासुन्दर कहानी काव्य

विद्यासुन्दर कहानी बंग देश की निजी कहानी नहीं है। इसका मूल रूप काश्मीरी कवि बिल्हण की संस्कृत कविता में और कवि वररुचि के संस्कृत नाटक में मिलता है। विद्यासुन्दर की कहानी इस प्रकार है—

सुन्दर नामक एक विदेशी राजकुमार एक मालिनी को दूती बनाकर राजकुमारी विद्या से छिप कर प्रेम करता है। विद्या की माता ने कन्या के गुप्त प्रेम की कहानी को जान कर अपने पति को सूचित कर दिया। राजा ने कोतवाल की सहायता से सुन्दर को पकड़ लिया और प्राण-दण्ड की आज्ञा दी। किन्तु अन्त में सुन्दर का वास्तविक परिचय पाकर राजा ने उसके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया।

बंगला साहित्य में विद्यासुन्दर काव्य साधारणतया 'कालिका मंगल' नाम से प्रसिद्ध है। इनमें सुन्दर कालिकादेवी का वरपुत्र है। मूल आख्यान में देवता का सम्पर्क नहीं था। परन्तु बाद में कहानी को सर्वसाधारण के ग्रहणयोग्य बनाने के लिये धर्म की छाप लगा दी गयी। पर यह कहानी मूलतः लौकिक है।

बंगला साहित्य में विद्यासुन्दर कथाकाव्य अठारहवीं सदी की ही देन है। इससे पहले विद्यासुन्दर काव्य के जिन कवियों का हमें पता चलता है उनमें से द्विज श्रीधर पंद्रहवीं शताब्दी के और कृष्ण रामदास प्राणराम चक्रवर्ती तथा साबिरिद खान सत्रहवीं शताब्दी के थे। अठारहवीं शताब्दी में विद्यासुन्दर काव्य रचना की धूम मच गई। पन्द्रहवीं शताब्दी से इस कहानी के बंगला भाषा में प्रचलित रहने पर भी अठारहवीं शताब्दी में इस कहानी का विशेष समादर होने का सामाजिक कारण है। बंगला साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान डा० सुकुमार सेन कहते हैं—"पतनोन्मुख मुसलमान सम्राट और नवाबों के दरबार के आडम्बर ने बंगाल के शिक्षित समाज के मन को धीरे धीरे प्रभावित और विपाक्त कर लिया था। समाज भी उस समय अयत्ननिमग्न था। अतएव इस समय की विद्यासुन्दर कहानी की विकृत रुचि में उन दिनों के शिक्षित और धनी श्रेणी के लोगों की रुचि का परिचय मिलता है।

विद्यासुन्दर काव्य धारा के श्रेष्ठ कवि भारत चन्द्र राय (१७१२–१७६०) न केवल अष्टादश शताब्दी के परन्तु समग्र बंग साहित्य के एक प्रधान कवि माने जाते हैं। सन् १७५२ ई० में इनका काव्य समाप्त हुआ। काव्य का नाम 'अन्नदामंगल' है, किन्तु यह कोई मंगल काव्य नहीं है। वास्तव में विद्यासुन्दर काव्य अन्नदामंगल काव्य का प्रधान अंश है। यह अंश रचना काल के उन्नीसवीं सदी के मध्य तक यानी सौ वर्ष तक बंगला का सबसे जनप्रिय कथाकाव्य था। सन् १८१६ में यह मुद्रित हुआ और तबसे इसके बहुत से संस्करण निकल चुके हैं।

शैली की दृष्टि से भारतचन्द्र का काव्य बंगला साहित्य में अनूठा है। छन्द और शब्द सम्पद इस काव्य के प्रधान गुण हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा कि राजसभा कवि भारतचन्द्र का यह काव्य राजगले पर मणिमाला जैसा है। जैसी चमक-दमक वैसी ही कारीगरी। संस्कृत, बंगला, हिन्दी और फारसी इन चारों भाषाओं के भारतचन्द्र पंडित थे। उन्होंने आवश्यकता के अनुसार इन चार भाषाओं के शब्द मिलाकर कहीं-कहीं एक नई रचना शैली बना ली। किन्तु रुचि की दृष्टि से भारतचन्द्र का काव्य उन्नत नहीं है। चरित्रचित्रण की दृष्टि से भी वह असफल रहा। संक्षेप में भारतचन्द्र का काव्य उस समय के शिक्षित बंगालियों की साहित्य-रुचि का प्रतिनिधि है।

३ ग्राम गाथा

(१) और (२) में उल्लिखित कथाकाव्य साहित्यिक दृष्टि से उन्नत और जनप्रिय होने पर भी बंगाल की अपनी कथा वस्तु के काव्य नहीं हैं। अब जिस श्रेणी के प्रणय कथा-काव्य के बारे में आलोचना की जायगी वह ग्रामीण बंगाल की खास चीज है। वह प्रणय कहानी बाहर की नहीं, बनावटी (या कवि कल्पना से बनी हुई) नहीं, कुदरती है। देहात के अनपढ सरल नरनारियों के बीच जो प्रेमलीला सनातन काल से चली आ रही थी उसी के आधार पर बहुत से कथानक रचे गये थे। पूर्वी बंगाल में प्रचलित ऐसी कहानियों का अच्छा संग्रह मिलता है बंगला भाषा और साहित्य के अग्रणी विद्वान डा० दिनेशचन्द्र सेन द्वारा सम्पादित 'मैमनसिंह गीतिका' (मैमनसिंह पूर्वी बंगाल का एक जिला है) और 'पूर्वी बंग गीतिका' में। इन चमत्कार पूर्ण ग्राम गाथाओं में से एक का परिचय दिया जाता है।

चन्द्रावती अपने पिता की एकमात्र सन्तान थी। उनके पिता वंशीदास चक्रवर्ती मनसामंगल काव्य धारा के कवि थे। निर्धन होने के कारण कवि मनसा की 'पाँचाली' गाकर अत्यन्त कठिनाई से दिन गुजारते थे। चन्द्रावती ने उत्तराधिकार में पिता की कवित्व-शक्ति पाई थी और मनसा मंगल काव्य की रचना में पिता की सहायता की थी। उन्होंने स्वयं रामायण काव्य भी लिखा था। बचपन में चन्द्रावती जयचन्द्र नामक एक पड़ोसी ब्राह्मण कुमार के साथ खेलकूद करती रहती थी और उसी ब्राह्मण कुमार से उनका विवाह तै हुआ। पर जयचन्द्र ने एक मुसलमान रमणी के प्रेम में आसक्त होकर धर्म परिवर्तन कर लिया। चन्द्रावती कुमारी रह गईं। रामायण काव्य की रचना में उनके दिन बीतने लगे। आखिर जयचन्द्र को चेत हुआ, वह अपनी भूल समझ गया और चन्द्रावती से शादी करने के लिये

कोशिश करने लगा। पर इस महीयसी महिला ने नदी में डूबकर अपने जीवन का दुःख मिटाया।

(ङ) ऐतिहासिक कथाकाव्य

यथार्थ ऐतिहासिक काव्य बंगला भाषा में बहुत कम पाये जाते हैं। षोडश और सप्तदश शताब्दियों में रचित जीवन चरित्र विषयक काव्यों को ठीक ऐतिहासिक काव्य नहीं कह सकते। बंगला साहित्य में उन काव्यों का अभिनवत्व तथा विशेषता स्वीकार करने पर भी यह मानना पड़ेगा कि वास्तव तथ्य चेतना की अपेक्षा उनमें भक्तिरस अधिक है। ऐतिहासिक काव्य का लक्ष्य है तथ्यनिष्ठा। इस दृष्टि से पहले ऐतिहासिक काव्य का नमूना मिलता है अठारहवीं शताब्दी में। तुर्की आक्रमण जैसी भारी घटना का भी कोई प्रभाव बंगला साहित्य पर नहीं पड़ा।

ई० १७४२–४३ में पश्चिमी बंगाल पर मराठों का अत्याचार चला। उस समय अलीवर्दी खान् बंगल बिहार उड़ीसा का नाजिम था। नागपुर के रघुजी भोंसला ने भास्कर पंडित की अध्यक्षता में एक फौज भेजा। मराठी दस्युओं के द्वारा पश्चिम बंगलुंठन और अंत में भास्कर पंडित का पराभव व निधन—इसी विषय पर गंगाराम दत्त नामक एक कवि ने घटना के आठ वर्ष बाद १७५१ में 'महाराष्ट्र पुराण' लिखा। महाराष्ट्र पुराण के अलावा ऐतिहासिक विषय पर (जैसे प्लासी का युद्ध) अठारहवीं सदी में और भी कुछ छोटे मोटे काव्य लिखे गये पर वे साहित्य की दृष्टि से उच्चकोटि के नहीं हैं।

श्रेष्ठ कथाकाव्य

शताब्दी	कवि	काव्य
पंचदश	कृत्तिदास ओझा	रामायण
पंचदश	बड़ु चंडीदास	श्रीकृष्ण कीर्तन
षोडश	वृन्दावन दास	चैतन्य भागवत
षोडश	कृष्णदास कविराज	चैतन्य चरितामृत
षोडश	मुकुन्दराम चक्रवर्ती	चंडी मंगल
षोडश	वंशीदास चक्रवर्ती	मनसामंगल
सप्तदश	काशीराम दास	महाभारत
सप्तदश	दौलत काजी	सती मैना (लोर चन्द्रानी)
सप्तदश	अलावल	पद्मावती
अष्टादश	रामेश्वर भट्टाचार्य	शिवमंगल
अष्टादश	घनराम चक्रवर्ती	धर्म मंगल
अष्टादश	भारतचन्द्र राय	विद्यासुन्दर (अन्नदामंगल)

आधुनिक काल

बंगला साहित्य में आधुनिक काल कथा काव्य का नहीं, प्रधानतः रीतिकाव्य का युग है। मोटे हिसाब से सन् १८०१ ई० से आधुनिक काल का सूत्रपात है। हाँ उन्नीसवीं सदी के मध्य भाग तक बंगला कथा काव्य में पुरातन और नूतन दोनों धाराओं का

मेलजोल हुआ। पुरातन धारा का परिचय पहले ही दिया जा चुका है। अंग्रेजी कथाकाव्यों के अनुवाद से नवीन धारा का श्रीगणेश हुआ।

आधुनिक बंगला कथा काव्य के प्रथम कवि है रगलाल बन्द्योपाध्याय (१८२७-१८८७) जो बचपन मे मधुसूदन दत्त के मित्र थे। रगलाल ने अग्रेज कवि स्काट, मूर और बायरन की रचनाओ से अनेक भाव आत्मसात् किये। देश-प्रेम से उनके काव्य में एक नवीन झंकार आगई। विषय-वस्तु की दृष्टि से उनके काव्य यथार्थ ऐतिहासिक कथाकाव्य माने जाते है।

रगलाल ने चार कथा काव्यो की रचना की थी —पद्मिनी उपाख्यान (१८५८), कर्मदेवी (१८६२), शूर सुन्दरी (१८६८) एव काची कावेरी (१८७९)। 'पद्मिनी उपाख्यान' की कथावस्तु चित्तौर के पतन से सम्बन्धित है। अग्रेज इतिहासकार टाड साहब के ग्रन्थ से मेवाड की रानी पद्मिनी और सम्राट अलाउद्दीन की कहानी ली गयी है। 'कर्मदेवी' और 'शूर सुन्दरी' की कथावस्तु भी राजपूत इतिहास की है। उड़ीसा के राजा पुरुषोत्तम देव और काची की राज कुमारी पद्मावती की कहानी लेकर 'कांची कावेरी' रचा गया है।

यद्यपि रंगलाल ने बगला कथा काव्यो में देश प्रेम लाकर विषय वस्तु का अभिनवत्व सचार किया, तथापि उनकी रचना छद और भाषा की दृष्टि से पूर्ववर्ती प्रथा के अनुसार थी। बगला साहित्य में वीररस की अवतारणा करने के मार्ग में बगला भाषा और छन्दो की ओजहीनता बडी भारी रुकावट थी। माइकेल मधुसूदन दत्त ने अपनी असीम प्रतिभा के सहारे इन दोनो रुकावटो का निराकरण किया। रामायण की कहानी के आधार पर उनका श्रेष्ठ काव्य 'मेघनाद वध' (१८६१) रचा गया।

उन्नीसवी शताब्दी के अतिम भाग में मधुसूदन के अनुकरण पर बहुतेरे व्यक्ति काव्य रचना में प्रवृत्त हुए थे। उनमें से किसी किसी को सामयिक प्रसिद्धि मिलने पर भी उनकी रचनाएँ आजकल नही पढी जाती। कवि हेमचन्द्र बन्द्योपाध्याय का 'वृत्तसहार' (१८७५) इस धारा की एक उल्लेख योग्य रचना है।

नवीनचन्द्र सेन (१८४७–१९०९) आधुनिक काल के अन्तिम और श्रेष्ठ कथाकाव्य रचयिता है। उन्होने ऐतिहासिक घटना, पौराणिक कहानी और महापुरुष का जीवन— इन तीनो विषयो पर अनेक उत्कृष्ट कथा काव्यो की रचना की है —

१. पलासी का युद्ध (१८७६)

इस ऐतिहासिक कथा-काव्य ने नवीनचन्द्र को रातोरात प्रसिद्ध कवि बना दिया—वे बंगाल के 'बायरन' कहलाने लगे।

२. रगमती (१८८०)

सप्तदश शताब्दी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर कल्पित इस कहानी मे उस समय के बगाल का चित्र अकित किया गया है।

कहानी के नायक वीरेन्द्र ने मुगल और पुर्तगीज के साथ लडाई की थी।

३ रेवतक (१८८६)
४ कुरुक्षेत्र (१८६३)
५ प्रभास (१८६६)

ये तीन काव्य वास्तव में एक ही काय के तीन स्वतत्र खड ह। इसमें कवि ने अपनी अपूव कल्पना से महाभारत को और श्रीकृष्ण का नवीन भाव से प्रकट किया है। उनका कहना है कि आय और अनाय सस्कृति के सघप के फलस्वरूप ही कुरुक्षेत्र का युद्ध हुआ एव इन दोना सम्प्रदायो का मिलाकर श्रीकृष्ण ने प्रेम राज्य को स्थापित किया। कवि के मत में श्रीकृष्ण का आदश था 'एक धम, एक जाति, एक मात्र राजनाति।"

६ खीष्ट (१८६०)
७ अमिताभ (१८६५)
८ अमताभ (१६०६)

इन तीन काया में क्रमश ईसामसीह बुद्धदेव और चैतयदव की जीवन-कहानी वर्णित है।

कुमारी सविता अग्रवाल

मराठी कथा-काव्य

कथा सुनने तथा सुनाने की प्रवृत्ति अत्यन्त प्राचीन काल से मनुष्य के मन में विद्यमान है। इस प्रवृत्ति के कारण ही प्राचीन काल में जब केवल पद्य रचनाएँ होती थीं तब भी पद्य में कथाएँ सुनाई जाती थीं, और यही कारण है कि साहित्य के सभी प्रकारों में कथाकाव्य प्रकार सबसे पुराना है। प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में अतीत गाथा, दिव्यकथा आख्यानक, पुराण, इतिहास आदि रूपों में कथा काव्य वर्तमान है। कदाचित् इन्हीं की परिणति आगे चलकर महाकाव्यों में हुई। संस्कृत के पश्चात् अन्य भाषाओं का उद्भव होने के उपरान्त संस्कृत काव्य की परंपरा की दृष्टि में रखकर अनेक भक्तों ने कथा काव्य की रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

मराठी की दृष्टि से विचार किया जाय तो मराठी में कथाकाव्य की रचना का प्रारंभ महानुभाव सम्प्रदाय के विद्वानों ने किया। महानुभाव सम्प्रदाय श्रीकृष्णोपासक था। श्री श्रीकृष्ण की लीलाओं का ध्यान चिन्तनादि स्वयं करना तथा दूसरों से करवाना, वे अपना परम कर्तव्य मानते थे। उन्होंने देखा था कि गूढ़ तत्त्वज्ञान कथा रस में घोलने से वह लोगों के हृदय तथा मन को सरलता से स्पर्श करता है। इन्हीं कारणों से उन्होंने कथा-काव्य की पद्धति को अपनाया। इस सम्प्रदाय के दामोदर पंडित जी ने सन् १२७८ ई० में 'वच्छहरण' की रचना की और यही मराठी का सर्वप्रथम उपलब्ध कथा-काव्य है। प्रस्तुत काव्य में अघासुर वध तथा ब्रह्माजी का गोपालों का गौएँ चुराना इन दो प्रसंगों का बड़ा ही सुंदर वर्णन हुआ है। दामोदर पंडित स्वयं मानते थे कि—

> 'असंख्यात कवि कुंकार। वानिनात निरंतर।
> परि नित्य नूतन मधुर। श्रीभागवती कथा॥
> जैसे अमृत नव्हे जुनें। उरग ना सांडेपन्हुरें सोनें।
> तैसे श्रीकृष्ण कीर्तीचें वानणें। सदा सुरस मधुर॥

(असंख्य कविसमुदाय सतत वर्णन करते हैं फिर भी श्रीकृष्ण कथा नित्य नयी एवं मधुर है। जिस प्रकार अमृत कभी पुराना नहीं होता या असली सुवर्ण की चमक घटती नहीं उसी प्रकार श्रीकृष्ण कीर्ति का वर्णन करना सदैव सुंदर तथा मधुर है।)

अतः उन्होंने 'संसार मोचक मुकुन्द' का सगुणरूप धारी निर्गुण परमात्मा का गुणगान किया। महानुभाव सम्प्रदाय के अन्य कवियों की भी यही धारणा थी। अतः मराठी कथा-काव्य

के प्रारभ में श्रीकृष्ण चरित्रात्मक काव्यो का ही आधिक्य दिखाई देता है । महदम्बा ने कृष्ण रुक्मिणी-विवाह के गीत गाये, भास्कर भट्ट बोरीकर ने शिशुपालवध का प्रसग बतलाया, उद्धवगीता सुनाई तथा नरेन्द्र कवि ने रुक्मिणी स्वयवर का वर्णन किया। बारहवी तथा तेरहवी शताब्दी में उपरोक्त महानुभावी कवियो के अतिरिक्त वारकरी सम्प्रदाय के ज्ञानेश्वर, नामदेव जैसे महान् संत भी हो चुके है। किन्तु ज्ञानेश्वरजी ने भक्ति को तत्वज्ञान का आधार दिया और नामदेव जी भक्ति-गीतो में ही तन्मय रहे। नामदेव की दासी जनाबाई ने हरिश्चन्द्राख्यान, प्रह्लादचरित्र, कृष्ण-जन्म, बालक्रीडा आदि कथाकाव्यो की रचनाएँ की।[1] किन्तु उसके अभग (भक्तिगीत) जितने प्रचलित है, उतने उसके कथाकाव्य नही। जनाबाई के अतिरिक्त अन्य सभी सतो ने तथा विद्वानो ने या तो अभग लिखे या गीता पर भाष्य लिखे।

चौदहवी शताब्दी में भीषण अकाल तथा मुसलमानो के आक्रमण ने महाराष्ट्र का समूचा जीवन अव्यवस्थित कर डाला। उस अस्थिरता मे लोगों को धीरज बँधाने के लिए रामकृष्ण की कथाएँ कतिपय कवियो ने सुनायी। किन्तु मुगलकालीन असहिष्णुता में बहुत सी रचनाएँ भस्म कर दी गयी। और आज उपलब्ध रचनाओ में एरहण कवि का 'अष्टविवाह' काव्य तथा चोभा कवि का 'उखाहरण' (उषाहरण) काव्य प्रसिद्ध है। उखाहरण काव्य वास्तव में ढाई हजार ओवीयो[2] का होगा किन्तु आज उसका केवल चौथा हिस्सा उपलब्ध है। 'अष्टविवाह' काव्य का सपूर्ण नाम है 'श्रीकृष्ण षोडशसहस्र विवाह अष्टस्वयंवरवर्णन'। इस काव्य के बारह भाग है और कवि ने बडे ही सुन्दर शब्दो मे श्रीकृष्ण के स्वयवरो एव विवाहो का रसमय वर्णन किया है।

इन्ही दिनो महाराष्ट्र में दत्त सम्प्रदाय का उदय हुआ। जीवन में अस्थिरता आ जाने के कारण अपनी सुरक्षा और आत्मशांति के लिए लोग अनेको देवताओं की उपासना करने लगे थे। कितने ही लोग धर्मान्तर करके मुसलमान हो रहे थे, तो कितनो ही पर बौद्ध तथा जैन धर्म का प्रभाव बढता जा रहा था। अत. ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनो के ऐकीकरण से उत्पन्न त्रिमुखी दत्तप्रभु की उपासना का नृसिंह सरस्वती ने प्रचार किया। शैव वैष्णवो का मतभेद मिटा कर लोगो को एक शक्तिशाली देवता की आराधना मे लगाकर उनकी स्वधर्म में आस्था बढायी। नृसिंह सरस्वती ने स्वयं कोई रचना नही की। पर उनके शिष्य सरस्वती गंगाधर ने 'गुरुचरित्र' लिखा। यह ग्रंथ काव्य की दृष्टि से बिलकुल साधारण है किन्तु दत्तोपासको के लिए अन्य कोई ग्रंथ न होने के कारण यही ग्रंथ उनके लिए पूज्य हो गया और आज भी महाराष्ट्र में लोग बड़ी श्रद्धा से इसका पारायण करते है। कथा-काव्य में अब तक रामकृष्णादि देवताओ की ही कथाएँ प्राय: सुनायी जाती थी किन्तु गुरुचरित्र की रचना से भक्तचरित्र भी आख्यानक कविता में सुनाने की प्रथा शुरू हो गयी। उद्धव चिद्धन ने 'ध्रुवचरित्र' लिखकर इसी प्रथा को आगे बढाया।[3]

---

१. महाराष्ट्र सारस्वत—पृ० १८३।
२. ओवी-महाराष्ट्र का एक छंद।
३. मराठी आख्यानक कविता पृ० २२.

दत्तसंप्रदाय के सबसे प्रसिद्ध संत हैं एकनाथजी। उन्होंने हिंदू संस्कृति की विपन्नावस्था देखी और स्वधर्म, स्वसंस्कृति की रक्षा करने की आवश्यकता उन्हें प्रतीत हुई। अतः उन्होंने प्राचीन ग्रंथभांडार से, भारतीय संस्कृति का आदर्श प्रदर्शित करनेवाली कथाएँ चुनकर अपनी सरल वाणी में लोगों को सुनायीं तथा लोकशिक्षा का, लोकोद्धार का काम किया। एकनाथ ने दत्तोपासक गुरु की दीक्षा अवश्य ली थी किन्तु उनके मन पर भागवतधर्म का अधिक प्रभाव पड़ा और यही कारण था कि उनकी ज्ञानयुक्त तेजस्वी वाणी ने भागवतधर्म की ही महिमा अधिक गाई। एकनाथ ने सर्वप्रथम तो 'चतुःश्लोकी भागवत' लिखी किन्तु उसके बाद 'रुक्मिणी स्वयंवर' की रचना की। इस कथा-काव्य के अठारह अध्याय हैं तथा लगभग दो हजार ओवीयाँ हैं। और इसकी विशेषता है कि एकनाथजी ने स्वयंवर की घटना में भी वेदान्त ढूंढ निकाला है। स्वयं कवि ने अठारहवें अध्याय में कहा है—

> "ये ग्रंथीचें निरोपण। जिवा शिवा होतसे लग्न।
> ग्रंथ पाहता सावधान। समाधान सात्त्विका॥"

(ग्रंथ का तात्पर्य यह है कि जीव शिव का विवाह हो गया, और प्रस्तुत ग्रंथ ढूंढने में जो सात्त्विक लोग दक्ष रहते हैं उन्हें संतोष की ही प्राप्ति होती है।) कृष्ण को कवि ने शिव माना है तथा रुक्मिणी को जीव माना है और संपूर्ण स्वयंवर की घटना का विवेचन गहरे ब्रह्मज्ञान की दृष्टि से किया है। रुक्मिणी स्वयंवर के अतिरिक्त एकनाथजी ने प्रह्लाद चरित्र, शुकाष्टक आदि कथाकाव्यों की रचना की। किन्तु उन कथाकाव्यों से उनको आत्मसंतोष न हुआ और उन्होंने 'भावार्थरामायण' की रचना करना प्रारंभ किया। काव्य की दृष्टि से देखा जाय तो उस में कल्पना की उड़ानें नहीं हैं। किन्तु व्यावहारिक चतुराई, गहरा अर्थ तथा सर्वव्यापी प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर है। एकनाथ के राम वाल्मीकि या तुलसी के भगवान राम नहीं हैं। उन्होंने तो समय को साथ देकर लोगों के सम्मुख व्यावहारिक आदर्श उपस्थित करने के विचार से लौकिक महापुरुष का चित्रांकन किया जिसमें देवत्व के गुणों की अपेक्षा मानव के ही गुण अधिक हैं। समाज को धीरज बँधाने के लिए ही उन्होंने इस ग्रंथ की रचना का प्रारंभ किया। किन्तु युद्धकाण्ड का चवालीसवाँ अध्याय पूरा होने से पूर्व ही उनकी इहलोक की लीला समाप्त हो गयी।

एकनाथजी ने मराठी में संपूर्ण रामायण सुनाने का यत्न किया किन्तु दैवगति से उनका कार्य पूरा न हो सका। नामा विष्णुदास ने मराठी महाभारत लिखा। मराठी में अब तक महाभारत के कुछ पर्व ही कवियों ने लिखे थे। नामा विष्णुदास ही प्रथम कवि थे जिन्होंने संपूर्ण महाभारत की मराठी में रचना की। इस कथाकाव्य की ओवी संख्या अठारह से बीस हजार तक है तथा जनता में उसका प्रचार भी बहुत रहा।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त पन्द्रहवीं शताब्दी में, जनीजनार्दन ने 'सीता स्वयंवर' लिखा, विठा रेणुकानंदन ने भी 'सीता स्वयंवर' का ही वर्णन किया, दासोपंत ने भी अपने टीकात्मक ग्रंथ के बीच बीच में कथाओं की फुलवारी लगाई, महालिंग दास ने—

'पचोपाख्यान', 'वेतालपचविसी' एव 'सिंहासनबत्तीसी' इन कथासंग्रहो को पद्य के आवरण से सुशोभित किया, कृष्णदास मुद्गल ने युद्धकाण्ड लिखा जिसका पारायण मराठा सैनिको द्वारा किलो पर होता था तथा कृष्ण याज्ञवल्की ने 'कथाकल्पतरु' की रचना की।

यहाँ तक हमने देखा कि प्राय सभी कथाकाव्यो की रचना भक्ति सप्रदायके सतो ने किसी विशिष्ट हेतु को सन्मुख रखकर की। यदि महानुभाव सप्रदाय के अनुयायियों ने अपने उपास्य देवता का गुणगान प्रेम मे तथा कर्तव्य बुद्धि से किया, तो चौदहवी शताब्दि के और पन्द्रहवी शताब्दि के पूर्वार्ध के कवियो ने बहुजनहिताय, भारतीय सस्कृति की रक्षा के उच्च हेतु से रामकृष्णादि की कथाएँ सुनाकर मृतप्राय समाज मे जीवन फूँका। यह कार्य करते समय उन्होने काव्य के कलापक्ष की ओर उतना ध्यान नही दिया जितना कि भावपक्ष की ओर। उसी प्रकार भक्ति तथा देवताओ की कथा सुनाने का लक्ष्य होने के कारण एकनाथजी के अतिरिक्त अन्य सतो और कवियो के काव्यो में तत्कालीन परिस्थिति का चित्राकन भी पर्याप्त मात्रा मे नही मिलता। किन्तु एकनाथ के बाद उनके प्रपौत्र मुक्तेश्वर ने महाभारत के आधार पर मराठी कथा-काव्य का प्रारभ किया और यही से कथा-काव्य के स्वर्णयुग का सूत्रपात हुआ।

मुक्तेश्वर प्रतिभाशाली कवि थे न कि सत। उनके हाथो में कथाकाव्य ने सुगठित शरीर प्राप्त किया। उनकी अधिक रचना तो काल-सरिता के प्रवाह में बह गयी और आज उनकी 'सक्षेप रामायण' ही पूर्ण रूप में मिलती है। शेष रचनाओं में महाभारत के केवल आदि, सभा, वन, विराट, सौप्तिक पर्व उपलब्ध है तथा 'गरुडगर्वपरिहाराख्यान','रभाशुकसवाद' 'कालियमर्दन' 'अहिमहि आख्यान', 'विश्वामित्रभोजन' आदि सक्षिप्त कथा-काव्य भी उपलब्ध हैं। किन्तु उनके काव्यगुणो का ज्ञान होने के लिए उपलब्ध रचना भी पर्याप्त है। इन रचनाओ से हमें ज्ञात होता है कि मुक्तेश्वर के काव्य का विशिष्ट गुण है—उनकी वास्तविक एवं सजीव चित्रमय वर्णन शैली। देखिये—

"शेप वेचता अठरा घटिका। पूर्व दिशेने क्षाळिले मुखा।
कुकुम रोखिले त्या तिलका। अरुणोदय बोलिजे॥
भार्गवाचार्य उदया येत। तंव अपार कमुनिया पंथ।
पुढें जान्हवीजकाचा वात। शीतळ, मंद पातला॥
कुक्कुट रव करितां का का। भये पळ सूटला उलुका।
भोग द्यावया चक्रवाका। चक्रवाकी चालितया॥
स्वैरिणी सांडोनि सखयांते। दूतीसहित त्वरे वहुते।
गृहा येऊनी स्वकर्मांते। संपादिती लौकिका॥
गगनसमुद्री मुक्ताफले। अरुणचंचुने कनकमराळें।
वेचोनि घेतां कळाकुशळे। नाहीच केली नक्षत्रे॥
की व्योमनर्मदेमाजी थोर। कार्तवीर्य सहस्रकर।
तारावाणलिंगांचा भार। निवटोनि करी परौता॥

कापडी चालिले तीर्थपथें । 'सोऽहमस्मि' चिंतिती ज्ञानें ।
भक्त स्मरति हरिहरातें । प्रमभावें आवडें ।।
शाक्त चिंतिती शक्तिप्रतिमा सौर म्हणति सूर्यचि आत्मा ।
गाणपत्य गणेशमहिमा । वाखाणिनी ब्रह्मत्वें ।।"

(ब्राह्ममुहूर्त की अठारह घटिकायें समाप्त हुई । पूर्व दिशा ने मुखमार्जन किया और अरुणोदय की तिलकरेखा अपने माथे पर अंकित की । अपार पथ का पार करते हुए शुक्राचार्य उदित हुए । जाह्नवीजल से परिसिक्त शीतलमंद अनिल आगे चला । कुक्कुटों ने 'का का' स्वरों में बाग दी । उलूक भयभीत हो गये । चक्रवाक, चक्रवाकी की ओर आनंद भोगने बढे । स्वैरिणी नायिकाएँ अपने सखाओं को छोड दूता सहित घर लौट आयी और अपने लौकिक कर्म करने लगी । किरण रूपी स्वर्णिम हंसों ने अपनी रक्तिम चंचुओं से गगन समुद्र के मुक्ताफल चुन लिये । नक्षत्र विलीन हो गये अथवा, महान सहस्रकर कार्तवीर्य ने व्योम गंगा के तारारूपी बाणलिंगों का भार लौटा दिया । यात्री तीर्थ पथ पर चल पडे । ज्ञानीजन सोऽहमस्मि' का चिंतन करने लगे । भक्तगण प्रेमभाव से भगवान का स्मरण करने लगे । शाक्तगण शक्ति का, सूर्योपासक सौर सूर्य का, और गाणपत्य गणपति का स्तवन करने लगे ।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि काव्य के शास्त्रीय गुणों से भी मुक्तेश्वर का काव्य परिपूर्ण है । फिर भी कथा काव्य की दृष्टि से वामन पंडित को उच्च स्थान देना पडता है । वामन पंडित बडे ही विद्वान् थे । गीता पर उन्होंने 'यथार्थ दीपिका' नामक टीका भी लिखी है । किन्तु पंडित होने पर भी उनके मन में भक्ति का स्रोत अविरत बह रहा था । इसीलिए गजेन्द्रमोक्ष, सीता स्वयंवर, बालक्रीडा राधाविलास, राधासुजग, कात्यायनीव्रत, वनसुधा आदि कथा काव्यों में उनके लिखे हुए श्लोक आज भी लोगों को प्रिय हैं । महाराष्ट्र सारस्वतकार वि० ल० भावे जी ने उनके बारे में कहा है, "इनके श्लोक पढने से ऐसा प्रतीत होता है कि वह मानवी कवि नहीं था, बल्कि भगवान का प्रिय तोता ही था । काव्य धेनु के मीठे दूध में कभी भक्तिरस कभी वात्सल्यरस, कभी करुणरस तो कभी अद्भुतरस को घोलकर, उसी में वेदांत का मेवा डालकर, एवं उस मिश्रण से बढ़िया मिठाई बनाकर हमें खिलाने वाला वह मानो कोई वल्लभाचार्य ही है ।' वामन पंडित शब्द योजना में सिद्धहस्त थे तथा उनकी वर्णनशैली भी असाधारण था ।

मुक्तेश्वर, वामन पंडित के अतिरिक्त सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में नागेश, मध्वेश्वर, निरंजनमाधव, महिपति आदि कथा-कवि हो गये हैं । किन्तु इन सब में अधिक प्रसिद्ध रहे—श्रीधर पण्डित । श्रीधर पण्डित ने हरिविजय रामविजय, पाण्डवप्रताप आदि अनेक काव्य लिखे । किंतु इन कवियों ने कथाएँ सुनाने के अतिरिक्त कथा काव्य को कोई नया मोड नहीं दिया । महिपति ने अवश्य संतचरित्र सुनाये पर संतचरित्र सुनाने की प्रथा का सूत्रपात तो पहले ही हो चुका था । महिपति ने कोई मौलिक काम नहीं किया ! वह काम तो रघुनाथ पंडित तथा सामराज ने किया । उन्होंने पुराणों के आधार पर रचना करने की प्रथा छोड कर संस्कृत महाकाव्य के स्वरूप की रचनाएँ करना प्रारंभ किया ।

रघुनाथ पडित के 'नल दमयती स्वयंवराख्यान' तथा सामराज के 'रुक्मिणी हरण' में हमें रस, रीति, ध्वनि, अलकार, प्रकृति वर्णन, धीरोदात्त नायक, आदि सस्कृत महाकाव्य की सभी विशेषताएं दिखाई पडती हैं। कथाकाव्य के विकास की दृष्टि से तो ये श्लाघ्य हैं। किन्तु इस स्वरूप की रचनाएँ करने की जब परपरा हो गयी तब उसमें दोष आ जाना स्वाभाविक ही था और वही हुआ। वामन पडित द्वारा निर्मित रसमय भावुकता का आदर्श, कला तथा भाव पक्ष का समन्वय करने की प्रवृत्ति पीछे हट कर, केवल कला पक्ष की ओर ध्यान देकर चमत्कृतियुक्त, नीरस पर पाण्डित्यपूर्ण रचनाएँ करने की नयी प्रथा प्रारभ हो गयी। इसका उदाहरण है—विट्ठल कवि की रचनाएँ।

इस प्रथा के सुदृढ होने का और भी एक कारण था। लोगो की कहानियो के प्रति रुचि देखकर कीर्तनकारो ने अपने कीर्तन में भगवद् भक्ति पर कथाएँ सुनाना प्रारभ कर दिया था। इस प्रकार कथा काव्य का क्षेत्र भी विस्तृत हो गया था। तब लोगों को अपना पाण्डित्य दिखाने की लालसा भी कवियो में बढ गयी और लोक शिक्षा का, भारतीय सस्कृति के उद्धार का, भगवद् लीला का प्रेमयुक्त मन से ध्यान करने का ध्येय पीछे हटकर, लोकप्रिय एव विद्वत्मान्य बनने की इच्छा पडितो के मन में खडी होना स्वाभाविक भी था। मोरोपत की कुछ रचनाओ के मूल में भी यही इच्छा हो सकती है। क्योंकि उनके कितने ही ग्रथो में केवल पाडित्य की अभिव्यक्ति है। किन्तु मोरोपत में केवल पाण्डित्य ही था, कवि प्रतिभा नही थी ऐसी बात नही। उनकी स्वतत्र प्रज्ञा के प्रतीक स्वरूप भी कितने ही ग्रथ हैं; जो चलती भाषा में लिखे हुए हैं तथा आज भी लोगो को प्रिय हैं। मोरोपत की मृत्यु सन् १७९४ ई० में हुई और उन्ही के साथ कथाकाव्य के एक प्रकार का—पौराणिक, धार्मिक—कथाकाव्य का, जो कि अब तक प्रचलित था अन्त सा हो गया। तथा कथाकाव्य के पोवाडा[1], लावनी[2], आदि जिन लौकिक रूपो की अब तक स्वतत्र रूप से वृद्धि हुई थी उनका अस्तित्व मात्र रह गया।

इसका तात्पर्य यह नही कि पोवाड़ा, लावनी इत्यादि मोरोपत के बाद ही प्रचलित हुए। कथाकाव्य के ऐतिहासिक, राष्ट्रीय स्वरूप के इन काव्य प्रकारो का वैसे सत्रहवी शताब्दी से ही अस्तित्व है। सब से पहला पोवाडा अज्ञानदास का लिखा हुआ मिलता है जिस में 'अफजल खाँ के वध' का प्रसग विस्तार सहित वर्णित है। अफजल खाँ के आगमन की वार्ता सुनने के पश्चात् शिवाजी महाराज ने क्या व्यवस्था की, किनसे वे मिले, कौनसे वस्त्र उन्होने पहिने, कौनसे अस्त्र अपने साथ रखे, किस प्रकार वे गढ के नीचे खान से मिलने गये और कैसे वध किया इन सारी बातो का ब्यौरा इस पोवाड़े में दिया हुआ है। दूसरा शिवाजी कालीन पोवाडा है तुलसीदास द्वारा रचित 'सिंहगढ़ का पोवाड़ा', जिसमें सिंह गढ की विजय का विचार कैसे उठा, यहाँ से लेकर सिंहगढ की विजय के पश्चात् महाराज ने तानाजी की अतिम क्रिया तथा उनके पुत्र रायबा का विवाह कार्य सपन्न कराया, यहाँ तक की पूरी कथा का विवरण है। तुलसीदास का यह पोवाड़ा अज्ञानदास के पोवाडे से काफी बडा है पर उसमें वह ओज नही जो अज्ञानदास के पोवाडे में है। किन्तु काव्य की

१. पोवाडा—एक छद जिसमे प्राय. वीरगाथा सुनायी जाती है।
२. लावनी—एक छद।

दष्टि से देखा जाय तो तुलसीदास का ही पोवाडा अधिक श्रेष्ठ है। शिवाजी के समय में और भी पोवाडा की रचना हुई हागी क्याकि बरसा से सुप्त महाराष्ट्रीय समाज में उस समय वीरता लहलहा उठी थी अद्वितीय उत्साह चारो ओर फल रहा था और पोवाडा की रचना के लिए यही परिस्थिति अनुकूल होती है। अत निश्चय ही उस समय वीरता के पुजारी गायक 'शाहार' चुप न रहे हागे। किन्तु आज उनकी रचनाएँ अनुपलब्ध ह। केवल शिवाजी कालीन रचनाएँ हा अप्राप्य ह, सा बात नहीं अपितु नानासाहब पेशवा के समय तक की सारी रचनाएँ काल के विशाल उदर में लुप्त हो चुकी ह। शिवाजी के पश्चात् रचनाएँ हुई ह या नही यह निश्चित रूप स नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उस समय देश पर विपत्ति के बादल मडरा रहे थे। इसलिए उस समय यदि शाहार भी चुप रहे तो उसमें काई अचभा नही। और काव्येतिहास का एक लम्बी चौडी दरार पार कर के हम नानासाहब के समय की एक दु खद घटना पानीपत की लडाई पर आ जाते ह। उस लडाई के कई पोवाडे ह जिनमें स सात आठ तो आज भी उपलब्ध ह।

पानीपत की पराजय के पश्चात महाराष्ट्र का भाग्यरवि जब पुन चमकने लगा तब शाहीरा की वाणी भी मुखरित हो उठी और—

> "धय य वश एकैक पुरुष कल्पवक्ष पिकले।
> शत वर्षे द्विज पक्षि आनद त्या तरुवर टिकल।
> जलचर, हैदर, नबाब सम्मुख रण करता थकले।
> ज्यानी पुण्याकडे विलोकिले त सपत्तिला मुकले।।"

(धन्य है वह वश जिसका प्रत्येक पुरुष फूले फले कल्पवक्ष के समान था। उन कल्प वृक्षो पर ब्राह्मण रूपी पछी आनद से मकडा वप रह। हैदर नवाब क सामन जल के जन्तु आमने सामने युद्ध करते करते हार गये। जिन जिन लोगा ने पूना की आर टेढा नजर से देखा वे सभी अपने धन से हाथ धो बठे।) यह बाल शाहारो के मुख स उत्स्फूर्त होकर निकले। इस युग के प्राय सभी शाहीरा न स्वतत्रता की समद्धि का अनुभव किया था। और यही कारण था कि हानाजीबाल, अनतफदी रामजोशी, प्रभाकर सगनभाऊ रामचद्र, परशराम आदि शाहीरों न माधवराव पेशवा का राज रमाबाई का सती हा जाना, नारायणराव का हत्या पूना का दरबार महाराष्ट्र का अकाल दूसरे बाजीराव का होली आदि अनका प्रसगा को गीता में गूथकर जनता को कभी हँसाया, कभी रुलाया और कभी उन्हें उत्साह प्रदान किया।

कथाकाव्य के लोकगीतात्मक स्वरूप का दूसरा प्रकार है—लावनी। लावनी में भा दो भेद हैं—वराग्यात्मक तथा शृगारिक। किन्तु शृगारिक लावनिया का ही आधिक्य होने स लावनी का रूपाय शृगारिक कथा-गीत हो चुका है। इन गीता में प्राय किसी विरहिणी की मनोव्यथा या किसी मयागिता के प्रेम की कहानी सुनाई जाती है। इनमें कथा अश प्राय बहुत ही कम हाता है और वणन का ही आधिक्य रहता है। कभी कभी

१ शाहीर—पावाडे लावनिया की रचना करन वाले।

हास्य रस का पुट भी गीतों को दिया जाता है।[1] होनाजी के 'एका राजाला कन्या झाली' (एक राजा के लड़की हुई) लावनी में और परशराम के 'दोघी नवति भांडति' (दो सौतें झगड़ने लगी) लावनी में हास्यरस पर्याप्त मात्रा में है। शृंगार के उन्माद में कहीं कहीं शाहीर, सभ्य समाज में जो बातें सुनाना बुरा समझा जाता है, वह भी सुना जाते हैं, मौला-श्लील के कूल तोडकर उनकी काव्य सरिता बहने लगती है। रामजोशी, मोतीराम आदि शाहीरों की कुछ लावनियाँ इसी प्रकार की हैं। अपने विकार कहीं तो उन्होंने स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किये हैं और कहीं राधाकृष्ण की रासलीला का वर्णन करने के बहाने व्यक्त किये हैं।

कथा-काव्य के लोक स्वरूप का तीसरा प्रकार है—लोकगीत। लोकगीतों में ध्रुव-प्रह्लाद जैसी पौराणिक, निलावती, छेल बटाऊ मोहना जैसी काल्पनिक तथा उमाजी और तय्याभलि जैसी ऐतिहासिक कथाएँ भी पद्य में गूंथी हुई पायी जाती हैं। कभी कभी तो 'एका ऐका व्रत एकादशी, राजापाशी होत्या गायीम्हशी' ऐसी व्रत कथाएँ भी सुनायी जाती हैं। किन्तु इन सभी कथा-काव्यों का संग्रह अभी तक न होने के कारण अलिखित स्वरूप के इस काव्य भांडार की समृद्धि ज्ञात होना कठिन है।

कथा-काव्य के लौकिक स्वरूप के इन तीनों प्रकारों में हमें महाराष्ट्रीय संस्कृति के दर्शन, धार्मिक कथाकाव्य की अपेक्षा अधिक ही होते हैं। इसका कारण है कि धार्मिक कथा-काव्य पर संस्कृत का सिक्का जमा हुआ था। शाहीरों में गहरी विद्वत्ता न होने के कारण वे संस्कृत के प्रभाव से बच गये। किन्तु तत्कालीन मुसलमानी वातावरण से वे अपने काव्य को मुक्त न रख सके। लावनियों में वर्णित शृंगार में हमें उसकी किंचित् झलक मिलती है। फिर भी समग्र दृष्टि से देखा जाय तो शाहीरों के गीत महाराष्ट्र के अपने हैं। उन्होंने अपने काव्य में महाराष्ट्र के रीति रिवाजों का, महाराष्ट्रीय लोगों के गुण-दोषों का, उनके स्वभाव का वर्णन किया है। महाराष्ट्रीय लोगों द्वारा परिचित उपमा—उत्प्रेक्षाओं की ही योजना की, बोलचाल की भाषा में ही अपने गीत गाये, महाराष्ट्र के वैभव से वे झूम उठे और देश के दुर्दैव पर वे रो उठे। उन्होंने जनता का मनोरंजन भी किया और उन्हें उत्साह भी प्रदान किया। अतः महाराष्ट्र के बहुजन समाज को पोवाड़े और लावनियों से ही आत्मीयता रही।

कथा-काव्य के उपर्युक्त सभी प्रकार सन् १८२० ई० तक, पेशवाई के अन्त तक प्रचलित रहे। सन् १८२० ई० के बाद महाराष्ट्र पर कंपनी सरकार का राज स्थापित हुआ। और रोते मन से 'विपरीत आढा काक मेरुला गिल्लेमुग्यानी' (कैसा उलटा जमाना आया है कि चींटियां अब मेरु पहाड निगलने लगी) गाने की नौबत शाहीरों पर आ पड़ी। शाहीरों की परंपरा के अन्तिम कवि थे—प्रभाकर तथा परशराम। इन दोनों के बाद बाकेराव उनकी परंपरा बनाये रखने के लिये लिखते रहे। किन्तु शाहीरों के आश्रयस्थान राजा उस समय अंग्रेजों के हाथ के खिलौने बन चुके थे, हिंदू पद पातशाही का ध्येय रखने वाले मराठा सिपाही नष्ट हो चुके थे, परतन्त्रता के कारण जनता हतोत्साह हो चुकी थी। ऐसी परिस्थिति में शाहीरों की परंपरा का जीवित रहना भी कठिन था। और शाहीरों की परंपरा टूट गयी।

---

१ आधुनिक मराठी कविता पृ० ५१

आधुनिक युग में, बीसवी शताब्दी के पूर्वार्ध में कुछ राष्ट्रवादी कवियों ने शाहीरा की पद्धति के गीत लिखने का प्रयास किया किन्तु उनकी तथा शाहीरा की रचना में बहुत अन्तर है। पुराने शाहारी गीतो में तत्कालीन परिस्थिति का प्रत्यक्ष चित्रांकन था, तो आधुनिक कविता में गत इतिहास की कल्पना प्रसूत परछाही है।

मराठाशाही के अस्त होने से शाहीरी परपरा नष्ट हो गयी। किन्तु भक्ति परपरा फिर भी बनी रही। क्योकि वह शाहीरा की तरह राजाओ के आश्रय से बढी नही थी। इसके अतिरिक्त भक्ति रस का मानव के मन में स्वतत्र अस्तित्व है। शाहीरा के पोवाड, लावनिया का आधार वीर तथा शृगार रस था। अग्रेजी साहित्य के प्रभाव से मराठी काव्य में जो नये साहित्य प्रकार आये उनमें से राष्ट्रीय कविताओ में पोवाड तथा प्रेम गीतो में लावनिया विलीन हो गया। भक्ति का ऐसे किसी नये प्रकार ने अपने में समा नही लिया। अत उसकी परपरा बनी रही। किन्तु इस परपरा में भी कथाकाव्य लिखने की परपरा नष्ट हो गई और छोटे छोटे भजनो की रचना की गयी।

इस प्रकार हम देखते है कि सन् १८२० ई० के लगभग कथा काव्य की पुरानी परपरा नष्ट हो गयी और नयी परपरा का उद्भव हुआ। इस परपरा का प्रारभ पडित कवियो ने सस्कृत महाकाव्यो के अनुवादो से किया। कृष्ण शास्त्री चिपलूनकरजी ने मेघदूत तथा करुणाविलास का अनुवाद किया गणशशास्त्री लेले ने रघुवश' 'अमरुशतक, महिम्नस्तोत्रका' अनुवाद किया दातार ने कुमार सभव का भाषातर किया। और भी कई कवियो ने सस्कृत काव्यो के तथा नाटको के अनुवाद किये। कथाकाव्य की दृष्टि से इन अनुवादो का यही लाभ हुआ कि आध्यात्मिक पौराणिक कथाओ के नगर में घूमने वाले काव्य देवता का रथ अभिजात सस्कृत ललित कृतियो के उपवन में विहार करने लगा।

किन्तु उस विहार से भी लोगों का मन शीघ्र ही भर गया और अग्रेजी का अध्ययन किये हुये पडित आगे बढे। उन्होने अग्रेजी काव्यो का अनुवाद करना प्रारभ कर दिया। छोटी छोटी कविताओ के कितने ही अनुवाद हुये। पर सबसे अधिक महत्वपूर्ण अनुवाद है—श्री० प्रधान कृत स्कॉट के लेडी ऑफ दि लेक का अनुवाद 'दवसना'। इस अनुवाद का परिणाम यह हुआ कि मराठी कथा काव्य में ऐतिहासिक खड काव्य का युग अवतीर्ण हुआ। कुटे ने 'राजा शिवाजी' की रचना की, कानिटकर ने 'कृष्णाकुमारी' काव्य लिखा, तथा वनवासी ने हम्मीर' काव्य की रचना की। इन सभी कवियों ने स्कॉट का आदर्श सामने रखकर उसके अनुसार अपनी रचनाएँ करने का प्रयत्न किया।

स्कॉट के बाद टेनिसन के सामाजिक कथा-काव्य के युग का निर्माण हुआ। श्री कानिटकर जी ने टेनिसन के 'प्रिंसेस' का 'इदिरा' नाम से अनुवाद किया और कथाकवियों को एक अभिनव विषय भांडार खोल दिया। आज भी इसी भाडार के रत्न कवि प्रकाशित करते है। सावरकरजी का गोमतक' गिरीश के अभागी कमल' तथा आवराद' माधव ज्यूलियन का 'सुधारक', यशवंत का 'बदिशाला', मायादेव की 'सुधा', पाठक का 'शशिमोहन'—आदि सभी कथाकाव्य का महल सामाजिक समस्याओ पर ही खडा हुआ है। इनमें से कुछ तो राष्ट्रीयता के तथा मानवता के विशाल दृष्टिकोण से भी परिपूर्ण है। रुचिवैचित्र्य के लिए

कुछ भावगीतात्मक कथा काव्यो की भी रचना की गयी हे। जैसे यशवत का 'जयमङ्गला' काव्य या माधवज्यूलियन का 'विरहतरङ्ग' काव्य।

आधुनिक युग मे राष्ट्र प्रेम की अभिव्यक्ति करने वाले तथा राष्ट्र का गत वैभव सुनाने वाले कथागीतो की भी काफी रचनाएँ हुई। शाहीरो की परपरा पहले तो श्री प्रधान द्वारा स्थापित तथा श्री कुटे द्वारा वर्धित ऐतिहासिक खडकाव्यो में विलीन हो गई और आगे चलकर केशवसुत ने जब मराठी कविता मे नया युग शुरु किया तब उसी की परिणति राष्ट्रीय कथागीतो में हुई। सावरकर, गोविंद, अनततनय टेकाडे, खाडिलकर, नानिवडेकर, मुचाटे, अमरशेख आदि आधुनिक कवियो की रचनाएँ पोवाडो जैसी ही हैं। किन्तु पोवाडो में और इन कथाकाव्यो मे भेद यह है कि आधुनिक पोवाडे साहित्यिक स्वरूप के हैं और शाहीरो के पोवाडे लोकसाहित्य के स्वरूप के थे। इसके अतिरिक्त आधुनिक पोवाड़ो मे सूक्ष्म मनोवेगो का विश्लेषण है, चित्रमय वर्णन है, उनकी भाषा परिमार्जित है और रचना कसी हुई है। उनमे केवल कथा या वर्णन नही अपितु देशभक्ति की भावना भी है। यही कारण है कि वे एक दृष्टि से पुरानी परपरा के होते हुए भी मौलिक तथा आधुनिक हैं। गोविदाग्रज की 'पानिपतचा फटका', तिवारीजी के 'सग्राम गीत', कवि माधव की कविताएँ, अज्ञातवासी की 'दशहरे की सवारी', कुसुमाग्रज की 'सात', कुजविहारी की 'तानाजी मालुसरे', आदि कविताएँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

इन सारी कविताओ ने स्वतत्रता-सग्राम के समय जनमन पर अधिकार जमा रखा था, किन्तु अब स्वाधीनता के बाद हमारी समस्याओ के परिवर्तन से जनता की रुचि में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक ही था। आज तो लघु कथा-काव्य का अधिक आकर्षण है। वैसे देखा जाय तो कथाकाव्य के प्राय- सभी प्रकार अब पीछे हट चुके हैं। फिर भी अन्य सभी प्रकारो से लघु कथा-काव्य प्रकार अब भी थोडा बहुत प्रिय हैं। कथाकाव्य के प्रस्तुत प्रकार में कथा का अश बहुत ही थोडा रहता है, प्रसग एकाध होता हे, पात्र भी दो-चार से अधिक नही रहते और सूक्ष्म वर्णन शैली का भी प्राय अभाव ही रहता है। किन्तु कवि अपनी कथन शैली के कारण ही पठनीय होता है। कवि चद्रशेखर ने इस क्षेत्र मे काफी सफलता प्राप्त की थी। अपनी प्रतिभा से और निवेदन-पद्धति से वे पाठको को आसानी से कविता की ओर खीच लेते थे। यही कारण है कि उन की 'उघड गुपित', 'किस्मतपूरचा जमीनदार', 'काय तो चमत्कार' आदि कविताएँ आज भी लोग भूले नही हैं। वा० ना० तिलक की 'सुशीला', विनायक कवि की 'वीरमति', 'व्यास तो भास', 'गणिकोद्धार', 'पन्ना', 'तारा' आदि; बी कवि की 'थोराताची कमला', तावे की 'पुंगीवाला','राजकन्या' व 'तिची दासी', सावरकरजी की 'कमला', सोपानदेव चौधरी की 'देवाच्या दारी', वा० भा० पाठक की 'शिवराज आणि बालवीर'; ग० दि० माडगूळकर की 'कृष्णाकाठी' आदि कविताएँ प्रसिद्ध हैं। किन्तु आज वा० ना० देशपाडे जी इस क्षेत्र मे प्रसिद्ध है। उनकी 'भारती' कविता में कल्पना की ऊँची उडान है, 'सोहागरात' मन के तार कपित कर डालती है, 'देवानां पिय' तथा 'तरलेले वेद' करुण कविताएँ होने पर भी शातरस की अनुभूति कराती हैं और 'कपटवेष' का नाट्य कवि प्रतिभा की सुन्दर अभिव्यक्ति करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बारहवी शताब्दी मे श्री कृष्णोपासना से उदित कथाकाव्य

के स्रोत ने सत्रहवीं अठारहवीं शताब्दी तक एक विशाल सरिता का रूप धारण कर लिया, तथा उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में उसी सरिता की कई धाराएँ स्वतंत्र रूप से बहने लगी। केवल कथानक या विषय की दृष्टि से ही नहीं अपितु शैली की दृष्टि से भी एक वृक्ष की कई शाखाएँ फूट निकली। मुक्तेश्वर तक की रचनाएँ प्राय ओवी, अभंग, दिंडी, साकी जैसे सादे छंदों में ही लिखी गई। ये सभी छंद महाराष्ट्र के अपने हैं जिनके स्वरूप लौकिक अधिक रहे। महाराष्ट्र के लोकगीत प्राय इन्हीं छंदों में हैं। रचना की दृष्टि से आसान और गेय होने के कारण जनता में इनका काफी प्रचार रहा। ओवी छंद के चार चरण होते हैं, वर्ण या मात्राओं की संख्या का नियम नहीं है। किन्तु साधारणतया प्रथम तीन चरणों में आठ आठ अक्षर और चौथे चरण में सात अक्षर होते हैं। यमक भी पहले तीन चरणों में ही होता है। दिंडी चार चरणों का विषम मात्रावृत्त है जिसके प्रत्येक चरण के अन्त में यमक होता है। साकी दो चरणों का विषम मात्रावृत्त है जिसके दोनों चरणों के अंत में यमक होता है। अभंग अक्षर वृत्त है जिसके दूसरे तथा तीसरे चरण के अंत में यमक होता है। इन सभी छंदों में ओवी का स्थान वही रहा जो कि संस्कृत में अनुष्टुप छंद का है। लोकप्रियता के साथ ही साथ कथा प्रवाह को सरलता से आगे ले जाने की क्षमता होने के कारण लोकोद्धारार्थ उद्यत संतों ने प्रभुमहिमा प्राकृत जनों को सुनाने के लिए सर्व सुलभ ओवी छंद का ही उपयोग किया। ओवी में वस्तु काव्य की चमत्कृति नहीं दिखाई देती। किन्तु कवियों ने अपनी भक्ति रस में घुली प्रतिभा के कारण उसे काव्य के इतिहास में ऊँचा पद दे रखा है।

मुक्तेश्वर के पूर्व प्राय सभी कथा-काव्यकारों के सामने रामायण, महाभारत, भागवत का आदर्श था और राम, कृष्ण की भक्ति में लीन होकर वे अपने को धन्य समझते थे। यही कारण था कि उनमें भावपक्ष प्रबल था और उनके अंतःकरण के भाव सीधी-सादी शैली में प्रगट हुये थे।

मुक्तेश्वर के पश्चात् कला पक्ष का महत्व बढ़ता गया। कवि विविध वृत्त तथा अलंकार योजना करके परिश्रम पूर्वक रचनाएँ करने लगे। रघुनाथ पंडित की शैली में जो कथाकाव्य का विकास पाया जाता है वह तो सराहनीय है। किन्तु यही शैली आगे चल कर अत्यधिक अलंकारों के तथा प्रौढता के कारण बोझिल बन गयी जिससे कहीं कहीं कथाप्रवाह शिथिल हो गया।

कथाकाव्य का धार्मिक पौराणिक अंग जब इस प्रकार विकसित हो रहा था तभी लौकिक स्वरूप का अंग भी परिपुष्ट हो रहा था। पोवाडा एवं लावनी दोनों गाकर सुनाने के काव्य प्रकार होने के कारण ही उनकी रचना जाति जैसे गेय छंद में की जाती थी। पोवाडा की अपनी स्वतंत्र तर्ज भी है। साधारणतया पोवाडे में २८ ३० छोटे छोटे चरणों के बाद तर्ज पलट कर सुनाने की कुछ पंक्तियाँ और उसके बाद ध्रुपद की रचना होती है। इन सबों को मिल कर जो एक हिस्सा बनता है, उसी को चौक कहा जाता है और ७ ८ चौक को मिल कर एक पोवाडा बनता है। पोवाडे की इस रचना में तो कोई परिवर्तन न हुआ। किंतु उसके सुनाने की रीति का अवश्य विकास हुआ। पोवाड़े, लावनियाँ प्राय भांडों के इकतारे की ध्वनि में करताल के साथ सुनाकर श्रोताओं के मन में वीररस का प्रादुर्भाव किया जाता था। किंतु जब पोवाडे,

लावनिया केवल बहुजन समाज के सस्ते मनोरंजनार्थ न रह कर सरदारो की बैठक मे प्रवेश पा गयी तब ताल सुर मे उन्हे गा कर सुनाने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। अत शाहीर अपने गीतो की रचना विभिन्न रागो मे करने लगे। इन्ही दिनो भाषा की दृष्टि से भी पोवाडे, लावनियो का विकास हुआ। प्रारभ मे पोवाडे, लावनियो को रचना करने वाले कवि प्राय निम्न श्रेणी के होते थे। अतः उनकी भाषा परिमार्जित न थी, रचना सुगठित न थी और उपमादि अलकारो ने उनका काव्य सजा हुआ न था। किन्तु आगे चलकर पेशवाई मे ब्राह्मणो ने भी इन काव्य प्रकारो की ओर ध्यान दिया। बाबू सवाई, रामजोशी, अनतफदी, बापू कोन्हेर, दादा बीर, प्रभाकर आदि ब्राह्मण कवि पोवाडे और लावनियो की रचना करने लगे। इतना ही नही बल्कि इनमे मे कुछ शाहिरो ने तो स्वय अपने गीत गाकर सुनाना प्रारभ कर दिया, जिसके कारण इन काव्यप्रकारो का महत्त्व बढता ही गया यहाँ तक कि कथा-कीर्तन मे भी वैराग्यात्मक लावनियो का समावेश होने लगा।

आधुनिक युग में जब कविता का समूचा ढाँचा पलट गया, तब आधुनिक कविता के समस्त लक्षण आधुनिक कथा-काव्य के भी लक्षण रहे। सक्षिप्त रचना, विविध अलकारो का, वृत्तो का त्याग तथा मुक्तछद की प्रवृत्ति, आदि नई कविता की विशेषताएँ कथा काव्य में लक्षित होती है।

नई कविता पुरानी परपरा को छोड कर नये पथ का अनुकरण करने लगी; और यही कारण था कि आधुनिक समय में कथा काव्य की रचनाएँ बहुत कम हुई। मराठी साहित्य के प्राचीन एवं मध्य युग का अधिकाश कथा-काव्य ने ही व्याप्त कर रखा है और जीवन के लिए उनका निर्माण होने के कारण व लोकप्रिय भी काफी रहे। किन्तु आत्माभिव्यक्ति का महत्त्व जैसे जैसे बढता गया वैसे वैसे तटस्थ की भूमिका से लिखे गये कथाकाव्यो के प्रति रुचि घटती गयी। गद्य साहित्य के विकास से तथा मुद्रण की व्यवस्था से भी कथाकाव्य लोगो को रसविहीन सा प्रतीत होने लगा। कवि तथा पाठक दोनो को ही कथाकाव्य की रचना और उसका पढना परिश्रमसाध्य प्रतीत होने लगा। इस विचार-धारा के कारण, यद्यपि मराठी के प्राचीन कालखंड में कथाकाव्य की समृद्धि लक्षित होती है, तथापि आधुनिक कालखड उस दृष्टि से पिछडा हुआ ही रहा। हिंदी कथाकाव्य के बिल्कुल विपरीत स्थिति मराठी कथाकाव्य की रही। हिन्दी का प्राचीन कालखड कथा-काव्य की दृष्टि से उतना समृद्ध नही रहा जितना कि मराठी का। किन्तु आधुनिक कालखड में साकेत, यशोधरा, कामायनी, पार्वती जैसी रचनाएँ हिन्दी कथा-काव्य में चार चाँद लगा रही हैं, प्राचीन पौराणिक कथाओ को अर्वाचीन दृष्टि से आँका जा रहा है, और उनका नया मूल्याकन हो रहा है, किन्तु मराठी मे तो कथाकाव्य की गति कुठित हो गयी है और निकट भविष्य में उसकी वृद्धि होने की कोई आशा नही।

श्री अच्युतन

मलयालम में कथा-काव्य

मलयालम साहित्य का प्रारभ गीतात्मक था। उन दिनो भाषा का मौलिक स्रोत अधिकाधिक विशद एव महत्वपूर्ण हो रहा था। द्राविड गोत्र में वह अपना व्यक्तित्व अकित कर रहा था, अपना अलग अस्तित्व ढूढ रहा था। ये गीत उसी समय रच गये थे। इन में या तो इष्टदेव की महिमा लहरें लेती थी या किसी राजा के प्रेम और वीरता की फुलझडी जल उठती थी। इन में कथा की पूर्णता नही थी किन्तु उस की कणिकाएँ अवश्य विद्यमान थी।

प्रथम कथा काव्य—

धीरे धीरे देश में राजनैतिक परिवर्तन हुआ। पेरुमालो का आधिपत्य समाप्त हो गया। केरल की एकता का सूत्र शिथिल हो गया। देश में इधर उधर छोटे-मोटे राजाओं का शासन होने लगा। इन की साम्राज्य-तृष्णा और तलवार सदा म्यान से बाहर रहती थी। सामाजिक अनुभूतियो का परिवेश लाल बन चुका था। इसी वीरतापूर्ण वातावरण में मलयालम भाषा के प्रथम कथा काव्य 'रामचरित्र' का जन्म हुआ।

रामचरित्र के रचयिता वणाट के महाराजा रामवर्मा माने जाते है। ये ई० बारहवीं शताब्दी में शासन करते थे। कहा जाता है, अपने सनिको में सामरिक आवेश बढाने के लिए आपने इस ग्रथ रचना की। 'रामचरित्र' में रामायण के युद्ध काड की कथा वर्णित है। अन्य काडो का—कथाएँ इधर उधर प्रसगानुसार किन्तु औचित्यपूर्वक सक्षेप में सूचित की गया है। इस बात में एक कुशल सपादक की ममनता प्रकट होती है। समूची कथा ओजपूर्ण गानो में गायी गयी है। प्रत्येक पद जोश बढा देता है और प्रत्येक पक्ति उत्साह को तरगित करती है। वीर रौद्र रसो के चरमोत्कर्ष में उनकी तूलिका ने कमाल कर दिखाया है।

धार्मिक कथा के वर्णना में भक्ति का प्रवण होना स्वाभाविक है। ऐसी हालत में या तो काव्य का रचना शिल्प विकृत हो जाता है अथवा अलौकिक परिवेष पा कर भासुर हो उठता है। किन्तु रामचरित के कवि जसे इस क्षेत्र में उतरना ही न चाहते थे। केवल लडाई के सागोपाग वर्णना में व दत्त चित थे। उन के बारे में इतना अवश्य कहा

जा सकता है कि अन्य कवियो की जेबें काटे बिना अपने कार्य में वे पूर्ण सफलता प्राप्त कर सके हैं ।

रामचरित के बाद करीब तीन सौ वर्षों के भीतर किसी उल्लेखनीय कथा काव्य का निर्माण न हुआ । कविता किसी काल विशेष में सीमित न रह कर जन सामान्य में फैल गयी । कई अज्ञात कवियो ने अनेक वीरो की साहसिकता का हृदयहारी वर्णन किया । ये गीत जनता की भाषा में उनकी अभिरुचि के अनुसार रचे गये थे । अतएव जन हृदय की अगाधता मे इन गीतो की भावसत्ता जोर से प्रवाहित हो उठी । शताब्दियाँ बीत गयीं, पर आज भी केरल के खेतो मे काम करने वाली वनिताएँ उन्ही वीरतापूर्ण गीतो के नशे मे अपनी थकावट दूर कर देती है । घरो में इन्ही के आलापन से वे अपने बच्चो की शिराओ में पौरुष एव वीरता की परपरा सचरित कर रही है। सुमधुर गीतो के परिधान में जनता की जिह्वा से नित्य-नूतन हो कर सदा प्रवाहित होने वाली पौरुष की उस अजस्रधारा को वरक्कन पाट्टुकल (उत्तरी गति)कहते है । कारण देश के उत्तरी भागो में इन का व्यापक प्रचार था । बाद में भी ऐसे गीतो का निर्माण हुआ है ।

कृष्ण-गाथा——

अब तक भाषा सुगठित हो चुकी थी । वह अपने पैरो पर खडे होने का अभ्यास कर रही थी और अपने पद विन्यास को अधिकाधिक सुचालन एव भाव-मधुर बना रही थी । करीब इसी समय कृष्ण-गाथा का जन्म हुआ ।

इस महाकव्य के रचयिता चेरुश्शेरि नपूनिरि कोलनार राजा के आश्रित थे । काव्य निर्माण में राजा इन्हें बराबर उत्साहित करते रहे। स्वयं कवि ने काव्यारंभ में इस बात का उल्लेख किया है ।

कृष्ण गाथा मलयालम का प्रथम महाकाव्य है। भाषा, भाव एवं कल्पना में यह ग्रथ पूर्णतया मौलिक है । अचुंबित भावना एव अनोखे वर्णनो मे यह अपना सानी नही रखता । प्रकृति वर्णनों में चेरुश्शेरि ने कोरी नकल नही की है। बल्कि प्रकृति के विशाल वृक्ष तक मे मानव हृदय का तालक्रम दर्शाया है। सक्षेप में सकेत की चहार-दीवारी से अपनी काल्पनिकता का नवीन मंडल खडा कर दिया है । भावाविष्करण में यह अन्तर स्पष्टतया लक्षित होता है । आप की स्थूल को छोड़ कर सूक्ष्म की ओर मुडनेवाली प्रतिभा इसी बात का परिचायक है । शृंगार और वात्सल्य के वर्णन में आप की तुलना सूरदास जी से की जा सकती है। भावानुसार प्रवाहित होने वाली भाषा कृष्ण गाथा की विशेषता है । कृष्ण की उस पौराणिक कथा के वर्णन में भी उन्होने अपने को भक्तिधारा में बहने नही दिया है ।

कण्णश्श रामायण——

इसी समय दक्षिण केरल में भी एक महान कवि जीवित थे । उनका नाम राम-प्पाणिक्कर (कण्णशन) था । आप की रामायण मलयालम भाषा की महान कृतियो में है ।

रामायण की कथा आपने वाल्मीकि से स्वीकार की थी । किन्तु वे रचना में सर्वथा स्वतंत्र थ । कथाप्रवाह में आये हुए पात्रो के चित्रण के बदले में प्रसंगानुसार पात्रो के भीतर

होने वाले विकार समय के चित्रण में अधिक दत्तविधान थ। उनके काव्य में प्रकृति भी आलबन बनकर आयी है। कहानी के मर्म जानने और उसके हृदयहारी आविष्करण में वे अजातशत्रु थे। भाषा तो शस्त्रपाणि की भाँति स्वच्छ सरल किन्तु शक्तिपूर्ण था। आपने जिस छद का प्रयोग किया वह इतना कमनीय बना कि बाद का आप हा के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

रामायण के अतिरिक्त आपने 'शिवरात्रि माहात्म्य' नामक एक अन्य पुस्तक का रचना की है। भक्ति का प्रचार ही इसका उद्देश्य है। पर कथा कवि-कल्पित है। रचना में भी वह उत्तमकोटि की कलाकृति है।

चपू काव्य—

कण्णश्शन के बाद लगभग दो शताब्दियाँ चपू काव्य का युग मानी जाती ह। इसी समय मलयालम भाषा और साहित्य पर सस्कृत का गहरा प्रभाव पडा। असख्य पडित कवियो का आविर्भाव हुआ। उन कवियो ने भाषा को सस्कृत के आडबर से करीब दबा डाला। यहाँ तक कि मलयालम की क्रियाओ में भा सस्कृत का रूप आरोपित करने का परिश्रम शुरू हुआ।

सस्कृत की रीतियो के अनुसार ही चपू ग्रथ रचे जाते थ। कथा अधिकाश पद्यो में वर्णित होती थी, पर बीच-बीच में अनुप्रास श्लेष एव वक्रोक्ति के भार से दबी अजगर की सी लबी-टढा गति से चलने वाली गद्य शैली पायी जाती था। गद्य पद्य दोनो में सस्कृत का सर्वाधिपत्य था। इनके बीच में कहीं-कही सहमी डरी मलयालम भाषा का पीला चेहरा दिखाई देता था।

पर इन कवियो की आख्यान-पटुता प्रशसनीय थी। पुराने रूढ़ मूल कथा के आँगन को छोडकर वे बाहर कभी न निकले। मगर अपने लीला क्षेत्र को उन्होंने नया चमन बना डाला। उनकी कथाएँ अवश्य पुरानी थीं, पर उसे पुराने कथेता ने नया और चमत्कृत कर दिया। कविता पाडित्यपूर्ण तथा भावप्रधान थी। सक्षेप में वह सकते हैं कि परिमार्जित क्लासिक शैली का सुचारु रूप इन चपू ग्रथो में निखर उठा है।

उच्चकोटि के चपूग्रथ करीब तीन सौ से अधिक ह। इन में महिष मगलम नपूति निरि का नषधचपू' और पुनम नम्पूतिरी का रामायण चपू विशेष उल्लेखनीय ह।

एषुत्तश्शन—

सोलहवा शताब्दी मलयाल भाषा के लिए एक नवीन परिवतन का आरभ थी। क्योकि गला दबाने वाले सस्कृत के विकृत प्रभाव में से इस समय उसे विमुक्ति मिली। उसने अपने शिथिल व्यक्तित्व को सभाला और चपू काव्यो की परपरा समाप्त कर दी।

इस परिवतन क्रम में तुश्चत्तु रामानुजन एषुत्तश्शन का नाम अविस्मरणीय है। आपने अपने व्यक्तित्व से न केवल साहित्य को बल्कि भाषा का भी सजीव बनाया। काव्य निर्माण में एक मध्यवर्ती शैली की स्थापना की। अध्यात्म रामायण का अनुवाद एव महा भारत का भाषानुवाद आपकी दो सफल रचनाए हैं।

ये दोनों काव्य यद्यपि मौलिक नहीं है पर पूर्णतया अनूदित भी नहीं है। दोनों के पीछे एक भक्त कवि का भावनापूर्ण किन्तु परम सात्विक हृदय विद्यमान है। यह कहना मुश्किल है कि उन में भक्ति भाव अधिक है या कवित्व। क्योंकि एपुत्त-उन की—कविता भक्ति के उत्तुंग शृंग से सुरसरि के समान फूट निकली थी। आज भी केरल का प्रत्येक व्यक्ति उस मे स्नान करके अपने को पवित्र मानता है। उत्तर भारत में रामचरित मानस का जो अलौकिक परिवेप है वही केरल में एपुत्त-उन की रामायण को प्राप्त है।

कथकळी—

एपुत्त-उन के पहले ही केरल में दृश्य काव्य-कला का विकास हुआ। कूटियाट्टम से अभिनय एव भरतनाट्य से मुद्रा ले कर भावाभिनय को लक्ष्य कर के वह आगे बढी। यही मौलिक केरलीय दृश्य कला कथाकली है। इसके अभिनय एव सकेतो को ध्यान में रखकर कई कवियो ने कथाकाव्य रचा है। इनकी वस्तु पौराणिक होती थी। वर्णन अभिनयोचित होते थे। अत: ये विशुद्ध कथाकाव्यो की सीमा में नहीं आते। तथापि कोट्टयत्तु-तम्पुरान का 'कल्याण सौगधिक' और उण्णायिवार्यर का 'नल चरित्र' उत्तम-साहित्य ग्रथ है। श्री उण्णयिवार्यर जी ने 'गिरिजा कल्याण' नामक प्रबंध काव्य की भी रचना की है।

तुल्लल कथकळ—

सत्रहवीं सदी मे केरल के कथा काव्य का अभूतपूर्व विकास हुआ। ग्रामीण कला तुल्लल के रूप में एक नवीन काव्य धारा आगे बढी।

तुल्लल एक दृश्य कला है। तालपूर्ण नृत्त एव अभिनय के साथ कविता आप ही इसकी विशेपता है। कथकली के समान तुल्लल भी केवल केरल में व्याप्त है।

इस नयी धारा के सचालक श्री कुचन नपियार थे। आप की प्रतिभा प्रशसनीय थी। हास्य के सभी अगो पर आप का साम्राज्य था। नपियार की कविता पढ कर कई अग्रेज निरूपको ने विश्व साहित्य के हास्य लेखको में आप को ऊँचा स्थान दे दिया है। उन की कथाए पौराणिक थी। किन्तु उस पौराणिक वातावरण में भी आप ने तत्कालीन समाज को देखा। उस की छाती में चुभनेवाले निशित हास की वर्षा शुरू की। कालातिक्रमण का दोप पाठको की हसी में दब गया। यही आप की कविता की विशेपता है। आप ने लगभग पैंसठ से अधिक कथा काव्य रचे हैं।

नवीन युग —

नपियार के बाद बहुत दिनो तक साहित्य में किसी नवीन प्रवर्णना का जागरण नही हुआ। अधिकाश कविताए पुराने रूढ मूल सकेतो के अनुसार रची गई और अधिकाधिक कथाए धर्मग्रथो से साहित्य क्षेत्र में लायी गयी। फलत. कविता में एकरसता का अनुभव होने लगा।

धीरे धीरे यह दशा बहुत बदल गयी। एक नवीन युग का सूत्रपात हुआ। चंद्रोत्सव में इस नवीनता का सूक्ष्म रूप पाया जाता है। यद्यपि प्रस्तुत रचना पौराणिक सकेतो का आश्रय

लती है, तथापि नवीनता की ओर तेजी से बढने वाली काल्पनिक कविता के जागरण का प्रतिनिधित्व भी करती है।

इसी बीच मनोरमा, रसिक रंजनी, कवन कौमुदी जैसी साहित्यिक मासिक पत्रिकाएं निकलने लगीं। घर के भीतर दबी रहनेवाली कविता को प्रशस्ति की धवल वेदिका मिल गयी। लघु कविताओं के विकास में इन पत्रिकाओं की सहायता उल्लेखनीय है। श्री कुञ्ञिक्कुट्टन तंपुरान का पालुल्लि चरित्र और श्री कुण्डूर नारायण मेनवन का नालु भाषा काव्यंगल (चार भाषा काव्य) इस समय के काव्यों में प्रमुख है। समालोचना करते हुए हमें कहना पडेगा कि ये क्लासिस्म और रामांटिसिज्म के बीच की कडी है। अकृत्रिम भाषा में अनुचित अलंकारों के आडंबर के बिना सभी भाषाओं में रचे जाने वाले सरल काव्यों (Ballads) में इनकी भी गिनती है। लेकिन Ballads के लिए जो गीतात्मकता अनिवार्य है उस का इस में अभाव है।

इस समय साहित्य की रंग भूमि में एक नवीन विवाद उठ खडा हुआ। द्वितीयाक्षर प्रासवाद के नाम से यह बहुत दिनों तक बढता रहा। इस विवाद के दो प्रबल प्रतिद्वंद्वी श्री केरल वर्मा कोयित्तम्पुरान और उनके भांजे श्री राज राजवर्मा थे। केरलवर्मा द्वितीयाक्षर प्रासवाद के समर्थक थे। उनका सिद्धांत था कि काव्य जीवन व्यंग में निहित है। आशय की इसमें अवश्य प्रधानता है। पर लावण्य तो रूप से स्पष्ट होता है, अतः रूप शिल्प की अवज्ञा नहीं की जा सकती। यदि कवि प्रतिभाशाली है तो वह अवश्य प्रास मानते हुए विजय प्राप्त कर सकता है। उल्लूर जैसे महाकवि इस सिद्धान्त के प्रचारक थे।

विरोधी पक्ष का सिद्धान्त यह था। 'छंद के मुख्य धर्म के रूप में ही द्वितीयाक्षर प्रास की गणना है। चरणों का संतुलन और रचना सौष्ठव उस का प्रयोजन है। प्रास के अभाव में भी स्वर व्यंजन एवं मात्राओं की सहायता से रचना में सौंदर्य लाया जा सकता है। अन्यथा बन कर यदि प्रास के पीछे चला जाय तो कविता गुलाम बनेगी। जब यह विवाद ऊंची चोटी पर पहुँचा तो उस का मौलिक आशय प्रकट हुआ। राजराज वर्मा ने सिद्ध किया कि 'काव्य की आत्मा रीति नहीं रस है।' के० सी० केशव पिल्ल, वी० सी० बालकृष्ण-पणिक्कर जैसे कवि इस सिद्धांत के समर्थक थे। दोनों ने अपने अपने आशय का कविता में प्रयोग किया।

यह युग महाकाव्य का था। कई सिद्धहस्त कवि उत्साह के साथ इस क्षेत्र में उतर पडे। इन में केशव पिल्लै जी का केशवीय पन्तलत्तु, तंपुरान का अंगमांगद चरित, श्री कट्टक्कय का श्री यशु चरित्र और उल्लूर का उमा केरल ज्यादा प्रख्यात हुए।

उपर्युक्त काव्यों में उल्लूर का उमाकेरल केरल में अधिक प्रचलित हुआ। इस की कथा पूरे तौर पर काल्पनिक है। ऐतिहासिक वातावरण में उसका विकास है। केरल का नित्य सुंदर प्रकृति में एक पंडित कवि की गंभीर भावना का समुचित सामंजस्य हो गया है।

कवित्रय—

अब तक मलयालम कविता तत्व प्रथा से प्रकृति की ओर तथा रूढ मूल संकेतों से जीवन की ओर मुड चुकी थी। इस समय भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक जागरण का

किरणें—लक्षित हो रही थी। सामाजिक असमताओ को असली रूप में देखने और मानवमात्र के महत्व की घोषणा करने का आवेग पश्चिम की सस्कृति के ससर्ग से अनुप्राणित भारतीय सस्कृति के अभिव्यजन की अभिलाषा, भारतीय जीवन के व्यक्तित्वपूर्ण विकास का विरोध करने वाली विदेशी प्रभुता के प्रति विरोध, ये सभी इस नवोत्थान के लक्षण है। प्रथम भूगोल युद्ध ने कई रूढ मूल विश्वासो की जडें उखाड दी और उन के स्थान पर स्वतंत्रता और समता का बोध बो दिया। रूस की क्राति दुनियाँ में नई चिन्ता और नई ताकत व्याप्त करने में सजल बन गई। इस नवीन जागरण का प्रभाव मलयालम साहित्य में भी पड बिना न रह सका। फलत नई भावना, नया आशय तथा नवीन जीवन का वैचित्र्यपूर्ण आविष्कार साहित्य का ध्येय बन गया। इन सब बातो के अनुकरण के तौर पर खंड काव्यो की उत्पत्ति हुई। य महाकाव्यो के लक्षण की अपारपूर्णता से खड काव्य नहीं बने। बल्कि जीवन के असकीर्ण भावो को असकीर्ण भाषा में प्रकाशित करने के लिए इन खड काव्यो की रचना हुई। भावो की एकतानता और विकारपरता इन की विशेषता है।

इस नवीनता के अग्रदूतो में तीन कवियो के नाम समादरणीय है। सर्व श्री कुमारनाशान, वल्लत्तोल नारायण मेनोन और उल्लूर परमेश्वरय्यर। मलयालम साहित्य का अधुनिकतम रूप इन्ही तीन महाकवियो की प्रतिभा का वरदान है।

पुरातन सकेत की दीवारें तोड कर आशान काल्पनिकता के सुरभित वातावरण में निकल आये। सामाजिक अस्पृश्यता का कलुषित रूप देख कर उनका दिल दुखी हो उठा। फलत उन की रचना इस विकृतवासना का विरोध करने लगी। यद्यपि वे बुद्ध धर्म के अनुयायी नही थे, तथापि जाति के विरुद्ध लडते-लडते उन्हें बुद्ध धर्म का हथियार स्वीकार करना पडा। यही कारण है कि आपने अपने खंड काव्यो में बौद्धग्रथो की कहानियाँ वर्णित की हैं। भौतिक प्रेम का आध्यात्मिक सस्करण जाति और अनाचारो के प्रति अत्यन्त विरोध और प्रेम की महिमा का जय गान आशान की कृतियो में सब कही पाया जाता है। चडाल भिक्षु की करुणा, नलिनी और लीला आप के सुप्रसिद्ध खड काव्य है। कुछ निरूपको की राय में नलिनी आप की प्रतिभा की चरम सीमा है।

वल्लेतोल मलयाल भाषा के राष्ट्र कवि है। राष्ट्र की राजनैतिक चेतना आपके दिल में पूर्णतया प्रतिस्पदित हो उठी। उन की अधिकाश रचनाएँ स्वतत्रता की लडाई के लिए नगाडे की चोट थी। कथाकाव्य निर्माण में भी आपकी कुशलता प्रशसनीय है। पौराणिक कथा के अशो में आप की भावना मानो पच्चीकारी का काम करती है। समुचित किन्तु मितव्यय शोभा वर्णन उन कथाओ की विकारपरता को तरंगित करता है। गानमधुर ललित पदावली मे आप प्रतिद्वन्दी नही जानते। शिष्यनुं मकनुं (शिष्य और पुत्र) अउनु मकळु (पिता और पुत्री) किलिक्कोञ्चल (तोतली आवाज) मग्रलन मरियम आदि आप के विख्यात खडकाव्य है।

काल्पनिकता के युग में रहने पर भी उल्लूर अधिकाश पाडित्यमय सकेत के घेरे में पडे थे। जहाँ अन्य कविगण रूप से भाव की ओर बढ रहे थे, वहाँ आप भाव के लिए रूप का मूल्यवान परिधान तैयार कर रहे थे। पुरातनता और धार्मिकता की ओर आप का अगाध अनुराग था। समकालीन वातावरण को वे यद्यपि देखे बिना न रह सकते थे पर

खेदपूर्वक कहना पड़ेगा कि देखते हुए भी वे इस में उतर न सके। फलत धार्मिक वातावरण के भीतर नवीन जागरण की खोज में निकल पड़े। आपके खंडकाव्यों में हीरा पिंगला और कर्णभूषण प्रशस्त ह। कर्णभूषण में उल्लूर की कविता प्रस्फुटित हुई है।

रमणन

इन लब्धप्रतिष्ठ महाकवियों के साथ होड करने वाली एक युगप्रतिभा अवश्य स्मरणीय है। देश के एक कोने में से छोटी सी बाँसुरी लेकर वह साहित्य के रंगमंच पर आयी और देखते देखते श्रोताओं को अपनी अलौकिक गान माधुरी से मुग्ध कर गयी। यद्यपि वह बहुत दिनों तक न बजी पर जब तक बजी, सब को आकर्षित करती रही। यहाँ तक कि उसके गानप्रवाह में कई समुन्नत कवियों का नाद भी किसी ने न सुना। अकाल में ही अस्त ये युवा कवि स्व० श्री कृष्णपिल्ल जी थे।

आप यौवनारंभ के प्रेममग्न कवि थे। प्रेम की मधुरता और वेदना के कलात्मक आविष्करण में आप का स्थान सर्वोच्च है। कलनादिनी कानन नलिनी के समान अनर्गल प्रवाहित होने वाली भाषा आपकी वशवर्तिनी थी। पराजित प्रेम का विषय लेकर आपने रमणन नाम का गीत-नाटक लिखा है। इसकी लोकप्रियता अब तक किसी अन्य काव्य को प्राप्त नहीं हुयी। रमणन का २७वाँ संस्करण प्रकाशित हो चुका है और करोडों प्रतियाँ बिक चुकी ह। इसी से कृष्ण पिल्ल जी की जनप्रियता का अनुमान किया जा सकता है।

आज कल कविता चारों ओर से परिवर्तित हो रहा है। नित्यप्रति वह जीवन के निकट होती जा रही है। असंकीर्ण वातावरण को छोड कर जीवन के संकीर्ण भावमंडल में घुस रहा है। आज उस का बसेरा बाह्य जगत में नहीं बल्कि बाह्य प्रपंच की प्रतिक्रिया से प्रेरित व्यक्ति के मनोमंडल में है। फलत वह अधिकाधिक विषयिप्रधान हो रहा है। आधुनिक कविता के अग्रदूतों में महाकवि जी शंकरकुरुप श्री वलो पिल्लि श्रीधर मेनोन एन० वी० कृष्णवायर और इडश्शेरि गोविन्दन नायर का नाम आदर पूर्वक लिया जाता है।

एन० वी०

मलयाल साहित्य के प्रयोगवादी कवियों में श्री एन० वी० कृष्णवायर का स्थान अतुल्य है। अंग्रेजी में वोडन जैसे कवियों ने जिन बालडस (Ballads) का प्रचार किया है श्री एन० वी० मलयालम भाषा में उनका प्रयोग कर रहे ह। इस में कविता युक्त विश्वास एवं भाषण की सहायता से एक कथा स्पष्ट करता है। साथ ही ताबनर हास समाज के कलेजे में बिजली सा तडप उठता है। यथार्थ के परुष वातावरण में समाज की आँखें जगा देता है। आप की कोन्तु काम्मन नोण्ड पाट्टुकळ (लम्बे गाने) आदि ग्रंथ ऐसे कथाकाव्यों से अलंकृत हैं।

आज तो उपायमान महान कलाकार कविता में नवीनता लाने के प्रयत्न में लगे हुए ह। प्रतिदिन उस में नवीन भाव और नवीन अभिव्यंजना का चमत्कार प्रयुक्त किया जा रहा है। आशा है निकटतर भविष्य में कथाकाव्य का एक नव्य रूप अवश्य प्रकट होगा।

श्री गोलोकबिहारी धळ

उडिया भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव: एक विहगम दृष्टि[1]

जीवन के अन्य पक्षो की तरह भाषा के क्षेत्र में भी ऋण या आदान दिखाई देता है। ससार की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाषाए दूसरी भाषाओ से आदान द्वारा ही विकसित हुई है। अग्रेजी भाषा एक उदाहरण है जिसमें ५३ प्रतिशत शब्द फ्रेंच के है। यह एक मजेदार बात है कि न तो 'लन्दन' शब्द अग्रेजी का है न 'बर्लिन' शब्द जर्मन का और न 'पेरिस' शब्द फ्रेंच का।

किसी भी भाषा के उधार लिए हुए शब्दो का अध्ययन बहुत अनुरजक होता है और विशेषत आज की इस छोटी सी दुनियाँ में जब कि भूमडल के दूरातिदूर कोनो के लोग प्रति क्षण एक दूसरे से कन्धा भिडा कर चलते है और भाषाओ का सक्रमण होता है। दुनियाँ की शायद ही कोई विकसित भाषा हो जो सच्चे अर्थों में 'विशुद्ध' कही जा सके। फिर भी भाषाओ के आदान के विषय में पुराणपथी दृष्टिकोण सदव विशुद्धतावादी ही रहा है। पर सारे प्रयत्नो के बावजूद भी भाषाए एक दूसरे से मिल जाती है, न केवल शब्दावली में पर भाषा के दूसरे महत्त्वपूर्ण पक्षो में भी जैसे ध्वनि रचना वाक्य विन्यास, आदि। यहाँ तक कि देवताओ की भाषा सस्कृत में भी बहुत से द्राविड और आस्ट्रिक तत्त्व मिले हुए दिखाई देते हैं। इस छोटे से निबन्ध में उडीसा की भाषा उडिया पर, जो भारतीय आर्य परिवार की एक बडी भाषा है अग्रेजी भाषा के जो ससार की सबसे महत्त्वपूर्ण भाषा है कुछ विशद प्रभावो को निर्दिष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। दूसरी भारतीय भाषाओ पर पडे हुए आदान के भाषाशास्त्रीय प्रभाव को समझने के लिए यह लेख दिशासूचक हो सकता है। परिनिष्ठित उडिया एक सस्कृत प्रभाव-सपन्न भाषा है जिसमें हिन्दी, उर्दू, अरबी तथा मराठी का आदान दिखाई देता है। पर एक शताब्दी तक अग्रजी के प्रभाव क्षेत्र में पनीपी गई उडिया भाषा, भारत की किसी भी विकसित भाषा की भाँति, न केवल शब्दावली में अपितु वाक्य विन्यास में भी प्रभावित हुई है।

आदान का क्रम

१ अग्रजी हमारे शासक प्रभुओ की, उच्चवर्ग की तथा शासन की भाषा थी। सामाजिक प्रतिष्ठा के मद एक सामान्य व्यक्ति भी अग्रेजी के कुछ शब्दो का ज्ञान लेना चाहता

१ यह लेख भारत सरकार द्वारा नियुक्त हिन्दी भाषा आयोग को प्रस्तुत किया गया था।

था। अंग्रेजी के अधिकांश शब्द उड़िया में तब आए जब अंग्रेज यहाँ से चले गए और यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति सभी संभव उपायों द्वारा स्वतन्त्र रूप से विकसित होने के लिए,—भाषा के क्षेत्र में भी—मुक्त छोड़ दिया गया।

२. अन्तिम महायुद्ध और उसके परिणामस्वरूप स्थापित होने वाले बहुत से नए विभाग अपने साथ अनेक अंग्रेजी शब्दों को उड़िया में ले आए, जिनका अनुवाद करने के लिए बिल्कुल समय नहीं था। मेरे विचार से यह बात प्रत्येक भाषा के विषय में सत्य है।

३. स्वतन्त्रता के बाद की बहुत सी विकास योजनाओं में अनेक यन्त्रीय आविष्कारों का उपयोग अवश्यंभावी था। इनके नामों का उपयोग निम्नातिनिम्न वर्ग के लोगों ने भी पूर्ण स्वतंत्रता से किया। अंग्रेजी वस्तुओं के सैंकड़ों वर्षों से उपयोग के कारण आई हुई शब्दावली में यह एक नया योग था।

अंग्रेजी से लिए गए शब्दों के स्रोत—

१. बोलचाल में—शिक्षितों की बोली में तथा अशिक्षित जनसमुदाय की बोली में।

२. लेखन में—अ—विज्ञापन और साइनबोर्ड।
आ—समाचार पत्र।
इ—साहित्य : गद्य और पद्य।
ई—व्याकरण।

हम प्रत्येक स्तर पर एक सामान्य दृष्टि डाल कर देखें कि यह किस प्रकार कार्य करता है। जब एक साधारण आदमी अंग्रेजी से उधार लिए गए शब्दों का प्रयोग करता है तो वे अपने सब से विकृत रूप में सुन पड़ते हैं, यहाँ तक कि उनका समझना भी दुष्तर हो जाता है। नीचे दिए गए उदाहरण लेखक ने स्वयं अंग्रेजी न जानने वाले जन साधारण के मुंह से सुन कर एकत्र किए हैं। इन शब्दों के वर्णों और ध्वनियों का क्रम मूल शब्दों से बहुत भिन्न है। कुछ ऐसे शब्दों के उदाहरण जो इतने बिगड़ गए हैं कि पहचाने भी नहीं जा सकते, नीचे दिए जाते हैं (ये केवल पूर्वापर प्रसग से ही समझे जा सकते हैं)—

अंग्रेजी शब्द	उड़िया रूप (रोमन लिपि में)	विकृत उड़िया रूप (नागरी लिपि में)
Policy	Paales	पालेस
Injection	Inzensan	इंजेनसन
Difference	Difaat	डिफाट
Export	aakaasphut	आकाशफुट

२ (अ) विज्ञापन और साइनबोर्ड

जैसा कि भारत में अन्यत्र भी देखा जा सकता है उड़िया के विज्ञापनों और साइन बोर्डों में अंग्रेजी शब्दों की इतनी भरमार होती है कि कभी साइन बोर्डों के सारे के सारे शब्द अंग्रेजी के होंगे, सिर्फ उड़िया लिपि में लिखे होंगे। लेखक ने कटक के केवल कुछ हिस्से का निरीक्षण किया और साइन बोर्डों के मजेदार उदाहरण देखे।

नीचे उनमें से कुछ उदाहरण अंग्रेजी शब्दों तथा रोमन और नागरी रूपान्तरों के साथ दिए जाते हैं—

साइन बोर्ड का लेख (रोमन लिपि में)	नागरी लिपि में	अंग्रेजी शब्द
Odisa ais phactori	ओडिसा आईस फाक्टरी	Orissa Ice Factory
Utkal Prospectiv Indastri	उत्कल प्रसपक्टिभ ईण्डस्ट्री	Utkal Prospective Industry
Telaring Warkshop	टेलरिंग वार्कशोप	Tailoring Workshop
Katak Narsari	कटक नर्सरी	Cuttack Nursery

(आ) समाचार पत्र

१ मैंने उडिया के तीन प्रमुख दैनिकों का सावधानी से परीक्षण किया और उनमें मुझे अंग्रेजी के अनेक शब्द प्रमुख मिले। कुछ गलत लिखे हुए व्यक्ति वाचक नाम भी दिखाई दिए। अंग्रेजी ध्वनिशास्त्र के स्वल्प ज्ञान से भी यह कठिनाई दूर की जा सकती थी—

अंग्रेजी नाम	उडिया रूप	नागरी रूप
Dulles	dyules	डयुलेस
Daisy	daisi	डाइसी
Aldus Huxley	Aldus Haksali	अलडुस हाक्सली

उडिया शब्दों के बनाने में मजेदार बात अंग्रेजी शब्दों के हिज्जों का प्रभाव है।

(३) साहित्य गद्य और पद्य

उडिया की गद्य और पद्य दोनों में ही आपको एक बडी संख्या में अंग्रेजी के शब्द ज्यों के त्यों प्रयुक्त मिलेंगे। नीचे दिए हुए शब्दों में से कुछ अभी हाल में ही प्रविष्ट हुए हैं। इससे अंग्रेजी शब्दों के उडिया में अधिकाधिक मात्रा में घुलने मिलने के समय का पता लगता है। यह वह समय है जब अंग्रेजी भाषा भारत में दिन प्रति दिन अपना स्थान खोती जा रही है। ऐसे उदाहरणों को आप सैकडों की संख्या में प्रस्तुत कर सकते हैं।

अंग्रेजी	उडिया (नागरी लिपि में)
Fossil	फसिल
Mesmarism	मेसमारिजिम
Lawn	लन
Academic Robe	एकाडेमिक रोब

(४) व्याकरण

शब्द गढ़ने के लिए उडिया प्रत्यय अंग्रेजी शब्दों में जोड दिए जाते हैं और समस्त पद बनाने के लिए अंग्रेजी शब्दों के साथ उडिया शब्द मिला दिए जाते हैं।

अंग्रेजी शब्द-उडिया प्रत्ययों के साथ	उडिया (नागरी लिपि में)
Commission+ia	कमिशनिया
gas+iya	ग्यासीय

समस्त पद--

Seema+Commission	सीमा+कमिशन
Siksha+board	शिक्षा+बोर्ड

वाक्य-विन्यास

वाक्यो मे शब्दो का विन्यास अंग्रेजी ढंग पर होने लगा है। किसी भी उडिया पुस्तक के किसी भी पृष्ठ को देखकर यह बात असन्दिग्ध रूप मे जानी जा सकती है।

समस्याएं--

जहाँ तक उडिया का सबध है अंग्रेजी के आदान ने निम्न भाषा विषयक समस्याए उत्पन्न की है —

(अ) बोल चाल में हमे ऐसे विकृत शब्द सुनने को मिलते हैं जिन्हें समझना आसान नही है जैसे डिफाट, पालेस आदि।

(आ) उडिया लिपि पर अंग्रेजी हिज्जो का प्रभाव।

जहाँ अंग्रेजी में 'र' नही होता वहाँ हम उडिया लेखन में उन शब्द के अंग्रेजी हिज्जो के कारण 'र' रख देते हैं, जैसे वार्डेन रिपोर्ट आदि।

(इ) अंग्रेजी के सस्वृत स्वरो के प्रभाव के कारण बदलता हुआ उड़िया शब्दो का ध्वनि शास्त्र—हल्, वल्

अंग्रेजी से उधार लिए गए शब्दों की सामान्य समस्या--

जैसा कि स्वाभाविक है, प्रत्येक भारतीय भाषा अंग्रेजी शब्दों को लिखने के अपने ही तरीके अपनाती है। दूसरी भारतीय लिपियो में अंग्रेजी शब्दो को पढना भाषा शास्त्र की दृष्टि से बहुत मनोरजक होगा। मेरा तात्पर्य यह है कि हिन्दी में लिखे हुए अंग्रेजी शब्द मुझे पढने में बडे अजीब लगते हैं और मेरा अनुमान है कि हिन्दी के लोग जब उडिया में लिखे हुए अंग्रेजी शब्द पढेंगे तो उन्हें भी ऐसा ही लगेगा।

अंग्रेजी शब्द	उडिया रूप	हिन्दी रूप
Bank	बाँक	बैंक
Manager	मानेजर	मैनेजर
Tax	टाक्स	टैक्स

अंग्रेजी, [ɔ] या अ=हिन्दी ऑ

अन्य स्वरो के उदाहरण भी आसानी से जुटाए जा सकते हैं। सभी भारतीय भाषाओ के अंग्रेजी से उधार लिए गए शब्दो को एक साथ देखना बहुत मनोरजक होगा।

मेरा अनुमान है कि यदि अंग्रेजी शब्दो के रूपान्तर के लिए सभी भारतीय भाषाओ में रूपातर करने का एक परिनिष्ठित माध्यम अपना लिया जाय तो यह अजीब सी लगने

वाली बात दूर का जा सकती है। यह माध्यम उधार लिए गए अंग्रेजी शब्दों की ध्वनियों के सम्यक् ज्ञान तथा सबवित भारतीय भाषाओं की ध्वनि-व्यवस्था की पूर्ण जानकारी के साथ निष्पन्न किया जाय।

जहाँ तक उड़िया में संस्कृत, उर्दू और मराठी शब्दों के आदान का प्रश्न है, कोई इसकी विशेष चिन्ता नहीं करता, क्योंकि ये शब्द उड़िया भाषा की भूमि में अब तक पत्थर बन कर समा गए हैं। यह बात स्पृहणीय है कि आदानों को पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर अंगीकार किया जाय। अंग्रेजी की वस्तुओं के नामों को उनके भारतीय पर्यायवाची भी शब्दों में अनूदित करने का कुछ प्रयत्न हो रहा है। मेरे विचार से अत्यधिक वैज्ञानिक और प्रतिदिन के प्रयोग में आने वाले शब्दों को ज्यों का त्यों ले लेना चाहिए। अन्यथा वे शब्द भारस्वरूप हो जाएंगे।

श्री रमेश चद्र दुबे

'ढोला मारूरा दूहा' में प्रयुक्त काव्य रूढ़ियाँ

'ढोला मारूरा दूहा' राजस्थानी का एक अत्यन्त जन प्रिय लोक गीत है। सकडा वर्षों से लोग उसे अनेक प्रकार स गाते और सुनते रहे ह। अत लाक जीवन का अनेक प्रवत्तिया की छायाएँ इसमें समा गई हैं। पर काशा नागरी प्रचारिणी सभा स प्रकाशित नरोत्तम दास स्वामी प्रभति लेखक-त्रय द्वारा सम्पादित सस्करण में इस दूहा बद्ध' लोक वाता को अपने मूल रूप में उपस्थित करने का प्रयास किया गया है। इस पाठ को ही आधार मान कर यदि हम इसमें प्रयुक्त काव्य रूढियो का आकलन करें तो तत्कालीन साहित्य की उन रूढ़ियो का परिचय पाना सुलभ हो जायगा जो अति परिचय के कारण कला विदग्ध कवियों के कृतित्व से बाहर जाकर लोक-जीवन में समा चुका थी। लोक गीत जनता के गीत होते ह और सामान्यत निरक्षर जनता के मौखिक गाना के रूप में ही वे प्रचार और प्रसार पाते ह। अत साहित्य की वे रूढ़िया जो इनमें भी पठ पा गई हा निश्चय ही अपने प्रयोग की एक लबी साहित्यिक परम्परा की ओर इगित करती ह। सभा के सस्करण की प्रस्तावना के अनुसार इन दूहा की रचना सवत् १४५० वि० के बाद की नही हो सकती' और 'ढोला का समय सवत् १००० वि० के आसपास है और यही इसके रचना काल की ऊपरी सीमा है।'[1] अत यह लोक वार्ता कबीर क जन्म (सवत् १४५६) के पूव ही दूहा बद्ध हो चुकी थी। हिन्दी का कृष्ण भक्ति साहित्य और रीति काल का शृगार वर्णन की बँधी परिपाटियाँ इसके बाद की चीज ह।

दूहा में ढोला और मारवणी की प्रेम गाथा का विस्तत वणन है। उनके विरह और मिलन की कथा यहाँ लोकगीतो की सहज सरल शली में वर्णित है। अत इस शृगार प्रधान काव्य में हमें दो प्रकार की साहित्यिक रूढ़ियो का ही प्रयोग विशेष रूप से दिखाई पडता है। एक तो स्त्री-शरीर के सौन्दय-वणन के लिए प्रयुक्त अगादिको के उपमान सबधी रूढ़ियाँ और दूसरी विरह-वणन सबधी प्रथित रूढियाँ।

१ ढोला मारूरा दूहा—ना० प्र० स०—प्रस्तावना पृष्ठ १०

स्त्री के नख शिख तथा सामान्य सौन्दर्य से संबध रखने वाली निम्न रूढ़ियों का उपयोग दुहा में हुआ है—

उपमेय	उपमान	दूहा सख्या
गति	हंस, गयद	१३, २०७, ४५४, ४५५, ४६०, ४६१, ४७४
जघा	कदली	१३, १३२, ४५४, ५३६, ५४०
कटि	केहरि, वर्र	१३, ८७, ४५४, ४५५, ४६०, ४६६, ४६६, ६३६
मुख	शशधर, पूर्णिमा का चद्र	१३, २०७, ४५५, ४६६, ४७६, ५४५, ६६६
नयन	खंजन, कुरग, सीप, कमल	१३, ८७, ११५, २२१, ४५५, ४५७ ४६६, ४७१, ६६६
कुच	श्री फल	१३
कठ-स्वर	वीणा, कोकिल	१३, ४५५, ४६०, ४६२, ५४०
वर्ण	सुवर्ण, चपा, कुकुम	८७, २०७, ४६२, ४६३, ४६६
अधर-वर्ण	अलक्तक	१३
यौवन	मदमत्त हाथी, कमल	११५, ११६
वेणी	सर्पिणी, फणीद्र	१२५, ४५५
स्त्री	कुमुदिनी, कमलिनी, हस	१२६, १३०, ४६०
आँसू	मोती	२६६
दशन	हीरा	४५४
अधर	विद्रुम, दाडिम	४५४, ४८०
भृकुटि	मयक, भ्रमर	४५४, ४५५
नासिका	कीर	४५५
भाल	चन्द्रमा	४६६, ४७६
कर	कमल	४७३
देह	कर्णिकार की छडी	४७३
उरस्थल	हाथी	४७४

इन रूढ़ियो का उपयोग सस्कृत महाकाव्य-काल से लेकर हिन्दी के मध्य काल (भक्ति काल एव रीतिकाल) तक प्रचुर मात्रा मे अविच्छिन्न रूप से होता रहा है। 'दूहा' जैसे लोकवार्त्ता काव्य में इनका उपयोग यह सिद्ध करता है कि स्त्री-रूप वर्णन के ये उपकरण साहित्य-मर्मज्ञो की परिधि से निकल कर जन-जीवन में घुल मिल गए थे और एक सुपरिचित रूढियो के रूप में इनका प्रयोग जनता द्वारा सहज रूप से होता रहता था। इन उपमानो के अतिरिक्त 'सोलह शृगार' और 'वत्तीस लक्षणो' का उल्लेख भी दूहा में हुआ है। इन सख्याओ का उल्लेख केवल रुढि-पालन के अर्थ ही हुआ है, यह इन दूहो को पढने से स्पष्ट हो जाता है:—

सुन्दर सोल सिगार सजि, गई सरोवर पाल।

तथा

लखण वतीसे मारवी निधि चन्द्रमा निलाट ।

राजस्थानी के एक अन्य काव्य (वेलि क्रिसन रुक्मिणी री पृथ्वीराज) में भी इस बत्तीस लक्षणों की रूढ़ि का रूपित उल्लेख हुआ है —

लखण बतीस बाल-लीला में, राजकुँअरि रूलडी रमति ।

कटि की सूक्ष्मता का उल्लेख भी कवियों का एक प्रिय विनोद रहा है । सूरदास ने तो उसे अलख' ही बता दिया—

सूक्ष्म कटि पर ब्रह्म सी अलख लखी नहिं जाइ ।

दूहा में उसे 'मुष्टि ग्राह्य तथा दो अंगुल' का कहा गया है—

तीखा लोयण, कटि करल, उर रत्तडा विवोह ।

तथा—मारू लंक दुइ अंगुला, वर नितव उर मस ।

नक बेसरि के मोती के अधर के रंग से लाल झलकने का उल्लेख बिहारी ने किया है। दूहा में भी इसका उल्लेख आता है —

अहर रग रत्तउ हुवइ, मुख काजल मसि अन्न ।

जाण्यउ गु जाहल अछइ, तेण न ढुक्कउ मन्न ।

रूप वर्णन से सबधित एक उक्ति यह है कि वह प्रतिक्षण नवीन दिखलाई पड़ता है—

क्षणे क्षण य न्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयताया —'माघ'

हिन्दी के बहुत से कवियों ने इस उक्ति को अपनाया है । दूहा में इसके समान उक्ति इस प्रकार से है —

मारू दाडम-फूल जिम दिन दिन नवी डहक्क ।

नायिका के रूप को अपार' कह कर अवर्णनीय बता देने की रीति भी साहित्य में रूढ़ सी हो गई है । तुलसी ने पार्वती तथा सीता के रूप-वर्णन में इसका सहारा लिया है । दूहाकार कहता है —

एकणि जीभ किमा कहूँ, मारू रूप अपार ।

अस्तु नायिका के रूप-वर्णन सबधी अनेक रूढ़ियों का प्रयोग दूहा में सहज ढंग से हुआ है । पर दूहा की गाथा विरह और मिलन की कहानी है । अत वियोग-वर्णन तथा सयोग वर्णन से सबध रखने वाली रूढ़ परम्पराएं भी यहाँ प्रचुरता से दृष्टिगत होती हैं । दूहा में पूर्वराग का उल्लेख आता है । प्रियतम को स्वप्न में देख कर ही मारवणी प्रेम में डूब जाती है—

मारू नू आगइ मसी, आज स कोइ उदास ।

कौंम सिग्रांम जु दिट्ठ मई, म्न न भूलइ तास ॥

अम्हां मन अचरिज भयउ, सखियां आखइ एम ।

तईं अणादिट्ठा सज्जणां, किउँ करि लग्गा पेम ॥

जे जीवण जिंहां तणां, तन ही मांहि वसत । आदि

स्पष्ट ही यह स्वप्न-दर्शन-जन्य कामबाधा पूर्वराग की साहित्यिक रूढि के अन्तर्गत आती है। जायसी की भूमिका में शुक्ल जी ने इस रूढि का विवेचन किया है। सखी कहती है—

साल्ह कुँवर सुहिणइ मिलयउ, सुन्दरि, सउ वर तुझ्झ।

और यह सुनते ही मारवणी के हृदय में काम की ज्वाला उद्दीप्त हो जाती है—

सखी वयाणि सुन्दरि सुण्या, उठी मदन की झाल।

कवि-कल्पना मे ही ऐसी प्रतिक्रिया सभव है; प्रकृत-जीवन में ऐसा होना संभव नही है। अत इसे साहित्य की एक रूढि का अनुसरण ही कहा जायगा। काम की ज्वाला का रूपक भी वहुत पिष्ट-पेषित है। गीता के 'हविषा कृष्णवर्त्मेव' से लेकर 'काम अगिनि जनु तूल सरीरा' आदि हिन्दी की काव्योक्तियों तक इसका वहुशः उपयोग कही भी देखा जा सकता है।

दूहा में वियोग-वर्णन ही अधिक प्रधान है। अत वियोग से सबध रखनेवाली काव्य रूढियो का उपयोग दूहा में डट कर हुआ है। तुलसी, सूर और जायसी के काव्य मे उपलब्ध विरहोक्तियों से विल्कुल समानता रखती हुई उक्तियाँ दूहा में मिलती हैं। कवि परम्परा-भुक्त वर्णन-प्रकारो का उपयोग यहाँ प्रचुरता से हुआ है। पपीहा को कभी विरहिणी की समदु ख-भोगिता की भावना प्राप्त होती है और कभी कटूक्तियाँ सुननी पडती हैं। दूहा के इन उल्लेखो में तथा सूर के वियोग-वर्णन में वहुत साम्य है—

वाबहियउ नइ विरहणी दुहुवाँ एक सहाव।
जव ही वरसइ घण घणउ, तव ही कहइ प्रियाव॥

—दूहा २७

बहुत दिन जीवो पपीहा प्यारो।
वासर रैनि नाउँ लै बोलत भयो विरह जुर कारो।

—सूर

वावहिआ, तूँ चोर, थारी चाँच कटाविसूँ।
राति जु दीन्ही लोर, महँ जाण्यउ प्री आवियउ॥

—दूहा ३०

रे पापी तू पंखि पपीहा पिउ पिउ पिउ अधिराति पुकारत।

—सूर

विरह मे पपीहा का उल्लेख साहित्य की एक वहु प्रचलित रूढि है। इसी प्रकार पावस[1], मोर[2], सूनी सेज[3], विजली[4] आदि का का दु:खद होना, सारस-जोड़ी[5], चकवी[6], और जल-मीन[7] के वियोग की चर्चा, सदेश[8] 'प्रेम की अकह कहानी'[9], 'विरह भुअग'[10], पंख लगा कर प्रिय के पास उड़ जाने की कामना[11] आदि का उल्लेख वियोग-वर्णन की बँधी परिपाटी के अन्तर्गत आता है। दूहा में इन सब का उपयोग हुआ है।

---

१. दूहा ३१, ३८, १७४, २५५, २६६, २. वही ४१, ३. वही १६६, ४. वही १५०, १५१, ५. वही ५३, ६ वही ७१, ७. वही १६२, ४१३, ८. वही ८२, २००, ९. वही १५९, १०. वही २३९, ५०४, ११. वही ६८।

जायसी सूर और तुलसी से समानता रखने वाली दूहा की उक्तियों का उल्लेख भी यहाँ रोचक होगा—

दूहा— ऊनमि आई बद्दली, ढोलउ आयउ चित्त ।
यो बरसइ रितु आपणी, नइण हमारे नित्त ॥४१॥

सूर— निसि दिन बरसत नैन हमारे ।

तथा

बिनु ही रितु बरसत निसि बासर सदा सजल दोउ तारे ।

दूहा— सा धण वलि कुइला भई, भसम ढँढोलिसि आइ ॥११२॥

जायसी—सो धनि जरि कुइला भई, उहिक धुआँ हम लाग ।

दूहा— विरह बाघ वनि तन बसइ, सेहर गाजइ आइ ॥१२८॥

जायसी—गाजइ पिय हुइ आव सदूरू ।

दूहा— प्रीतम तोरइ कारणइ, ताता भात न खाहि ।
हियडा भीतर प्रिय वसइ दाझणती डरपाहि ॥१६०॥

तुलसी—एहि के हृदय बस जानकी जानकी उर मम बास है ।

दूहा— जो दिन मारू विण गया, दई न ग्यांन गिणात ॥२०८॥

तुलसी—जे दिन गए, तुमहि बिन देखें ।
ते बिरञ्चि जनु पारहि लेखें ।

दूहा— जिण वाटण सज्जण गया, सा वाटडी सुरग ॥३५६॥

तुलसी—धन्य सो नगरु सल बन गाऊँ । जहँ जहँ जाहु धन्य सोइ ठाऊ ॥

दूहा— ढोलउ मन चलपत थयउ, ऊभउ साहइ लाज ॥४४७॥

तुलसी—पीपर पात सरिस मन डोला ।

दूहा— सूका था सू पाल्हव्या, पाल्हवियां फलियाह ॥५६०॥

जायसी—पलुहइ नागमती की बारी ।

इन्हें एक साथ पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि ये जन साधारण तक में प्रचलित साहित्य की बहुधा प्रयुक्त काव्य परिपाटियाँ ही है ।

'सवध भावना' की रूढ़ि का भी दूहा में उपयोग हुआ है । प्रियप्रवास की राधा पवन से प्रियतम के पद की धूलि ले आने का आग्रह करती है और मारवणी प्रियतम को स्पर्श करके आती हुई वायु का स्पर्श करना चाहती है—

जिणि देसे सज्जण बसइ, तिणि दिसि वज्जउ वाउ ।
उआं लगे मो लगसी, ऊही लाख पसाउ ॥

मारवणी भी राधा की भाँति प्रियतम के पद चिन्ह की धूल को हृदय से लगाती है—

साल्ह चलंतइ परठिया आंगण बीखड़ियांह ।
सो मइँ हियइ लगाड़ियां भरि भरि मूठड़ियांह ॥

बिहारी और सूर की तरह की ऊहात्मक रूढ उक्तियों का उपयोग भी दूहा में हुआ है। पूनो के चांद से मुख की उपमा देकर उससे प्रकाश होने की बात बिहारी की तरह ही दूहा में आती है—

मारु वईठी सेज सिर, प्री मुख देखइ ताम ।
पूनिम केरे चंद ज्यूं, मंदिर हुवउ उजास ॥५४५॥

तथा

हुई सचेती मारवी, ढोलइ मन आणंद ।
जांणि अँध्यारी रयण महँ, प्रगट्यउ पूनिम चंद ॥६२२॥

इस प्रकार की ऊहात्मक उक्तियाँ दूहा में बहुत हैं।[1] प्रसाद और जायसी की विरहोक्तियों से मेल खाती हुई दो उक्तियाँ भी यहाँ उल्लेखनीय हैं—

दूहा —हियड़उ बादल छाइयउ, नयण टबूकइ मेह ॥३६०॥
प्रसाद —जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति सी छाई ।
दुर्दिन में आँसू बन कर, वह आज बरसने आई ॥
दूहा —यहु तन जारूं मसि करूं, धूंआ जाइ सरग्गि ।
मुझ प्रिय बद्दल होइ करि, बरसि बुझावइ अग्गि ॥१८१॥
जायसी—यह तन जारू छार कैं, कहहुं कि पवन उड़ाउ ।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरहि जेहि पाउ ॥

इस प्रकार की उक्तियाँ हिन्दी काव्य की विरह-वर्णन-प्रणाली का अभिन्न अंग सी बन गई थी। 'हृदय प्रियतम के साथ ही चला गया', 'ये प्राण बडे निर्लज्ज हैं, निकल नहीं गए' ऐसी उक्तिया भी परम्परा-भुक्त प्रतीत होती है—

दूहा —हियड़उ उवांहीसूं गयउ, नयण वहोड़्या नीठ ॥३६२॥
सूर —ऊधो मन नाही दस बीस ।
एक हुतो सो गयो स्याम संग, को आराधै ईस ।
तुलसी —तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा ।
जानत प्रिया एकु मनु मोरा ।
सो मन सदा रहत तोहि पाही ।
समुझु प्रीति रसु एतनेहि मांही ॥
दूहा —हइ रे जीव निलज तूं, निकस्यू जात न तोहि ।
प्रिय बिछुड़त निकस्यउ नही, रह्यउ लजावण मोहि ॥३७३॥

---

१. देखिये दूहा नं० १५६, ५५०, ५५१ ।

तुलसी--(१)अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना।
(२)सो सुत बिछुरत गए न प्राना। को पापी बड मोहि समाना ॥
(३)केहि सुख लागि रहत तन माही।

प्रियतम को स्वप्न में देख कर यह कामना करना कि नींद न खुलती तो अच्छा था, एक रूढ़ परम्परा के रूप में साहित्य में दिखलाई पडता है। दूहा में भी इनका उल्लेख मिलता है—

सुपनइ प्रीतम मुझ मिल्या, हूँ लागी गल रोइ।
डरपत पलक न खोलही, मतिहि विछोहउ होइ ॥५०२॥
सुपनइ प्रीतम मुझ मिल्या, हूँ गलि लग्गी धाइ।
डरपत पलक न छोडही, मति सुपनउ हुइ जाइ ॥५०३॥

मिलन के समय इसकी विपरीत उक्ति भी मिलता है—

जिणनू सुपनैं देखती, प्रगट भए प्रिव आइ।
डरती आँख न मूदही, मत सुपनउ हुइ जाइ ॥५५८॥

कबीर ने इस स्वप्न-दर्शन का उल्लेख किया है—

सपने में साई मिले, सोवत लिया जगाय।
डरपत आँखि न खोलही, मति सपना हुइ जाइ ॥

सूर का गोपी कहती है—

कहा करौं बैरिन भई निंदिया निमिषि न और रही।

भास के स्वप्न वासव दत्तम् की मूल घटना स्वप्न-दर्शन ही है। राजा उदयन वासवदत्ता के स्वप्न-दर्शन को याद कर के कहते है—

यदि तावदय स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम्।

दूहा की पहेलिया में भी कुछ रूढ़ उक्तिया के दर्शन होते है। सूर के 'दूरि करहु बीना कर धरिबो' वाला प्रसग दूहा की निम्न पहेली में है—

विरह वियापी रयणि भरि, प्रीतम, विणु तन खीण।
वीण अलापी देखि ससि, किस गुण मेल्ही वीण ॥५६९॥
वीण अलापी देखि ससि, रयणी नाद सलीण।
ससिहर मग रथ मोहियउ, तिण हसि मेल्ही वीण ॥५७०॥

जायसी में भी इसका उल्लेख आया है। 'माधवानल कामद कला में भी ये पहेलियाँ मिलती है।

मिलन के प्रसग में 'चदन रूखडइ, और 'नागर बलि' मधुकर' और 'कमलणी धरती और 'मह' के मिलन की उपमाएँ परम्परा मुक्त रूढ़िया के उदाहरण रूप में गिनाई जा सकती है।

अस्तु दूहा में हमें ऐसी रूढ़ियो का प्रचुर उपयोग दिखाई देता है जो हमारे साहित्य में दूहा से पहिले और बाद में भी बहुव्यवहृत रही है। इनके आकलन से साहित्य की बहुत सी कवि उक्तियो के मर्म को पहचाना जा सकता है।

श्री कैलाशचन्द्र भाटिया

भाषा में आगत-शब्द

'आगत-शब्द' उधार लिये हुए शब्द के अर्थ में अंग्रेजी के 'लोन-वर्ड्स' का हिन्दी पर्यायवाची है। हिन्दी में इसके लिए 'उद्धृत शब्द' का भी व्यवहार होता है।[1] कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने 'लोन' शब्द के स्थान पर 'बॉरोइंग' शब्द का भी प्रयोग किया है। 'उद्धृत शब्द' का अर्थ है वह शब्द जो अन्य स्थान से ज्यों का त्यों लिया गया है।[2] 'लोन' शब्द का शाब्दिक अर्थ है,—उधार ली हुई वस्तु विशेषतः धन जो व्याज सहित अथवा बिना व्याज के लौटाया जाय।[3] इस प्रकार इस शब्द के मूल में लौटा देने का भाव है। पर भाषा विज्ञान के क्षेत्र में प्रयुक्त इस शब्द के शाब्दिक अर्थ में अन्तर हो गया। 'लोन' शब्द में दो भाव निहित हैं—लेना और वापिस लौटाना लेकिन भाषा विज्ञान या भाषा तत्व के क्षेत्र में व्यावहारिक रूप में इसका प्रथम रूप ही मान्य है, लौटाने वाली क्रिया से इसका कोई सम्बन्ध नहीं रहा। वस्तुतः देखा जाय तो हिन्दी में प्रयुक्त शब्द 'उद्धृत' मूल रूप में 'लोन' का पर्यायवाची न होते हुए भी व्यावहारिक रूप में शुद्ध एवं उपयुक्त प्रतीत होता है, क्यों कि 'उद्धृत' में केवल लेने का ही भाव निहित है जिससे लिया है उसे फिर से वापिस लौटाने की ओर इसमें लेशमात्र भी निर्देश नहीं। 'उद्धृत' में ज्यों का त्यों ले लेने का भाव है, अतएव यह भी शब्द ठीक प्रतीत नहीं होता। जस्पर्सन महोदय का मत है कि इस भाव के लिए 'लोन' शब्द वस्तुतः उपयुक्त नहीं है फिर भी सुविधा जनक और बहुप्रयुक्त है।[4] भाषा विज्ञान के क्षेत्र में 'उद्धृत शब्द' का केवल अर्थ है—अनुकरण। बालक भी अनुकरण करता है पर भाषा वैज्ञानिक अनुकरण उससे भिन्न है। बालक सुने हुए अंश का सम्पूर्णतः अनुकरण करने का प्रयत्न करता है जबकि विदेशी भाषा में से हम कुछ शब्द या पद मात्र का अनुकरण करते हैं।[5] हिन्दी में तो भाषा वैज्ञानिकों ने इस प्रकार के शब्दों के लिए 'विदेशी' शब्द का ही प्रयोग किया है, किसी प्रकार के पारिभाषिक शब्द का नहीं। डा० बाहरी ने ऐसे शब्दों को 'आयात शब्द' माना है।[6]

---

१ धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषा का इतिहास पृष्ठ ३१८, ३३१
२ रामचन्द्र वर्मा—संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर पृष्ठ १४३
३ The Concise Oxford Dictionary IV Edition Page 699
४ Jesperson—Language its Nature Development and Origin Page 208-209
५ Jesperson—Language its Nature, Development and Origin Page 208-209
६ डा० हरदेव बाहरी—देशी शब्द तत्त्व [हिन्दी, अनुशीलन वर्ष ८ अंक ४ पृष्ठ १४७]

भाषा वैज्ञानिक शब्द कोष में 'लोन' के साथ उद्धृत शब्द के लिए (Borrowed) बॉरोड् शब्द की व्याख्या की गई है। ये वे शब्द हैं, जो किसी अन्य भाषा से लिये गये हों। उनके रूप मे परिवर्तन भी हो सकता है।[१] किसी भी अन्य भाषा से लिया गया शब्द 'लोन शब्द' है।[२] इस प्रकार 'पी' महोदय की परिभाषा से एक और स्पष्टीकरण हुआ। प्रथमत तो यह शब्द मूल रूप से किसी विदेशी भाषा का होना चाहिए और फिर यह आवश्यक नही, कि वे तत्सम रूप में ही उद्धृत हो, उनमे परिवर्तन भी हो सकता है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक ग्लीसन महोदय के विचारो की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है, वे 'बॉरोइग' को किसी दूसरी भाषा के वक्ता के भाषण से लिए हुए शब्द का द्योतक मानते है।[3] इस प्रकार ग्लीसन महोदय की व्याख्या से एक और नवीन, साथ ही प्रमुख विचारणीय प्रश्न प्रस्तुत हो जाता है, कि इस प्रकार के शब्द किसी विदेशी भाषा के साहित्य के विभिन्न रूपो व कोषो के माध्यम से नही आते वरन् वे सीधे उस भाषा के वक्ता के भाषण मे लिये जाते हैं और इस प्रकार उनका प्रयोग भी पहिले जन साधारण मौखिक रूप से अपने प्रतिदिन के वार्तालाप मे करता है और जब उनमे से कुछ शब्द बहुत अधिक प्रयुक्त होने लगते है तो उनका प्रयोग साहित्य में भी होने लगता है और ये शब्द विदेशी शब्द के नाम से अपने मूल (तत्सम) अथवा तद्भव रूप में कोष मे भी सम्मिलित कर लिए जाते हैं। य शब्द किसी न किसी रूप में एक भाषा से दूसरी भाषा में प्रवेश कर लेते हैं, अतएव इन शब्दो के लिए "आगत-शब्द" सम्यक् प्रतीत होता है। इस प्रकार उक्त विवरण के आधार पर निष्कर्ष रूप में हम निम्न परिभाषा बना सकते हैं —

आगत शब्द किसी दूसरी भाषा से लिए हुए वे शब्द होते हैं, जो उस भाषा के बोलने वालो के भाषण से लिये जाते हैं और उन शब्दो को मूल (तत्सम) रूप में भी ग्रहण किया जाता है और परिवर्तित (तद्भव) रूप में भी। सक्षेप में हम कह सकते हैं, कि 'आगत-शब्द,' किसी दूसरी भाषा से लेकर हम अपने व्यवहार में लाते हैं[४]।

आगत-शब्द के लिए बहुप्रयुक्त 'लोन' व 'बॉरोड' शब्दो के अतिरिक्त विभिन्न भाषा-तत्त्व वेत्ताओ ने कुछ अन्य शब्दो तथा पदो का प्रयोग किया है। उन में से कुछ विचारणीय है।

(अ) पाचित आगत-शब्द Assimilated Loan
(ब) सकर शब्द Hybrid
(स) ससृष्टि शब्द Loan Blends
(द) (उद्धृत) शाब्दिक-अनुवाद Loan Translation.

(अ) पाचित आगत शब्द[५]

वे आगत शब्द इस कोटि में रक्खे जा सकते है, जो सम्पूर्ण रूप से किसी भाषा

---

१. Pie—Linguistic Dictionary
२. Pie—Linguistic Dictionary Page 125
३. Gleason—'Borrowing is just what its name implies-the copying of a Linguistic item from speakers of another speech form,' Variation in Speech [Descriptive Linguistics Page 290]
४. Pike—Phonemics—Page 242.
५. Pike—Phonemics—पृष्ठ २३३.

में प्राप्त ध्वनियों के अनुकूल बनकर व्यवहृत होते हैं। जैसे अंग्रेजी का 'टिकिट'[1] शब्द (ticket) जिसमें 't' अंग्रेजी की स्फोट वर्त्स्य ध्वनि है। पर हिन्दी में इस ध्वनि का अभाव होने के कारण 'ट' के स्थान पर मूर्धन्य 'ट' प्रयुक्त किया जाता है।

(ब) संकर शब्द

वे मिश्रशब्द है जिनमें किसी शब्द का केवल एक भाग ही 'उद्धत' होता है और शेष भाग अपनी भाषा का होता है। उदाहरण रूप में हम अग्नि-बोट (Agun Boat) शब्द ले सकते है जिसका प्रयोग स्टीमर के अर्थ में किया जाता है। यह स्पष्ट ही है कि इसका प्रथम भाग 'अग्नि' संस्कृत शब्द है और द्वितीय (Boat) आंग्ल भाषा का है। बम्बई में मल्लाहों में इसका उच्चारण आग-बाट (Ag bŏt) के रूप में पाया जाता है। इसका प्रयोग सन् १८५३ में डब्ल्यू० डी० आरनोल्ड महोदय ने किया था।[2]

(स) संसृष्टि शब्द

इस कोटि में वे शब्द आते है जो विदेशी शब्दों के रूप के आधार पर गढ लिए जाते है। जैसे पत० जर्मन में Bocka Buch अंग्रेजी के Pocket Book के आधार पर बना लिया गया। हिन्दी में गाडीवान के आधार पर कोचवान शब्द बना लिया गया।

(द) शाब्दिक अनुवाद

एक प्रकार से विदेशी शब्दों को उद्धत न करके उनका शाब्दिक अनुवाद प्रस्तुत कर दिया जाता है। Sound mind in a sound body न लिखकर स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क लिख दिया जाय।

ब्लूम फील्ड महोदय बारोइंग के दो रूप मानते है —

[अ] बोलियों से आगत शब्द (Dialect Borrowing)

[ब] सांस्कृतिक आगत शब्द (Cultural Borrowing)

जिस अर्थ में अब तक आगत शब्द (loan words) का प्रयोग किया गया है, उसके लिए आपने सांस्कृतिक आगत शब्द का प्रयोग किया है। सांस्कृतिक आगत शब्द किसी अन्य भाषा से लिये जाते है[3]।

'आगत शब्द' के विभिन्न रूपों पर विचार करने के पश्चात् सर्व प्रथम यह विचारणीय है कि किस प्रकार एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा में प्रवेश करते है। संस्कृति की भाँति कोई भाषा भी अपने में सम्पूर्ण नहीं होता है। एक देश की संस्कृति का अपने पड़ोसी देश की संस्कृति पर प्रभाव अवश्यमेव पड़ता है और उसके फल स्वरूप एक भाषा के बोलने वाले दूसरी भाषा के बोलने वालों के सम्पर्क में आते है। जिस देश की संस्कृति अधिक महान् होती है जिस देश की भाषा अधिक व्यापक होती है उस देश

१ 'ट' ध्वनि वर्त्स्य स्फोट अघोष ध्वनि है, जिसका हिन्दी में अभाव है।

२ Hobson Jobson

३ ब्लूमफील्ड—Language Chapter XXV

और किसी एक भाषा में प्रयुक्त न होकर समस्त भाषाओं में अपना स्थान बना लेते हैं और कभी कभी तो यह सोचने मात्र में समय लगता है कि ये शब्द विदेशी हैं? इनका अपने देश से कोई सम्बन्ध नहीं। इस प्रकार के शब्दों की कुछ शब्द नीचे दिये जा रहे हैं।

चाय	Tea (टी)—चीनी
काफी	Coffee—अरबी
चाकलेट	Chocolate—मेक्सिकन
पंच	Punch—हिन्दुस्तानी

हिंदी भाषा में यह प्रयुक्त शब्द कोचवान गाड़ीवान के आधार पर कोच+वान शब्दों के मिश्रण से बना लिया गया। सम्भवत कोच शब्द अंग्रेजी के (coach) 'काउच' शब्द का ही रूपान्तर हो ऐसा अधिकांशत सोच लिया जाता है। पर अंग्रेजी का भी काउच शब्द हंगरी भाषा के Kocsi का विकृत रूप है, जो फ्रेंच में coche के रूप में व्यवहृत होता है।

इस प्रकार 'आगत शब्द' यह घोषित करते हैं कि एक देश ने दूसरे देश को क्या सिखाया और उसकी विश्व को क्या देन है। फ्रांस यदि भोग विलास व विभिन्न प्रकार के फैशनों के लिए प्रसिद्ध है तो इस देश के इन्हीं से सम्बन्धित शब्द अन्य देशों में प्रचलित हुए। यदि अंग्रेजी में उद्धृत फ्रेंच शब्दों की सूची पर दृष्टिपात किया जाय तो इस प्रकार के शब्दों का बाहुल्य स्वाभाविक है। जर्मन भाषा से वैज्ञानिक व दार्शनिक शब्द अन्य भाषाओं में फले और इटली से संगीत तथा कला सम्बन्धी। संगीत का प्यानो शब्द कितना प्रचलित है। गणित व ज्योतिष सम्बन्धी शब्द अरबी भाषा से अन्य भाषाओं में गये—अलजबरा (Algebra) जीरो (Zero) आदि। संस्कृत का शर्करा शब्द विभिन्न भाषाओं में कितने मिलते जुलते रूप में विद्यमान है—देखिए—फ्रेंच [Sucre] जर्मन [Zucker] ग्रीक [Sakkharon] अरबी [Sukkar] शक्कर व फारसी में शकर [Shakar] इस प्रकार ये शब्द किसी एक देश की सीमाओं में बद्ध न रहकर विश्व में व्याप्त हो गये हैं।

जब एक देश का किसी दूसरे देश पर शताब्दियों तक अधिकार रहता है तो शासित देश के निवासी शासक की भाषा को ही ग्रहण नहीं करते वरन् अपनी भाषा में शासक की भाषा के शब्दों का प्रयोग बहुत करने लगते हैं। फलत बहुत से ऐसे शब्द भी उनकी भाषा में स्थान प्राप्त कर लेते हैं जिनके न लिए जाने पर भी भाव प्रकाशन में कोई अड़चन न होती। पर जब किसी देश का सांस्कृतिक प्रभाव किसी अन्य देश पर अत्यधिक पड़ता है तो उसके भाषा भाषी अनावश्यक रूप से उस भाषा के शब्दों को उद्धृत करने लगते हैं। उदाहरणत अंग्रेजी में ठंड के भाव प्रकाशन के लिए cool cold chilly व icy शब्द पर्याप्त होते हुए भी फ्रेंच से frigit, algid तथा gelid से लिये गये।[1] भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के साथ स्कूल, कालेज व यूनिवर्सिटी शब्दों का प्रयोग बढ़ा जबकि उनके स्थान पर विद्यालय, महाविद्यालय तथा

[1] Jesperson Language its Nature, Development and origin Page 210

(७) विभिन्न व्यवसाय और उद्योग धन्धे
निवास स्थान
भोजनादि बनाने के लिए बतन
(८) सामाजिक सस्याएँ व मनोरजन
ग्राम
जाति
सगीत
वाद्य
(९) मनुष्य और विश्व
(१०) तौल और नाप

शब्दों के वर्गीकरण के पश्चात उनके वैज्ञानिक अध्ययन में सवप्रथम और प्रमुख समस्या है—उच्चारण की। कोई भी व्यक्ति अपनी मातृभाषा में भी 'आगत शब्दो का उच्चारण विदेशी ध्वनियो में कर सकता है। पर अधिकाशत व्यक्ति विदेशी ध्वनियो के स्थान पर अपनी मातृभाषा में प्राप्त निकटतम ध्वनियो से काय चलाना चाहते हैं।[1] जिस व्यक्ति के द्वारा किसी शब्द का प्रारम्भ में प्रसार होता है उसका उच्चारण नितान्त शुद्ध व स्पष्ट होते हुए भी, यह स्पष्ट है, कि उसका उच्चारण भिन्न भिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न रूप में करते हैं। अत्यधिक प्रयोग में आने वाले शब्दों के उच्चारण में उन ध्वनियो का प्रयोग होने लगता है, जो उनके यहाँ पूर्ववत् प्राप्त होती हैं और वे उनके उच्चारण में अभ्यस्त होते हैं। उदाहरण रूप में हम कह सकते हैं, कि अंग्रेजी के Thing, third, theatre आदि शब्दों में Th अंग्रेजी की [θ] ध्वनि अन्तदन्तीय सघर्षी अघोष है जिसका हिन्दी की ध्वनियो में अभाव है अतएव इसके स्थान पर लगभग सभी [थ] ध्वनि में रूपान्तरित करके उच्चारण करते हैं। रसियन भाषा में [Y] ध्वनि का अभाव है अतएव फ्रेंच भाषा के आगत शब्दों में वे [Y] के स्थान पर [ju, iu] परिवर्तित कर देते हैं।

जब किसी भाषा की किसी विशिष्ट ध्वनि से सम्बन्धित शब्दों की सख्या किसी भाषा में अधिक हो और प्रयोग भी अधिक हो, तो धीरे धीरे कालान्तर में वे विशिष्ट ध्वनियाँ उस भाषा की ध्वनियो में बढ़ानी पड़ती हैं। फारसी भाषा के प्रभाव के कारण हिन्दी में ध्वनि [ज़] की वृद्धि हो गई है। यही बात स्वर ध्वनियो पर भी चरिताथ होती है। अंग्रेजी भाषा की स्वर ध्वनियों में से पश्च विवृत्त वत्तावार [ɔ] का हमारे स्वरों की ध्वनियो में अभाव था अतएव उसके लिए [ॅ] चिह्न प्रयुक्त होने लगा है। यद्यपि इन ध्वनियो का प्रयोग आगत शब्दों के तत्सम रूप लिखने में[2] विशेष रूपसे किया जाता है और बोलचाल में उतना नहीं। फ्रेंच भाषा में अनुनासिक स्वरो का बाहुल्य है, पर जब वे शब्द अंग्रेजी में लिये गये तो उन शब्दों में अनुनासिक स्वरो के स्थान पर स्वर ध्वनि और नासिक्य व्यंजन ध्वनि का आगम हो गया जसे फ्रेंच [Saloⁿ] अंग्रेजी में [SElon][3]

---

१ E H Sturtevant—Lingistic Change
२ धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषा का इतिहास पष्ठ ९८, १०३।
३ Bloom field—Language Chap 25 Page 444

और हिन्दी में सैलून बन गया। हिन्दी में तो [न्] की ध्वनि पूर्ण रूपेण विद्यमान है।

उद्धृत शब्दो में विदेशी ध्वनियो के स्थान पर अपनी भाषा की ध्वनियो का प्रयोग विभिन्न स्थलो पर भिन्न भिन्न व्यक्तियो द्वारा भिन्न होता है। इस प्रकार अधिकांशत आगत शब्द अपनी विदेशी ध्वनियो को त्याग कर ही भाषा में प्रवेश करते हैं, फिर भी वहु प्रयुक्त शब्दो में विदेशी ध्वनि भी लेली जाती है ऐसा उल्लेख हम ऊपर भी कर चुके हैं। फलत· ध्वनियो में वृद्धि हो जाती है—उदाहरणत. हिन्दी में [फ्] ध्वनि स्फोट ध्वनि है जिसका उच्चारण दोनों होठो से होता है, पर अंग्रेजी की [फ़] ध्वनि सघर्षी है, जिसके उच्चारण मे नीचे का होठ और ऊपर के दांत काम में आते है और दोनों के मध्य में इतना कम स्थान रह जाता है, कि वायु बडी शीघ्रता से सीत्कार करती हुई निकल जाती है। इस प्रकार एक नवीन [फ़] ध्वनि चिह्न की वृद्धि हो गई। इस प्रकार की वृद्धि वाछनीय है।[१]

उद्धृत शब्द जितने अधिक प्रचलित होते जाते हैं, उनकी मूल विदेशी ध्वनियाँ अपनी भाषा की ध्वनियो में उतनी ही बदलती जाती हैं, चाहे लिखने के लिए उनके तत्सम रूप को सुरक्षित रखने के हेतु विदेशी ध्वनि की वृद्धि क्यो न कर ली गई हो। उन आगत शब्दो को विदेशी ध्वनियो के साथ उच्चारण करना नितान्त अस्वाभाविक है और भाषा के प्रवाह में बाधा पहुँचती है।[२] जेस्पर्सन महोदय ने तो इसका रूपक इस प्रकार बांधा है। "Shunting of the whole speech apparatus on to a different track for one or two words and then shifting back to the original basis of artculation."

कभी कभी आगत शब्दो की ध्वनियो में परिवर्तन ही नहीं होता वरन् नवीन ध्वनि का आगम भी हो जाता है—जैसे फ्रेंच से [maıbc] शब्द जब अंग्रेजी में लिया गया तो [marble] हो गया। इस प्रकार [ल्] ध्वनि की वृद्धि हो गई। अंग्रेजी मे शब्दो के अन्त में [र्] ध्वनि का अभाव है, पर हिन्दी में सभी जगह [र्] ध्वनि का आगम हो गया है जैसे अंग्रेजी [मोउट्] (motor) हिन्दी में मोटर बन गई।

कभी तो आगत शब्द इतना अधिक रूप एव अर्थ परिवर्तन कर लेते हैं, कि यह विश्वास भी नहीं होता, कि ये शब्द (अंग्रेजी) विदेशी हैं। अंग्रेजी में प्रयुक्त शोफर विदेशी शब्द हैं। हिन्दी में प्रयुक्त "सपरेटा" उस दूध के लिए प्रयुक्त होता है, जिससे मक्खन निकाल लिया गया हो।

आगत शब्दो के साथ साथ कभी कभी विदेशी प्रत्यय मात्र भी देशी शब्दो मे जुडकर प्रयुक्त हो जाते हैं। फारसी के 'खाना', 'गोरी' 'वाजी' प्रत्यय इतने प्रचलित हो गये हैं, कि इनका प्रयोग देशी क्या विदेशी शब्दो से साथ भी होने लगा है। उदाहरण रूप में हम जेलखाना ले सकते हैं, जो जेल+खाना दो शब्दो से बना है, जिनमें प्रथम शब्द अंग्रेजी से लिया गया है और द्वितीय फ़ारसी का प्रत्यय।

---

१. Pike—Phonemics—Page 142 IV-F (1)
२. Jesperson—Language-its Nature, Development and origin Page 208
३ William L Graff-Language and Languages Page 244.

टिप्पणी——१
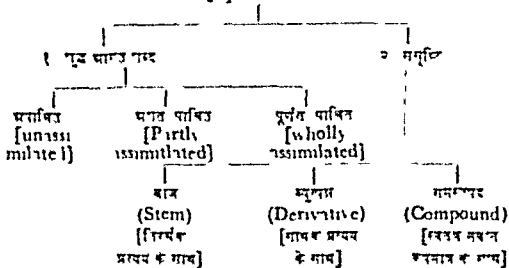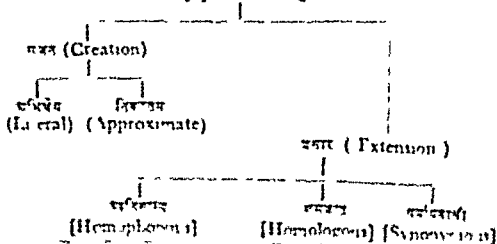
फतहपुर (उ० प्र०) में हस्तलिखित ग्रंथः

जिला फतहपुर की यात्रा में हिन्दी विद्यापीठ की ओर से निम्नलिखित स्थानों का निरीक्षण किया गया।

१—हसुआ यहां संत चंददास की समाधि है। संत चं दास के अभी तक ग्यारह ग्रंथ खोजे जा चुके हैं। इन ग्रंथों में इनके परिचय में ये पंक्तियाँ हैं

वरनो वश विवेक निज, आश्रम धम निवास।
वरन चार जेहि ग्राम में, हरिजस करत प्रकास।
जनि वश महिमा वहुरि बरनौं,
चरन हरि उर आन कै।
तज भोग माया जोग लीन्हो
दिव्य मारग जान के।
पय पान प्रान सुधार दीन्हो,
चरन सतगुरु मान कै।
तन निपुन खत्री वरन पायो,
साधु रज मन सान के।
गगा यमुना मध्य में, हसध्वज को ग्राम।
हसपुरी शुभ नाम तेंहि, तहाँ कियेउ जन धाम॥

[पदो में से।

तह रची सुधार, सुधा धार पवन सरस।
कीरत कृष्ण उदार, भगत ज्ञान दायक सदा॥
सावन कृष्ण त्रयोदशी, महिसुत बासर जान।
समय अठारह सौ वरस, अपर पच परवान।

[कृष्ण विनोद से

अठारह से अरु पंच सम, वर्ष पन्य गुन धीर।
भादो शुक्ला पंचमी, वरने सुजस यदुवीर ।।

[भागवत दसम स्कन्ध की कथा से

समय अठारह सै बरस, अपर चार परधान।
माघ शुक्ल तिथि अष्टिमी, वरन्यो चन्द पुरान।

[राम विनोद (रामायण की कथा) से ।

बरनौ आश्रम वीर निजु, सुन्दर सुपद नेवास।
वसै वरन तत्र चार सुभ, निजु निजु धर्म प्रकास ।।
हंसपुरी स्थान ध्यान, तह हरि को कीन्हौं।
त्याग विषै रस भोग जोग को मारग लीन्हौं ।।
संज्जम नेम सुधार प्रान पै पान सो दीन्हौं।
सुरसरि यमुना मद्ध वास अति उत्तम चीन्हौं ।।
खत्री वरन विवेक देह घर भक्त वढ़ाई।
रघुवर सुजष विनोद चन्द कल कीरत गाई

वसतराय मम पितामह, पिता सो साहबराय।
सहिगल खत्री वंस में कृत शरीर सुख पाय ।।

(राम विनोद से

सत चंददास जी के ग्रथ कैथी मे लिखे हुए है ।

२. गुणीर—संत चददास से भी लगभग दो सौ वर्ष पूर्व गुणीर में सत लक्षदास हुए। इनकी कुटी के अवशेष यहा है, यह दन्तकथा यहा प्रचलित है कि सत लक्षदास से मिलने के लिए तुलसीदास जी भी आये थे। सत लक्षदास की कुटी के ठीक सामने एक नीम का वृक्ष है। कहा जाता है कि तुलसी ने प्रात: अपनी दातुन यहाँ गाड दी थी। वही इस वृक्ष के रूप मे विद्यमान है। सत लक्षदास ने भी बहुत साहित्य प्रस्तुत किया है। इनका लिखा कृष्णायन विद्यमान है। 'भक्ति विहार' नामका एक महत्वपूर्ण ग्रथ इसी जिले में मिला है, जिसे बहुत महत्त्वपूर्ण बताया जाता है। कहते है, उसमें लक्षदास का वर्णन दिया गया है। 'भक्त विहार' चददास जी का लिखा माना जाता है।

३. शिवराजपुर यहा पर चरणदासी सप्रदाय का कुछ साहित्य है। एक ग्रंथ सौ वर्ष पुराना ऐसा बताया जाता है जिसमें मीरा के सर्वाधिक पद है। यहा गिरधर गोपाल की एक मूर्ति है, यह माना जाता है, कि यह वही मूर्ति है जो मीरा की इष्ट मूर्ति थी । कहा जाता है कि सौ वर्ष पूर्व लिखे शिवराजपुर माहात्म्य में इस मूर्ति के यहा आने का उल्लेख है।

४ बहुआ }
५ गौरी } फुटकर ग्रंथ
६ साखा }
७ फतहपुर में जिला नियोजन अधिकारी (डिस्ट्रिक्ट प्लानिंग आफीसर) कप्तेन श्री शूरवीर सिंह के पास निम्नलिखित ग्रंथ देखे । उनका विवरण भी यहा दिया जाता है ।

गुटका

१ जिल्द बाधत समय ऊपर ४, ५ पृष्ठ नये कागज के लगे हुए य जिनमें से तीन फाड लिये गये ह । यह स्पष्ट विदित होता है । क्योंकि उनके कुछ अंश गोंमन के पास लगे रह गये ह । पर नये पन्नो के बचे हुए पन्ने पर ५॥ की सख्या है, जिससे विदित होता है कि चार पन्ने फटे ह । बचा हुआ पन्ना इन शब्दो से आरंभ होता है 'या पाचवा पन्ना है ।

"पानिप अमल की झलक झलकन लागी काई सी गई है
लरिकाई मिटि अगते" ॥१६॥

और यह समाप्त होता है—

"बात यही न गई मो रही गहि हाथ दुहु सो सहेली को अचल ।

इसके बाद प्राचीन कागज पर प्राचीन स्याही मे लिखा ग्रंथ आरंभ होता है । या—

साथ सखी के न १

ये शब्द कुछ फीकी स्याही से बाद में लिखे गये हैं और लाल मार्जिन की रेखाओं के ऊपर हैं । उसके नीचे आरंभ है—

"ई दुलही को भयौ हरि को हिय हरि हिमचल"

यह ग्रंथ ५३ पन्ने तक गया है । ५४ वे पन्ने के पृष्ठ भाग पर समाप्त हुआ है । वहा ये पंक्तियां ह—

लवहुआतें नदकुमार मीच गई डरि बीच ही बिर
रह अनल की झार ॥२१॥ समुझि २ सब रीझि ह
सुज्जन सुकवि समाज रसिकनके रसका कि
यो भयो सकल रसरज ॥२२॥ इतिश्री सुकविम
तिराम विरचित रसराज ग्रंथ सपूर्ण सवत् १८८८ मिती कातिक वदी ११ हीरासीघपीच
र लिखते ।

२ ५४ वें पन्ने पर १ सख्या डाली गयी है । मार्जिन में शीर्षक दिया गया है । मानमजरी और सबसे पहली पंक्ति यों ह—

निम्नगा अपगविरे क सोइ ॥१२॥ सवलिणी

इससे प्रकट होता है कि लिपिक को मान मजरी की जो प्रति मिली उसमें ११ सख्या तक के चरण लुप्त थे और १२ वीं का भी अधिकांश नहीं था । यह मानमजरी चार

पृष्ठों में समाप्त होगयी है। अंतिम दोहे के ऊपर की संख्या ३५ डाली गयी है। उसके बाद : ऊच धाम के नाम। गोख हर्म्य प्रासादनि चली कुंअरि गति मंद उज्जल दल घरनी मनो अवनी आवत चंद ॥२३५॥ इति श्री नंदलालदास कृत नाममंजरी संपूर्ण शुभ म सु राम राम। अत संपूर्ण संख्या मूल ग्रंथ में २३५ होगी और जिस १२ से ग्रंथ आरंभ हुआ है वह २१२ होगा। इन पन्नों में ये विषय हैं : नदी, वृक्षनाम, पत्रनाम, पवन नाम, वेदनाम, वचनाम, अर्धरात्री नाम, लज्जा, लघु भाला नाम, पितानाम, मदिरा को नाम, स्वप्नवनाम, संघात नाम, अन्ननाम, योग्नाम, उपासन के नाम, ऊच धाम के नाम।

३. फिर चार पृष्ठों में रामकथा विषयक किसी ग्रंथ का अंश है जो यों आरंभ होता है—

श्री गणेसअएनह ॥ क्षर्प ॥ दै कर्नन हणुमा
न लंक चौगान चढी जब। जातुधान बिलग्गा
न जरत नर नारि तलफिर तब। भयो सोच हुवो

अंत है

लकापी सावी सपिना ॥ यह कहत वहत तन
घायलनि रावन जानु न रामु नर ॥ निजु ना
रि सहित ले जानकी हि मिलो राम नृपराजु
कर ॥६॥ राम राम जाट्टमं पुस्तक चे आदि

४. फिर तीन पृष्ठों मे कुछ फुटकर पद्य हैं जिनमें "कविगोविंद" तथा कवि देव के नाम स्पष्ट हैं।

५. फिर ५ पृष्ठों में [खानों का चित्र] इस प्रकार खाने बना कर चिड़ियों के नाम हैं। शीर्षक पृष्ठ के ऊपर 'चिरित्र' दिया गया है। बहुत सी चिड़ियों के नाम दुहराये गये हैं तब विरह के दोहों में चिटियों को उपमानादि रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसका आरंभ है—

॥ श्री गनेसअयनम ॥ कजनयनि भृकुटी धनु
प मुप छवि चंद प्रकास ।हंस गवनि मृग
लोचनी परी पिआ की आस ॥१॥ एक विरह

दुख हो सहौ पर न छिन भरि चन ।। दुजे सो
तिय पीहरा पिय २ बोलन वन ।।२।। दारिम

पाच पष्ठों में यह वणन समाप्त हुआ ह । ३० दोहे ह । अत में ह ।

पक्षि चरिज के भेंव सव द्विज प्रभुराम वपान ।।
लगी पचदर पेंच अव नेह विरह की वान ।। इति ।।

६ फिर भजन शीपक से 'आत्मा' या दास आत्मा' नाम के सत वे पद ह, चार पष्ठा में। आरभ हैं 'ध्याईजै सातापति राम आदि। तुलसी की सी शब्दावली है। आत्मा के पदा के अत में एक कविता 'कवि रामराई' की है। 'पैरी पटपीत परीपाग परी अथवा पहरने का ही वणन है। क्या क्या पहन कर कृष्ण यमुना किनारे नृत्य कर रहे ह । ऐसे तीन चार कवित्ता के बाद 'तुलसी के कवित्त हैं।

७ तब चिडियो की तरह 'फूलचेतवनों' है। काष्ठका में फूला की सूची देकर दोहा में फूलों से राधा कृष्ण की शाभा आदि का वणन है। कवि का नाम नही प्रकट होता। 'गोपाल' के प्रयोग में श्लष से कुछ एसा भास होता है कि कवि का नाम 'गोपाल' हो सकता है '३१' दोहे ह। फिर 'सुकवि कलस' का छाप का एक कवित्त है

८ अग अलसाहे क्षत अधरन साहे
मनो रूप के खजाने पर मोहर मनोज की।

९ इसके अनतर दो पष्ठ आमन-सामने के खाला छाड कर 'सतसया' दी गयी है। यह विहारी सतसई है। यह मतसई विषयानुसार सग्रहित है। आरभ में मगल के दोहे ह। आरम 'मेरी भव बाधा' स है फिर वस सधि वणनम, जोवन वरनन, कच वणन, टीका वणन, वेंदी वणन, आदि। यह क्रम बीच में भग हागया है। ६४२ दोहे के बाद पष्ठ नहीं ह। ५३ पना में विहारी सतसई ह। यह गुटका इस प्रकार समाप्त हुआ है।

२ यह हस्तलिखित पुस्तक

।। द लाला भाट की पुस्तक ।।
।। पींगल है जो कोई दावा कर ।।
।। सो झूठ मौजे अभी के रहने वाले ।

फकत

ग्रथ का आरम यो है

श्री गणेसायन ।।गवरि गोद मह मोद मगन मन कर मोद।
कवि लसत सुखकद। वदन वलित ललित उतमग है सग
ह सुभग जगमगिय चद ।। इमि स्वरूप सुभ गज मुप ध्या
वत सरसावत बहु बुधि पर क्षद ।। मगल करन हरन अघ
सजय जय जय सद्ध मदन सिव नद। कुजर तुड सुड झक

फिर पहले प्रकाश के अंत में लिखा है —

महाराज धीराज वीरसिंह देव हुव ॥
चंद्रभान धरनीश धीर ता कोपसीद्ध भुव
मित्र साहि ताको सपूत विख्यात जगत भुव
तासु पुत्र अवतस अवनि पंचभद रूप हुव
जसुजासु अवलव लहिय मतिराम सुकवि हित चित धरिये
रचि छंदसार संग्रह सरस सुगन पद्धति संपूरन करिये ।

इति श्री महाराजधिराज श्री महाराज वंसवतंसावतार श्री सरूपसिंघ कीति विरचिताया कवि मतिराम कृत कौमदा प्रथम प्रकाश ।

यह राजवंश बुंदेला था

श्री वुंदेले वीर कों
मित्र नंद वीर कों
पंचम सभूप कौ
जांचिये शरूप कौं ।

× × ×

संसार मैं सार भोमा पसारी
वुदेल की लाज है सीसभारी
दीललीस की सैन जानै उजारी
पन्ना महिमा कहि रति जोन्ह जोहिये.
चकोर से पंडित प्रेम पोहिये ।
सदा सदा चार विचार मोहियें ।
वुंदेल भूपाल सरूप सोहिये ।

× × ×

सिखिरिनी छद :

सुनिये सिंह सरूप
वली कासी राजा सकल गुन सपन्न विलसै

विमला छद ।

… …परम धरम धाम कासि राज जोहियो ।
नृपति मुकुट अवनि ईंदु स्त्री सरूप सोहियो ।
महाराज राजाधिराज वीरसिंघ देव हुव
चन्द्रभान धरनीस धीरता को प्रसिद्ध भुव ।

मित्र साहि तसु पुत्र सरस विख्यात जगत
तासुपुत्र अवतस अवनि पचम सरूप अत्र
जस जासु जगत अवलव लहि मतिराम सुकवि हितचित धरिये
रचि छद सार सग्रह सरम सुव वन वृत्ति पद्धति करिये ।

कविवसवनत

तिरपाठी वणपुर वसै वत्सुसगोत मुनि गेह
विविध चन्द्रमनि पुत्र तहि गिरिधर गिरधर देह
भूमि देव वलभद्र हुव तिनतत्र मुति गान
मडित पडित मडली मडन मही सहान
तिनकौं तनै उदार मति विश्वनाथ हुव नाम
दुति धर श्रुतिवर को अनुज सकल गुननि को धाम ।
तासु पोच मतिराम कवि निज मति के अनुमार ।
सिह सरूप सुजान को बरनउ सुजस अपार ।
पिंगल ग्रंथ विलोकि क कीन्ह ग्रथ विचार ।
भूल्यौ चूक्यौ होइ सो लीज सुकवि सुधारि ।।२६।।
दोपन देपत सुमतिजन अगहत गुननि अपार
मम क्रमूपित करन हित तिन प्रति विनय उदार ।।२७।।
सवत सत्राह सै वरस अट्ठावन सुभ साल ।
कतिक सुदी त्रयोदसी रि विचार सुभकाल ।।२८।।
वृत्ति कौमुदी ग्रंथ की सरसी सिंह सरूप ।
राची सु कवि मतिराम सो पढो सुनो कवि भूप ।।२६।।

× × × × × ×

इति श्री महाराजधिराज महाराज वमवातस स्त्री सरूप
सिंघ दव त्ति विराचिता या वकि मतिराम पचम प्रकामधा
सवत १८४४ लीख्यत पुस्त कातिक वदि ११ का राम राम राम राम

नदराम भाट

इसी में ६ पष्ठा में एक और पिंगल है रूप दीप पींगल

सारद माता तू वडो सुबुधि देव द्रग हाला ।
पींगल की क्षयाली ये बरनौं वा चाला ।
गुर गनेस र चरन गहि हीये धार क विस्ना ।
कुवर भगाना दास हित जुगति कर ज कीस्ना ।
रूप दीप परगट भयो भया वुद्ध समाज ।
वालक को सुप होत है उपजै अक्षर भान ।

प्राक्रित को बानी कठीन भाषा सुगम प्रतिघार ।
क्रियाराम की क्रिपासो कंठ करी सब सोधि ।।

३ अलंकार प्रकाश—मुरलीधर कवि भूषण का लिखा है । काशी के बुंदेल वंश के गहरवार श्री राजा देवीशाहि देव प्रोत्साहित त्रिपाठी रामेश्वर आत्मज कवि भूषण मुरली धर विरचिते अलकार प्रकाशे अलकार·········

इसमें राजा देवीशाह के छंद भी उदाहरण में दिये गये हैं । इस कवि भूषण ने 'रस प्रकाश' ग्रथ भी लिखा है । उल्लेख है

ममकृते रस प्रकाशे यथा···बारह भेदनि हास्य रसु भरथहि करो बखानु ।
ममकृत रस परगास ते लेत जान मनि जानु ।।२६४।।

'गुरु विषय भगति' के अन्तर्गत उदाहरण है

'ऐसे गुरु धरनीधर के पग पल्लव के पर भाव विराजे ।'

कवि का परिचय अत मे यो है :

राम कृष्ण कस्यप कुलहिं रामेश्वर सुव तासु ।
तासुत मुरलीधर कियो अलंकार परकासु ।।४३२।।
पाँच सुन्न सत्रह वरिस कातिक सुदि छठि जानु ।
अलकार परकास को कवि कीनौं निरमानु ।।४३३।।

सवत १७०५

इसमें स्थान स्थान पर गद्य में व्याख्या भी दी हुई है । दूसरी बार के प्रतिलिपि कर्ता ने लिखा है :—पुस्तक लिख्यते हरिराम त्रिपाठी मनीराम आत्म पाठार्थ शकरदास छत्री वश विबु मेहरे तस्यसफलमस्तु । स० १८०१ मधुमासे शुक्ल पक्षे तिथौ पष्टाया शुक्रवासर :

तीसरी बार . लिखा चन्द्र किशोर सिंह वल्द राधिका वख्श सिंह उर्फ फुल्लूसिह गौतम साकिन आकमपूर पुस्तक लिखा स० १९९७ विक्रमीय कातिक सुदि छठि दिन मगल ५ नवम्बर १९४० ई० ।

४. टीकाराम कृत रसरग—कैप्टेन साहब द्वारा करायी हुई प्रतिलिपि ।

जौन है सुरसरि विसद सूरसुता द्वै कोस ।
जहाँ असुस्थामा कृपा प्रकट करत निस द्योस ।
मध्य देस जाहिर जगत नगर असोथर नाम ।
हरिवंश··· ·तिवारी को तनय लघु कवि टीकाराम ।

असोथर पर दो सुन्दर कवित्त है ।

तव

सविता दीन प्रकास की कविताई को अंग
टीकाराम सुनि रचि सुसुरचि रस रंजित रसरंग ।
विसद देस गुजरात मे नगर वरोधा नाम ।
कृपा कियो नरसिह जू भयो वड़ो विश्राम ।

सवत नान ११८१, १८११ आश्विनि ८, मगलवार शुक्ल पक्ष

सवत शसि कृत वसु शसी आस्विनि मित तिथि नाग ।
दिन मगल मगल करन हरन सकल दुख दाग ।

'रसरग' के अनतर टीवाराम के फुटकर छद है ।

मूनकवि कृत कुछ छद,

टीका राम के, गोविन्द के तथा अन्य कई कवियो के फुटकर छद कैप्टेन साहब ने लिख रखे है।

५ चिन्तामणि कृत कृष्ण चरित्र

उच्च कोटि की रचना　　१२ सर्गों में।

६ (अ) शृगार गीता　गिरधारी कृत
　　शुभ भौम भादा द्वादशी यह आई गो मन मत ।
(आ) नखसिख　वृतमान शम्वत वान सुयरु रन्ध्र चद लसत
　　दुबे कुल ही ।
　　पौ कृष्न त्रयोदस्याश शस्वत १९४० में बना फुल्लसिह
　　(उन्नाव से प्राप्त)

इसके अतिरिक्त 'एकडला' का नाम अभी कुछ समय पूर्व ही प्रसिद्ध हुआ है। यहा से मझन की मधुमालती' ही नही मिली बहुत प्राचीन मृगावती भी मिली है। यह मृगावती सचित्र है। हिन्दी विद्यापीठ ने भी मृगावती' की एक पूर्ण प्रति मनेर शरीफ से फाटो चित्रो के रूप में प्राप्त करली है। यह मनेर शरीफ वाली प्रति फारसी लिपि में है।

असोथर भी फतेहपुर में है। यहाँ भगवन्तराय खीची के आश्रय में भूषण और मतिराम तथा अन्य कवि रहे थे। यहाँ भी पर्याप्त सामग्री पडी हुई है।

टिप्पणी—२

अजमेर में हस्तलिखित ग्रंथ

१ नागर समुच्चय	भक्ति मगदीपिका	सरद की मार्मे
	देह्नसा	श्री ठाकुरजी वे जन्म उत्सव के कवित्त
	वैराग्यवटा	
	रसिक रत्नावली	श्री ठकुरानीजी वे जन्म उत्सव वे कवित्त
	कलि वैराग्यवल्ली	
	अरल पचीसी	
	छूटक पद	साँझी वे कवित्त
	तीरथानद	रास वे कवित्त
	रामचरित्र माला	चादनी के कवित्त
	पद प्रवोध	दीवारी के कवित्त
	जुगल भक्ति विनोद	गोरधन धारन के कवित्त
	भक्तिसार ग्रथ	होरी के कवित्त
	पारायण विधि प्रकास	बसत वरनन
	व्रजलोला	फागपेल समये सपान प्रति नद कुमार
	गोपी प्रेम प्रकास	
	पद प्रसग माला	
	व्रज बकुठतुला	वचन कवित्त
	व्रजसार	फाग विहार
	विहारचद्रिका	फाग गोकलाष्टक
	मोर लीला	
	प्रात रस मजरी	हिंडोरा के कवित्त
	भोजनानदाष्टक	वरषा के कवित्त
	जुगल रस माधुरी	छूके कवित्त
	फूल विलास	
	गोधन आगम	मन विनोद

दोहनानद स्वजनानद
लग्नाष्टक रास अनुक्रम के कवित्त
फाग विलास
ग्रीष्म विहार निकुजविलास
पावस पचीसी गोविंद पद परिचय
गोपी बैन विलास स्वभागीयकीरतनाको अनुक्रम
रासरसलता
रैन रूपारस
सीतसार
इस्क चमन
छूटक दोहा मजलस मभन
अरिल्लाष्टक
सदा की माझें
होरी की माझे
वरषारितु की माझे

२ मतिराम रसराज-रूपनगर मध्येमा लिपत
३ सस्कृत· सामुद्रिक आदि
४ नखसिख सिखनख अत मे ग्रथ प्रशस्तिवर्नन

नगधर कवि वर्णन कियो
नखशिख शिखनख लाग
प्रति भूषन वर्नन कियो
मानहुं उपमा बाग ।१०३।

सवत.

छियालीस उगनीस से
सवत आश्विन मास ।
तिथि पून्यो, वर्नन कियौ,
यह श्रृंगार सुरास ।१०४।

इति श्री मन्महाराजाधिराज श्री पृथ्वीसिह जी तद्वितीय पुत्र महाराजा श्री जवान सिंह जी कृत नखशिख शिखनख वर्ननं सपूर्ण ।

सवत १६४६ का पोस मासे शुभं शुक्ल पक्षे तिथौ ६ भृगुवासरे ।

लिखित ब्राह्मण मथुरादासे न कृष्णगढ मध्ये ।

आरभ में 'हरिभक्त कविनाम माला'

५ श्री राय शिवदास विरचिते 'सरस-रस' ग्रथ

आरभ के २२ पन्ने नही, २६ पन्ने कटे फटे पृ० १५८ तक ग्रथ के आगे का भाग नही । अत मे 'आइ पिया परदेस' शब्द है ।

६ अथ जिन सहस्र नाम लिषते—

सवत सोलह सौ नवै श्रावन सुदि आदित्य ।
करनाछन तिथि पचमी प्रगटो नाम कवित्त ।१०३।

इति श्री भाषा सहस्र नाम सपूर्ण

७ पृथ्वीराज रासौ कनवज कथा लिष्यते—

दोहा—कै जानै पृथिराज हौं क पयान पृथिराज ।
सित सामत सुभ महे पगराइग्रह काज ॥

१६१ पत्रे ह । अतिम पक्ति है ॥८६०॥ के बाद छप्पय ॥

ससि दीनो मृग वह्यो कह्यो ।

८ सर्वोत्तम यमुना लहरी, नवरत्न, कृष्णाश्रय सिद्धान्त रहस्य, बालबोध आदि ।

९ बारहमास के उत्सवन के पद जन्माष्टमी के पद दाई के पद, छठा के पद, पालने के पद, बाल लीला के पद, दमौधी के पद ।

१० छूटक कवित्त महाराज श्री नागरीदास जी कृत-नाना रस रस के कवित्त । मल चतुर चित्त मार सुपदहि सवत अठारस बासठ फागुण घोर । घन तेरस सनिवार में । भारहि बार सहार ।

इति श्री महाराजाधिराज श्री नागरीदास जी कृत छूटक कवित्त सपूर्णम । सवत् १८९९ का वर्ष मिति आसोज सुदि २ गुरुवारे लिखिन । ब्राह्मण ललितादास कृष्णगढ मध्ये श्रीरस्तु माहाराज श्री भोपालसिंघ जी का सिरकार में पुस्तक लिपी ।

अगरासै निनाणव लिखीया ललता दास
क्वार मास सुध दोज गुर नागर क्रिसन निवास ।

११ ज्योतिष रत्नमाला सस्कृत श्री पति भट्ट विरचित । लिखित स० १८०८ चैत्र बदी ८ बुधवार मेदपाट मध्ये ।

१२ शातिअजितनाथ पच कल्याणक लिख्यते (अपभ्रश—हिन्दी के निकट) बड़ जन ग्रथ गुटका रूप ।

१३ १ सकल पडित शिरोमणियाणमत श्री अनापसागर जी गुरुभ्योनम । अथ सूयज को सिलोको लिख्यते ।

२ मान्तु गाचाय भक्तामर सुसिद्ध स्तोत्र
३ बीस विहरमानसरनाम　　स्तोत्र
४ लक्ष्मी स्तोत्र (सस्कृत)
५ सौल सतरा का नाम ।
६ कल्याण मदिर भाषा
७ तत्वार्थधिगमोक्ष शास्त्र (सस्कृत) सागरेण लिखित साह जोगा जी तत्पुत्र चिरताराचद पठनाय शाधियाग्राम वाच्यमान चिरजापान ।
८ देवी भगानी पूजा
९ नदीश्वर पूजा जयमाल

१०. अठाई पूजा स० १७६८ वर्षे माह वदि ५, गुरुवासरे श्री अनोपसागर श्री अजब सागर श्री जसरूपसागर लिखित श्रीनगर ग्रामे ताराचद पठन कृतार्थे

११. अथ शनीश्चरकथा

१२. पारसनाथ सत्रुप्टपणा सी आठीत वार की पंजम रूप कथा ।

१३. आतम पचीसी। हिन्दी। सवत मतरा में इकहत्तरै आतम पचीसी सार। पुन्ये कीर्ति मुनि कही समझो वारवार। इति श्री चदप्रभु जी प्रसादात वाच्य-मान चिरजीयात् श्रीनम.

१४. दर्शनाष्टक (स०)

१५. नेमिनाथ को सवैयो

१६. मोरला जी की विनती .

संवत सतरै पच्यासीयै पोस दसमिरविवार
साहिव जिन जी सघ सहित प्रभुनगर थी भेंट्यां सिव सुपकार ।

१७. अष्टद्रव्य पूजा ।

१८. घटाकर्णो मत्र लिख्यते ।

१९. वूटक दूहा ।

१४. पोथी सूरदास जी का पदा की तीरापत्र १७५

"अथ सूरसागर लिख्यते. प्रथम श्री कृष्ण देव को जनम समय। राग विलावल-अधेरी भादो की राति ॥ वालक को वसुदेव दे की। पठे पठे पछितात। ५६ पन्ने। ७६ पद।

अथ सूरसागर द्वारका की सोभा पुन विवाह वर्णन लिखितं। राग सारग।

द्विज कहियौ हरिसौं समझाय।
सकति शृकाल सिघ की भोजन
दरवरदे कौं छीनें षाय।

पन्ने ४३ पद २४५

अथ सूर सागर भ्रमर गीत : रागविलावल-कोउ आवत है तन स्याम ।

पाती ऊधौ आगमन
गोपिका ऊद्धौ को तिरस्कार निठर वाक्यं वदति
गोपिका उधों प्रति झगरो प्रति वाद वदलौ मांगति तदा वदति
गोपिका उधौ प्रति विसै वाक्य वदति
गोपिका उधौ प्रति उदास वाक्य वदति
गोपिका ऊद्धौ प्रति वाक्यं वदति
गोपी ऊधौ प्रति कुविजा की हासि वदति

गोपिका उद्धौ सौं मन की अवस्था वदति
गोपिका उधौं सौं नेत्रनिकी अवस्था वदति ।
गोपिका जोग की कथा सुनत ऊधो प्रति रिसानो
गोपिका ऊद्धौं सा विद्या नी तक्र वदति
गोपिका उद्धौं सौं सदेस वदति कृष्ण कौ
गोपिकानि की सब व्रज की अवस्था उद्धो कृष्णसो वदति
गोपिका विरहूनि सपी प्रति सपी कृष्ण की कथा वदति ।
गोपिका विरहिनी मेघदेपि सपी प्रति सपी वदति
गोपिका विरहीनी चात्रिय कौ सब्द सुनि दुपित होति ।
गोपिका विरहिनो मोरि सौं वदति
गोहिका विरहिनी कोकिला सौं वदति
गोपिका परस्पर निद्रा की कथा वदति
गोपिका विरहिनी चद्रमा सौं विन वदति
कृष्णदेव द्वारक वमेत गोपिका वदति

पन्ने ७६ ४३२पद पूर्ण एक पद अधूरा

काहे की वकवाद वढइए ।
जो तुम करी हम सही यू परि सगले अइए । टेक ।
सिबते गोंप योद देदिधि कौ
राखी कुजमु आनिदिपइए ।
पूज्यौ कुहू काकतिय हस

१७५ कुल पृष्ठ

१५ श्री भक्त मुजस

माहेरा नरसी १ मारा मीथुला सवादे, नरसी पूव पुत्र वनन प्रथम विश्राम ।

(पन्ना ७वाँ गायब और आरभ के दो पन्ने भी नहीं । अंत का भी कम से कम एक पन्ना गायब है जसा अत के शब्दों से लगता है ।)

द्वितीय विश्राम मीरा मियुला सवादे नरसी ग्रह त्याग वराग वरनन ।
तृतीय विश्राम मीरा मियुला सवादे दुज ग्रह गवन ।
चतुर्थ विश्राम मीरा मिथुला सवादे नरसी भोजन विधि वरनन ।
पचम विश्राम मीरा मियुला सवादे बरात आगमन ।
षष्ठ विश्राम मीरा मियुला सवादे प्रभु आगमन ।

नरसी जुको माहिरो सुने सब चित लाय ।
जन्म जन्म नर नारि के पाप पराभव पाय ।

गगा यमुना सरसुती और कासीह भय जाग ।
हरिजन जस श्रवना सुनै ताके पूरन भाग ।
मेरे कृत यह माहिरो संतन को सुष मूल ।
जो सजन श्रवना सुन पाय जर जिम तूल ।
भूमिदान गो हरिन्य सम सुनत पुन्य अस होय ।
मे मीरां हरि जस कह्यौ सुन सखी मिथुला तोय ।

मीरानु : छत वै देख्ये सति सनह पूरन भक्त जस असै कह्यौ ।
भव कूपे (यै) मोचन मुक्ति मारिग दुष्ट जन सुरपुर लह्यौ ।
कलु काम त्याग कलम नर जी नीति धरि निति गावेही ।
अन माहि अष्टासिद्धि सब सुष उमगिता ग्रह आवेही ।
उपजे अधिक अनुराग सब अग भक्ति मारिग पावेही
कलू काम तरु आनंद रूपादास मीरां गावेही ।

मिथला वा० सोरठा

धनि जन्म धरि देह,
सदा सरन तेरै रही ।
कौनु सति सनहै, आजि
सुफल सांची भई ।१।
भई मगलावेर सब समाज दरसन कर्यौ ।
दासी लीनी टेरि सबही चले नीज भजन कुं ।२।
धनि तेरी पीतु मात धनि धरा जनमी जहाँ ।
कीनी मोहि सुनाथ,
श्रवन सुन्यो श्रीकृष्ण जैसे ।३।
अरून उद की वेर चलेउ संगि मिथला सखी ।
सब समाज मिल फेर हरिही कृपा करिहै जबै ।
मम वुधि प्रमांन कछुह ।

पन्ना ५३

कही गुजराती भी है ।

१६. श्री परमानन्ददास जी के पद कीर्तन पन्ने १४८ पद ११०४ ।। अधूरे
अन्तिम चरण "मैया मोहि दाऊ बहुत........

१७ पूजन पाठ की सूचनका ।

पन्ना १. तीन चौवीसी का नाम

१. दर्शन

१. पच मंगल

२ प्रथम मगल
२ दुतीय मगल
३ निवाण काड भाषा ।
३ कल्याण मदिर भाषा ।
५ वारह भावना
५ चक्रवत की भावना
६ बाईस परीसह
९ सुभ सतक
११ मृत्यु महोत्सव की देश भाषा ।
१७ भक्तामर
१९ दश सूत्र
२३ छहढाली
२४ गुरा की वीनती
२४ साधु जमाल
२५ इष्ट छत्तीसी
२५ अष्टादश दोष
२६ वराग पचीसा
२६ देवाकी पूजा
२९ बीस वाहरमान जयमाल
२९ सिद्ध पूजा
२९ सोल कारण भाषा पूजा
३० दश लक्षण पूजा
३२ अनत व्रत पूजा
३२ परमरू पूजा
३३ अठाई जी की पूजा
३४ अष्टक
३५ शांति पाठ
३६ नदीश्वर पूजा
४६ देव शास्त्र पूजा ।
४७ अप्रतिम चत्याला की पूजा
५० निवाण सिद्ध क्षेत्र पूजा
५१ तीन चौहसी की पूजा
१८ धरम परीक्षा भाषा

"देव धरम गुरू वदि करि
जिन उपदेश महत ।

पढत सुनत उपजै सुबुधि
अनुक्रम मुक्ति लहंत।
होणहार कारण मिल्यौ,
हीरामणि उपदेश।
कारण विना न भव्य जन
का जन ह्वै लव लेश।

× × ×

सतरासै पिचोत्तरै
पोष दशै गुरुवार।
शुभ वेला ग्रह शुभ लगन
कियो मुहूरत सार।

सवैया।३१।

कविता मनोहर पडेलवाल सोनी
जाति मूल संघी मूल जाकी सांगनेर वास है।
कारमा की उदै तें धामपुर में वसन,
भयौ सबसौ मिलाप फुनि सजन को दास है।
व्याकरण छंद अलंकार कछू पढ्यौ नाहि
भाषा निपुण कछु वुद्धि कौ प्रकास है।
वाई दाहिनी न केहा समुझै संतोष लिये
जिन दोही ताकै एक जिन ही की आस है।

नगर धाम पुर में :

सस्कृत रचया १००७ सवत विक्रमी मे—संवत १९३२ का भाद्रवा वदि (९) नवम्यां वुध वासरे लिखित कृष्णगढ मध्ये। १३१ पन्ने।

१९. श्री नृत्य गोपालो जयति। अथ गुणसागर कृत षट्पदी लिख्यते।
सवत १९५६ मार्गशिर सुदि ९ चद वासरे लि० ब्राह्मण मथुरादासे। कृष्णगढ मध्ये। पन्ने १९

२० श्री नृत्य गोपालो जयति। अथ धमार शतक लिख्यते।

दोहा—कृष्ण केलि शृंगार रस ताकी कथा अनेक।
पै प्राचीन धमार के होतन सम कोउ एक॥

राग विभास · खिलावन आवेंगी ब्रजनारी .

सहचरी, लछीदास, गोकुलचद, चत्रभुज, गोविंद

इति श्री मन्महाराजाधिराज श्री पृथ्वीसिंहजीतद्दितीय पुत्र महाराज श्री जवानसिंहजी ग्रहित प्राचीन धमार सारीत धमार शतक सपूर्णम्।

वद मदन मोहन वृजवासी के जो कोई वाच ताकूं हमारे भगवद स्मण ।
२१ अनेक नाम माला नददास कृत–१६ पत्रा में ।
२२ कृष्ण रुक्मिणी का विवाह या मगल-लेखक 'पदम भगत'–७३ पन्ने
२३१ पचान राजा की कथा पत्र १८७

श्री गणाधिपतये नम —

दोहा—श्री गोपाल सहाय है, यहाँ छैल पति राज ।
गुरू गनपति सरस्वति सुनौ देहु विद्यावर आज ।१।
जातें हो चाहत कह्यो नायक भेद अनूप ।
ग्रथ रीति बरनी कविन यह नायक रस भूप ॥२॥
श्रोता सुनहु सुजान तुम नायक कहत जताय ।
वीर धीर बिन छैलता नायकता नहिं पाय ।३।
वाद भये द्वै सखिन में सुनहु प्रगट चित लाय ।
उत्तर प्रति उत्तर दये निश्चै भेद बताय ।४।
एक विवेकिनि जानियौ इक अविवेकनि नाम ।
इक द्वै सखि तिनके नाम चोप तीप तन चित्त में रहत जु एकै धाम ।५।

कवि वचन—
निज निज द्वै सखी पियन की रीझि चलावत बात ।
अपनी अपनी चौंप सो सोभा सहज बतात । अथ अविवेकिन—
सत्तरासे अरू ग्रासिये (ग्रासिये) सुदि दसमी ससिवार
चैत मास पुरहूत पुर ग्रथ लयो अवतार ॥

२ श्री राधा वल्लभो जयति । अथ रगविनोद लिख्यते
३ प्रीति चौवनी
४ अनुरागलता
५ भजन सत (ध्रुवदास कृत) श्री हरिवश सरोज पद जो प सेयँनाहिं।
६ शृङ्गार सत (ध्रुवदास)
७ रसहीरावली (षट ऋतु युक्त है)
८ बैंदक लीला (ध्रुवदास)
९ राजा पचक कथा वनन

धमपाल अरू सिघ सुभट
धनसचय पुनि भूप ।
भयो नृपति नारीकवच
अधम पाप को रूप ॥

ए पाचो राजा भये,
समये निज निज पाय।
जस अपजस नृप प्रकृति सौं
रह्यो धरनि मे छाय।

अथ प्रथम धर्मपाल राजा वर्णनं

पच नृपन की यह कथा, सूछिम कही वनाय।
श्री नगधर उर धारिये, सोहै सीस सहाय ॥

इति श्री पचम राजा अथम सपूर्ण। सवत १७८७ मागसर सुदि ३, चन्द्र वासरे लिपि कृत रवतावर नागिर शुभ भवतु

१०. अथ सजनननिछानिग्यते

कवि नागिर

सवत सत्तरासै निवै, भादव मास पुनीत
तिथि चवदसि ससिवार को रच्यो ग्रथ जुत नीत।

११. अथ सालव जुद्ध लिख्यते

कवित कहे शृंगार के मति मेरी उनमान।
कृपा करी सब कवि कह्यो कहा कहा वनि दान।
रस सिंगार को वरनिवो इन को सहज सुभाव।
कौन मिपावै तिननिको, सुतह सिद्ध यह भाव।
जो कछु व्रज रस में कह्यो कवि जन कर्यो प्रमान।
किहु मौसौ ग्रैमें कह्यो, जुद्ध न सको वपान ॥३१।
तासौ वरनत रौद्ररस गुरु किरपा सिर धार।

\+ \+ \+

.. कीजै मो हिय वास
व्रज दासी विनती करत यह धरि हिय मे ग्रास
निगम वोद यमुना तटे। उत्तर दिसिकै ठाँहि
यह पोथी कीनी लिखी, इन्द्र प्रस्त के माहि।
सवत सत्तरासै समै वरष तियास्यी मान।
मंगल वदि एकादसी मास चैत्र सुभजान।

१२ सवैया

१३. छूटक कवित्त ` राय कवि कृत रावत गोपाल सिह के यहाँ

१४. प्रेमावली (ध्रुवमैन कृत)

१५. रहस्य मजरी ,,

१६. सुख मजरी ,,

१७ रग विहारी लीला ,
१८ रति मजरी ,,
१६ नेह मजरी ,
२० सहज विवाह लीला ,,
२१ नाटक कृष्णाभरन लक्ष्मी राम

२४ मतिराम रसराज
पहले ५ पन्ने नही सवत १६२१ का मृगसार वदी १ गुरुवार लिपि कृत जासी बाल मुकद । कृष्णगढ मध्ये ।

२५ श्री हितेन कृत चतुराशीति पदस्य अक्षराथ मन सवोधनार्थाय निरयते ।

सग्रह स इक्यानव सवत माघो मास
यह प्रबध पूरण भयो शुक्ल देवन बुध वास ।
प्रेमदास कृत चौरासी पदवध टीका सपूण ।

२६ आराधना सार (अपभ्रश)

२७ श्रीपालरास

हो मूल सग मुनि प्रगटो जाणि
कीरति अनत सील की पाणि ।
ता सुतणो सिष्य जाणिज्यो हो ब्रह्मराय
मल दिढ करि चित्त भाव भेद जाणै ।
नही होतहि दीठो श्रीपाल चरित राम ॥६३॥
हो सोलह सै तीस सुभ वरस हो मास असाढ भण्यो करि हरष
तिथि तेरसि सित्त सप्तमी हो अनुराधानष्यत्र सुभसार ।
करण योग दीसै भला हो सोभन योग सनीसरवार रास० ६४ पन्ने २८

२८ विक्रमादित्त चोवोली स० १६३८ ॥ वर्षे जठ सुदी १५
२६ भट्टराज कत चमत्कार चिता नाम राग (१) जातकोक्त न समग्रहाणा
३० भुवन दीपक (सस्कृत)
३१ माधव निदानस्यवृत्तिमाधवी
३२ रिसालू पर कुछ छोटा गुटका
१ रिसाल कुवर री वात-चारण 'नरवदा' रचित ।
२ गुर चेलारा दूहा
३ वृद्ध जन पुस्तक

३३ दस्तूर मालिका । लेखक वसीधर

जदपि दुनी देप घन,
लेषे क करनार ।

भटकत विनु दस्तूर हैं
अटकत वारवार।
संवत सत्रह में क स्य पैंसठि अधिक पुनीत
करि वरननि या ग्रंथ कौ....... ।

३४. भक्तामर स्तोत्र (जत्र मत्र)

३५ पनाकी वार्ता . वीरमदे पनी
लिखि ब्राह्मण वलदेव अजय नगर मध्ये
'भाषा वीर सिंगार' की
वरणी सरस बनाय।
(राजस्थानी गद्य पद्य)

३६. वसुदेव कुमार चउपई
वरलास नयरि घरि हरिस।
सय पनर सतावन वरिस (१५५७)
कुल चरण सुपंडित सीस
वहइ हरपकुल निसदीस

३७ श्रीमतिकर महामुनि चरित्रे श्री महापुराण दुहन। प्रति १७०६ (सरहन)

३८. हरिवश (कुछ भाग)

३९ निघटु

४०. घनागालभद्र की चौपई
सौलैरवय बहत्तरि वरस्यै
आसोज वदि छठि दिवस्यै जी।
लेखक। भवियण या भविकजे। लिपि स० १८६७
राजा जनक राय के लश्कर मध्ये जती ऋषि राम चन्द्रेन
लिपायित सेठ भीमराज जी तत्पुत्र सेवाराम कान्य जैन धरमी। जाति पर्नोवार

४१. सिहासन बत्तीसी ' सवत सोलह सइ छत्रीस
कही हीर सुणी यथा : कुछ आदि अत नही
कवि के स्वहस्त की बतायी जाती है। कवि है 'हीर = हीर कलश
आरभ के तीन पन्ने नही बाद में ६२ पन्ने से आगे के पन्ने नही।

४२ कल्याण मदिर भाषा : भाषा कहत वनारसी।

४३ भक्तामर (भाषा)

४४ रमसार कुमार रास—लिपि १८२८, जेष्ठ ११ भृगुवासरे

४५. मृगावती . समय सु दर
श्री सवत १६०४ वर्षे शाके १६६८ प्रव० मिति पोप वदि १३ मृगुवासरे पं० तिलक विजय गणिनि लिपी कृत .

श्री पापलाजनयरे—

सोलसइ अठसठरास्य वरषे
हुई चउपई घणे हरषे वे

४६ पचतत्र भाषा
४७ चद चउपई
　सवत सतरे वरस अठार ए ग्रंथ रच्यो अणुवासारवे ।
४८ कोव भूषण शृंगार ग्रथ
　कवि आनद विरचित काव्यसार पत्र । लिपि स० १८८७ वि० कार्ति बुध ६
४९ कालिकाचार्य कथा
५० सग्रहणी सूत्र—स० १६२३ कार्तिक मास शुक्ल पक्ष ८ रसाम । रयवाड़ा मध्ये लिखित (सचित्र) ।
५१ करकडे महारथ चरित्र
५२ श्रेणिक रास वट पट्टनयर सवत सोल एक वासइ भाद्रपद सुदि सुभवार प्रारभ दोसई १७०५ लिपि चत्र सुदि ३ भौमे धमशील न लिखा रामपुरा मध्ये ।
५३ हेमचन्द्र अवधान चितामणि—सवत १७४८ वर्षे कातिक सुदि २ बुधवार ।
५४ शालिभद्र जिनराज सूरि कृत सोनसौ लहसो अठोत्तर वरस्ये ।
　लिपि स० १७९४ भाद्र सुदि १५ अरक्वासर
५५ चित्रसेन पद्मावती कथा (सस्कृत)
५६ वद्धमान काव्य—सव० १५५० वसाख सुदि ३ रोहिणी नक्षत्र शुक्रवार
५७ श्री महाचार्यत्यादि (वल्लभ पर)
५८ शालिभद्र चौपाई—जिनसूरि
५९ बुधरामो लिपि १८०६ श्रावण वदि १२ सादडी ग्राम
६० नवकारसी उपरि सुर मू दरी चोपई प्रवध
　सवत सतर वरस छत्रामो श्रावण पुन्य सन्दीवस जी ।

× × × ×

गणधर गोत्रे गछपति राजै
जिनचद्र सूरि विराजै जी,
श्री वेना तट पुर सुपसाज,
चौपी करी हित काजैजी ।

६१ सूर्य सहस्र नाम
६२ वत्तरत्नाकर वद—स० १८१६
६३ शालिभद्र चउपई
६४ तुरको सोलातर—स० १८२२ माह सुदि ५ बुधवासरे लिपि नाथूराम रूपनगर मध्ये पोथी सरकार की छे ।

८६ सु दर शृगार महा कवि राइ विरचित
　१६८८ सवन सारह स वरस वीते अठ्यासीति ।। कातिक सुदि पष्ठी गुरो, ग्रथ रच्यो कवि प्रीति ।

८७ पदिमनी चरित्र ढाल भाषा वध श्री ल धादय वध विरचित

+　　　+　　　+

भागचद कुल भाण विनयवत
गुणवत सोयाजीसेह रोरे ।
वरुदाता गुणजाण ।
१७१७ वसुग्राग्रह करि सवन,सतर सतोत्तरइर । चैत्र पुनिम शनिवार
नवरस सहित सरस वध नवो रच्यो रे निज वुद्धि अणुहार ।

८८ समय सु दर की रचनाए—प्रद्युम्न चरित
८६ रत्नपाल चरित्र
६० कालिकाचाय कथा
६१ राजल जी को बारामास्यो
६२ विसवावीसें चोपई
६३ प्रिय मेलक चउपदी
　सवत सालवहात्तर मेडतानगर मझार
६४ अथ चद्र कुवर री वारता ।
६५ आपाड भूत चोढालिया
६६ सुदरखाड तुलसी—१७४१ स० लिपि ।
६७ जवू दीप प्रकरण —सोरोहा नगर लिपि स० १५६६ वर्षे कातिक वदि ३
६८ शालिभद्र
६६ मग्रईमी रत्न　　　स० १८१७
१०० कवित्त कुन्डलिया गीरधर का
१०१ बारह भावना विलास

द्वीप युगल मुनि शशि वरसि जा दिन जनम्यो पास ।
ता दिन कीनों राज कवि इह भावना विलास ।।

प्रति स० १८३२ मिगसिर वदि

१०२ सव प्रजून

सुपकार सवत सोलए गुणसटिठ विजय दसमि दिनइ ।
एक वीस ढाल रसाल ग्रथ रच्यउ सुन्दर सुलभ नइ ।१६५६

१०३ एक पुस्तक
१०४ गुद्रमणराम—१८३०

मन्त्र

जनवरी १६५६ के अंक में मन्त्र' पर जो निबंध प्रकाशित हुआ था उस पर अच्छा विचार हुआ। कुछ मत ऊपर दिये जा चुके हैं। 'मन्त्र' के सबंध में कनिंघम महोदय ने भी एक स्थान पर कुछ विस्तार से लिखा है। उसका सार यहाँ दिया जाता है।

उन्होंने वीर पूजा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वीरों की पूजा के अवसर पर विविध वीर के थानों पर मनुष्य मन्त्र गाते हैं। ये मन्त्र दो तरह के होते हैं सावरी मन्त्र अथवा 'सावर मोहन' (Charms), दूसरे जादू मन्त्र—रहस्य युक्त मन्त्र। सावरी मन्त्र वीरों से अथवा प्रेतों से संबधित होते हैं। इनकी साधना श्मशान में ही होनी चाहिये जहाँ 'शव' जलाया गया था। जादू मन्त्र तो सरलता से प्राप्त हो जाते हैं पर सावरी मन्त्र शुद्ध रूप में कठिनाई से ही मिल पाते हैं। क्योंकि एक तो मौखिक होने के कारण बहुत विकृत हो गये हैं। लोगों को उन्हें बताने में भी बहुत संकोच होता है, बहुत से इनमें से सम्भवत काफी पुराने होंगे या उनके शब्दों के रूप बदल गये हैं कुछ में तो मुसलमानी नाम और पद तक जोड़ दिये गये हैं।

इस विमर्श के उपरांत उन्होंने कुछ मन्त्र दिये हैं—

अ—मन्त्र अगिया बैताल को

ओम ! नमो अगिया वीर बैताल।
बैठे सातमे पाताल,
लाव अगन की झाल
बठे ब्रह्मा के कपाल।
मछली, चील्ह का गलीज, गूगल, हरताल,
इतनी वस्त ले चले नाले चले,
तो माता कालिका की आन

आ—मंत्र अजै-पाल का

ओम ! नमो धारा-नगरी अजै-पाल ।
अजै पाल राज की मान रानी,
काली, धूरी, नीली
पूरी, थाक, नीर थीली,
रोखा वीर का बाग-बगीचा, कुवा-बार्या
भीतर-बाहर, चले-चले,
कछू ना कछू भय करे
तो राजा अजै-पाल का चक्र फिरे,

इ—मंत्र भैरो का

ओम ! नमो गुर गुरे !
तू गुर ताम्र मसान !
खेल करन्ता जा उसको देख पास
वह राखे हमारी आस—
कसम को देख,
जले बले हमको देख—
हँसी करे, चल चालरे, कालिका पूत,
सोती होई, जगा लावे,
बैठी होइ, उठा लावे,
ना लावे,
ता माता कालिका की सेज पाँव धरे ।

इस मंत्र को रविवार को मसान में जाकर एक पैसा भर लाल बूरा और कुछ तेल सहित सिद्ध किया जाता है ।

ई—चौकी हनुमत वीर की

ओम ! हनूमान !
बरस बारह का जवान !
हाथ मे लड्डू,
मुख में पान,
हूक मार आओ
बाबा हनूमान !

यह हनूमान सिद्ध करने का मंत्र है । विधि—महीने के पहले मंगलवार को साधना आरंभ की जानी चाहिये, व्रत रखकर और लाल कपडे पहन कर । तेल में मिलाकर सिंदूर

का चोला हनूमान जी की मूर्ति पर चढाना चाहिये, सामने एक दीपक रखिये, गूगल या धूप दीजिये। एक गेहूँ की बडी रोटी, घी से चुपड कर मामूली बूरा रखकर हनूमान जी को भेंट दीजिये। उक्त मन्त्र ग्यारह म बार प्रतिदिन मूँगे का माला पर पढ़िये। चालीसवें दिन हनूमान जी वश में हो जायेंगे।

यहाँ तक के मन्त्र शुद्ध साबरी मन्त्र बताये गये ह।

उ—हाजरात जिनों और परियो की

तारा-तूरी स्वाहा

जिस वृहस्पति का शुक्ल पक्ष की दूज पड़े उस दिन कुछ चावल और दूध खाने के लिए बना कर, एक एकान्त स्वच्छ मकान में साधना करे। कुछ सुगंधित फूल मिठाइया गूगल धूप, अगर लावे। सिंदूर से एक वृत्त बनाये, उसमें ८ लौंगें, ८ सुपाडिया, और एक कोरा घृत दीपक रखे, बाद में समस्त मिठाई और पुष्प भी उसी वृत्त में रख दे। पहले रक्षाकवच' का पाठ करके उक्त मन्त्र का नाम पाच हजार बार प्रतिदिन करे। प्रतिदिन फूल और मिठाइया तो ताजी रहें। दीपक वही रहेगा। रगीन कपडे पहन कर और पवित्र रह कर साधना की जानी चाहिये। कुछ दिन में जिन्न या परी वश में हो जायेगी।

ऊ—भैरों की जजीर

ला इलाह इलइल्ला हजरत वीर।
कौसलाइ कौसल्ला वीर।
आजम जेर खरकर मदीन
तेरी जजीर से कौन कौन चले।
बामन तो भैरो चले।
चौसठ तो जोगिनि चले,
देव चले, दाना चले,
चलिया तो विशेष चले,
ताइर्या सालार चले,
भीम गदा चले,
हनूमान की हाक चले।
नाहर सिंघ की धाक चले,
नही तो
सुलेमान के तख्त की दुहाई।
एक लाख अस्सी हजार पैगम्बर की दुहाई।

यह मन्त्र वृहस्पति वाली दौज का जपना चाहिये, घी का दीपक और लोबान जला कर कुछ सूखा मेवा चढाकर इक्कीस हजार बार जपने से रोग दूर हो जात ह।

ए--चौकी मूठी वीर की

बिसमिल्लाह, अर्रहमान, अर रहीम !
सोन चक्र की बावरी, गोल मुत्तिग्रन का हार,
लंका सा कोट, समुन्दर सी खाई,
जहाँ फिरे, मुहम्मदा वीर की दुहाई,
कौन कौन वीर आगे चले ?
सुलतान बीर चले, दुर्रानी बीर चले,
लद्दरसाह बीर चले, वहादुर शाह वीर चले,
मूठी चले--नही चले
तो हजरत सुलेमान की दुहाई ।

बृहस्पति वाली शुक्ल दौज से इसे चालीस दिन तक जपे, सौ वार प्रतिदिन । वीर वश मे हो जायगा ।

ऐ--चौकी मुहम्मद वीर की

विस्मिल्ला, अर-रहमान अर-रहीम !
पाय घु घरा कोट जँज़ीर,
जिस्पर खेले मुहम्मदा वीर,
सवा सेर का टोसा खाइ,
सवा मन की कमान सवा मन का तीर,
जिसपर खेता आवे मुहम्मदा वीर,
मार ! मार ! करता आवे,
वांध ! वांध ! करता आवे,
डाँकिनी को वांध ! शाँकिनी को वांध,
चुड़ैल को वांध, भूत को वांध, पलीत को वांध,
नल्ल नरसिंघ वांध,
वावन भैरो वांध,
नौ जात का मसान वांध,
कचिया मसान वांध, पक्काया मसान वांध,
कल्कलिया मसान बांध,
मूंगीया मसान वांध, पीलिया मसान वांध
लीलिया मसान वांध, सूकिया मसान वांध,
धौलिया मसान वांध, कालिया मसान वांध, बांध, वांध

कुआ वावली लू बांध, सूनी बांध, बैठी बांध,
पीते को बांध, पकाते को बांध, लाओ लाओ—
सोती को लाओ, पकाती को लाओ, लाओ, लाओ—
जल्दी लाओ।
हजरत इमाम हुस्सेन की जंग से निकाल कर लाओ,
बीबी फातिमा के दामन से खुला के लाओ,
नही लावे ?
तो मत चूक दूध हराम करे !
दुहाइ सुलेमान औलिया के तख्त की !

इसका साधना वहस्पति वाली शुक्र दौज से की जाती है। घी का दीपक जलाकर लोबान की धूप देकर, १०८ बार मंत्र का जप कर और मिठाई चढ़ाता जाय। ३१ वहस्पतिवार तक लगातार जाप करने से वीर वश में हो जाता है।

ओ—गीत जखैया का

जैसे बुलायें, वैसे आय, रे !
जखैया भइया, जसे बुलायें, वैसे आय, रे !
फूल, बतासे धुजा, नारियल, घंटा, भेंट को लाइ रे,
जखैया भइया आदि
बकरा, मुर्गा, रंगे बिनौले, चबक, भेंट को लाइ, रे,
जखैया भइया
पसा, धार, पुजापा, लेवे, नंगे परो धाई, र,
जखैया भइया
बाल-बच्चों पै रच्छा कीजो तेरी फिरै दुहाई, रे*
जखैया भइया

कलकत्ते से श्री श्यामनारायण पाडे ने कुछ मंत्र भेजे हैं। ये मंत्र मगधी क्षेत्र के हैं।

बिच्छू उतारने का मंत्र

सोने क बिच्छी रूपे क आर
बिच्छी काटे महादेव के कपार
दोहाई गउरा पारवती महादेव का।

*कनिंघम साहब का कहना है कि यह गीत है जिसे आदमी जखैया पर गाते हैं। संभवतः मंत्र नही माना जा सकता है इसीलिए उन्होंने इसे साबरा मंत्रों में स्थान नहीं दिया।

नजर के मंत्र

छ छ छकड़ी देउ दुग्रार दक्खिन कइती कालो माई परिग डेरा,
उत्तर कइती पवन दुआर दोहाई महावीर की (३ बार बोले)

यही मत्र पढ कर फिर दोहाई भैरव बाबा की (३ बार)
फिर यही मत्र पढ़े और बोले दोहाई नरसिंह बाबा की (३ बार)

टोना टमानी क माग मुड़ाई गदहा पर चढ़ाई दक्खिन दिसा
पहुँचाई, दोहाई महाबीर की, दोहाई भैरो बाबा की,
दोहाई महाबीर की, दोहाई नरसिंह की, दोहाई शंकरजी जी की,
दोहाई लोना चमाइन की।

ज्वर का मंत्र

ओ३म् नमो पालकी की दोहाई ज्वर रहे तो
महाबीर की दोहाई, दोहाई शंकर जी की